# DCESY-102

# भारत में सामाजिक समस्याएँ

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

**खण्ड – प्रथम : सामाजिक रूपरेखा** **3–34**

इकाई–1 सामाजिक रूपान्तरण और समस्याएँ 7

इकाई–2 उपागम एवं रूपावली 15

इकाई–3 सामाजिक समस्याएँ : भारतीय संदर्भ में 23

**खण्ड – द्वितीय : सामाजिक रूपरेखा** **35–92**

इकाई–4 भारत में सामाजिक समस्याएँ 37

इकाई–5 प्रवजन 51

इकाई–6 नगरीकरण 63

इकाई–7 बदलती पारिवारिक संरचना 79

**खण्ड – तृतीय : सामाजिक रूपरेखा** **93–152**

इकाई–8 बेरोजगारी 95

इकाई–9 श्रम (औद्योगिक) 109

इकाई–10 श्रम (ग्रामीण) 121

इकाई–11 श्रम : महिला श्रमिक 131

इकाई–12 श्रम (बाल–श्रमिक) 139

इकाई–13 निर्धनता तथा उसके सामाजिक प्रभाव 145

**खण्ड – चतुर्थ : वंचन तथा परायापन के स्वरूप 153–180**

इकाई–14 अपराध और अपचार 155

इकाई–15 नशीले पदार्थो का व्यसन तथा मद्यपान 167

इकाई–16 हिंसा और आतंकवाद 175

**खण्ड – पंचम : पहचान, महत्व और सामाजिक–न्याय–I 181–196**

इकाई–17 बाल वर्ग 185

इकाई–18 युवा वर्ग 191

**खण्ड – षष्ठम : सामाजिक–न्याय–I 197–252**

इकाई–19 महिलायें 199

इकाई–20 वृद्ध 207

इकाई–21 अनुसूचित जनजातियाँ 215

इकाई–22 अनुसूचित जनजातियाँ 225

इकाई–23 अल्पसंख्यक 235

इकाई–24 नृजातीयता 245

**खण्ड – सप्तम : पारिस्थितिकी एवं संसाधन 253–289**

इकाई–25 भूमि : प्राप्यता, नियंत्रण एवं प्रबन्धन 259

इकाई–26 जल : प्राप्यता, नियंत्रण एवं प्रबन्धन 267

इकाई–27 वन : प्राप्यता, नियंत्रण एवं प्रबन्धन 275

इकाई–28 राज्य तथा अन्य संगतियों की भूमिका 283

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

# DCESY-102
# भारत में सामाजिक समस्याएँ

## खण्ड – 1

## समाजिक रूपरेखा

**इकाई – 1** **7–14**
सामाजिक रूपांतरण और समस्याएँ

**इकाई – 2** **15–22**
उपागम एवं रूपावली

**इकाई – 3** **23–34**
सामाजिक समस्याएँ : भारतीय संदर्भ में

# उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

## उत्तर प्रदेश प्रयागराज

### परामर्श समिति

| | | |
|---|---|---|
| कुलपति | – | प्रो० के० एन० सिंह |
| कुलसचिव | – | डॉ० ए० के० गुप्ता |

### सम्पादक

1. प्रो. सोहन राम यादव
   विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
   बी० एच० यू० वाराणसी। – 221005
2. प्रो. जगदीश नारायण सिंह
   प्रोफेसर, समाजशास्त्र
   बी० एच० यू० वाराणसी। – 221005

### पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | डॉ० एम० एन० सिंह | – | पूर्व निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ० प्र० रा० ट० मु० वि० वि०, प्रयागराज |
| 2. | डॉ० इति तिवारी | – | प्रभारी, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ० प्र० रा० ट० मु० वि० वि०, प्रयागराज |
| 3. | रमेश चन्द्र यादव | – | शैक्षणिक परामर्शदाता, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र०रा०ट०मु०वि०वि०, प्रयागराज |

### DCESY-102 – भारत में सामाजिक समस्यायें

**लेखक**

| | | |
|---|---|---|
| रमेश चन्द्र यादव | – | शैक्षणिक परामर्शदाता, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र०रा०ट०मु०वि०वि०, प्रयागराज |
| डॉ. इति तिवारी | – | एसो० प्रोफेसर, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज। |
| प्रो. मोहम्मद सलीम | – | प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| प्रो. ए.के. पाण्डेय | – | प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| डॉ. अखिलेश कुमार राय | – | एसों. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, वसंत कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी। |
| डॉ. अरूणा कुमारी | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। |
| डॉ. सुस्मिता सिंह | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| डॉ. दिनेश कुमार सिंह | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। |

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज –2023

ISBN- 978-93-83328-42-0

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रकाशक – **विनय कुमार** कुलसचिव, उ0प्र0 **राजर्षि** टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
**मुद्रकः सिग्नस इन्फार्मेशन सल्यूशन प्रा० लि०, लोढ़ा सुप्रीमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई।**

# पाठ्यक्रम परिचय

प्रस्तुत खण्ड में सामाजिक रूपान्तरण को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। साथ ही ग्रामीण एवं नगरीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक रूपान्तरण को बताने का प्रयास किया गया है। भारतीय समाज में अनेक सामाजिक समस्याएँ विद्यमान है जिनके अध्ययन हेतु अनेक उपागमों की विस्तृत व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। साथ ही रूपावली (परिभाषिक शब्दावली) का वर्णन किया गया है। सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं में अन्तर, प्रकार, कारण, ग्रामीण एवं शहरी समस्याएँ सामाजिक विघटन तथा सामाजिक समस्याओं के प्रति समाजशास्त्रीय दृष्किोण का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है।

**इकाई–1** में सामाजिक रूपान्तरण और समस्याओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। विशेष कर सामाजिक रूपान्तरण की परिभाषा, प्रकृति, तथा स्वतंत्रता पश्चात् ग्रामीण एवं नगरीय रूपान्तरण किन क्षेत्रों में हुआ है, पर प्रकाश डाला है। अन्त में सारांश तथा संदर्भ ग्रंथ, सम्बंधित प्रश्न और प्रश्नोत्तर दिया गया है।

**इकाई–2** में सामाजिक समस्याओं के अध्ययन हेतु विभिन्न उपागमों की विवेचना की गई है। उदाहरणार्थः सांस्कृतिक विलम्बना उपागम, मूल्यों में संघर्ष उपागम, वैयक्तिक विचलन उपागम एवं सामाजिक विघटन उपागम। इसके साथ इसमें प्रयोग आने वाली पारिभाषिक शब्दावली (रूपावली) का वर्णन किया गया है अन्त में सारांश, संदर्भ ग्रंथ, सम्बधित प्रश्न तथा प्रश्नोत्तर दिया गया है।

**इकाई–3** के अन्तर्गत सामाजिक समस्याएँः भारतीय संदर्भ में वर्णित किया गया है जिसके अन्तर्गत मुख्यरूप से व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं में अन्तर, प्रकार, कारण, ग्रामीण एवं शहरी समस्याएँ, सामाजिक विघटन, सामाजिक समस्याओं के प्रति समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण का वर्णन किया गया है। अन्त में सारांश, सम्बंधित प्रश्न एवं वस्तुनिष्ठ प्रश्नोंत्तर दिया गया है।

# इकाई–1

# सामाजिक रूपान्तरण और समस्याएँ

## इकाई की रूपरेखा


1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 सामाजिक रूपान्तरण

1.3 ग्रामीण सामाजिक रूपान्तरण

1.4 नगरीय सामाजिक रूपान्तरण

1.5 समस्याएँ

1.6 सारांश

1.7 संदर्भ ग्रंथ

1.8 संबन्धित प्रश्न

(अ) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1.9 प्रश्नोत्तर


## 1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

1. सामाजिक रूपान्तरण की परिभाषा, प्रकृति, प्रकार को जान सकेंगें।
2. स्वतंत्रता पश्चात् ग्रामीण सामाजिक रूपान्तरण की प्रकिया किन किन क्षेत्रों में हुआ है, की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।
3. नगरीय सामाजिक रूपान्तरण किन क्षेत्रों में हुआ है, सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।
4. भारतीय समाज में कौन–कौन सी समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं, की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।

## 1.1 प्रस्तावना

समाज की रचना अनेक अंगो से मिलकर होती है। ये अंग व्यवस्थित और संयुक्त होकर एक ढाँचे का निर्माण करते हैं जिसे सामाजिक संरचना कहते है।

सामाजिक संरचना से समाज की बाहरी रूपरेखा का बोध होता है। ए परस्पर सम्बन्धित संस्थाओं, एजेन्सियों और सामाजिक प्रतिमानों तथा साथ ही समूह में प्रत्येक सदस्य द्वारा ग्रहण किए गए पदों तथा कार्यो की विशिष्ट क्रमबद्धता से है। स्वतंत्रता पश्चात् बड़े नगरों में रहने वाले ग्रामीण समाज में रहने वाले लोगों की तुलना में अधिक प्रभावित हुए। उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक तक भारत में ऐसे नेताओं के वर्ग का उदय हुआ जो आधुनिक भारत के लिए प्रकाश स्तम्भ सिद्ध हुए। टैगोर, विवेकानन्द, गोखले, तिलक, गांधी, पटेल, जवाहर लाल नेहरू, देश को सामाजिक सुधार आंदोलन की ओर बढ़ा रहे थे और तत्पश्चात स्वतंत्रता प्राप्ति आंदोलन की ओर। समाज में मौजूद सामाजिक कुरीतियों जैसे बाल–विवाह, सती प्रथा, विधवा विवाह निषेध, स्त्री शिक्षा का विरोध, अस्पृश्यता तथा अन्तर्जातीय विवाह निषेध के प्रति जागरूक थे।

## 1.2 सामाजिक रूपान्तरण

सामाजिक रूपान्तरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति तथा सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आता है। जब व्यक्ति जन्मजात प्रस्थिति से अर्जित प्रस्थिति प्राप्त करता है या अपने में बदलाब करता है तो उसे व्यक्तिगत रूपान्तरण कहा जाता है। सामाजिक व्यवस्था में रूपान्तरण एक ऐसे परिवर्तन से लिया जाता है जिसके द्वारा समाज एवं संस्कृति में ऐसे परिवर्तन जो प्रौद्योगिकी, संस्थाओं, वैचारिकी एवं मूल्यों में विभिन्न स्तरों पर होने वाले परिवर्तनों को सम्मिलित करता है। सामाजिक रूपान्तरण एक जटिल प्रक्रिया है जिसका प्रभाव सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक, धार्मिक, प्रौद्योगिक स्तर पर परिलक्षित होता है। समाज में सामाजिक रूपान्तरण की गति सर्वत्र समान नहीं है और साथ ही सभी पक्षों पर प्रभाव समाज रूप से नहीं।

## 1.3 ग्रामीण सामाजिक रूपान्तरण

### 1. परिवार के स्वरूप में रूपान्तरण

भारत ग्रामो का देश है यहाँ पर परिवार के स्वरूप से तात्पर्य संयुक्त परिवार से लगाया जाता है परन्तु आधुनिक समय में संयुक्त परिवार का स्वरूप एकल परिवार का रूप धारण करता जा रहा है। लोग संयुक्त परिवार की अपेक्षा स्वातन्त्र रूप से एकल परिवार में रहना पसन्द करने लगे हैं। पारिवारिक नियन्त्रण व मानक मूल्यों के दबाव और अपने विकास के प्रति पारिवारिक प्रतिबन्धों से स्वातन्त्र होकर एकल परिवार को अधिक महत्वपूर्ण समझने लगे है जो संयुक्त परिवार एकल परिवार में रूपांतरित होता जा रहा है।

### 2. विवाह संस्थाओं का रूपान्तरण

ग्रामीण क्षेत्रो में विवाह का स्वरूप बदलता जा रहा है जहाँ हिन्दू समाजों में विवाह एक संस्कार होता था आज मात्र एक समझौता होकर रह गया है। भारत

में विवाह जो विभिन्न रीति रिवाजों से ही पूर्ण होता था आज वह विभिन्न जटिलताओं को अस्वीकार करके व साधारणतः कम समय में विवाह का होना ज्यादा महत्वपूर्ण माना जा रहा है। भारतीय व्यवस्था में जहाँ विवाह विच्छेद था ही नहीं पर आज तलाक थोड़ी–थोड़ी बातों पर ही लिया जा रहा है और माता पिता द्वारा देखने के स्थान पर स्वयं वर–वधू देखकर विवाह करने लगे है।

## 3. उत्पादन के साधनों में रूपान्तरण

भारत गावों का देश है तथा यहाँ की अधिकतम् जनसंख्या गावों में ही निवास करती है। अतः भारत की अधिकतम् आय कृषि से प्राप्त होती है इसलिए भारत को कृषि प्रधान देश कहा जाता है। वर्तमान समय में भारत की कृषि व्यवस्था पूर्णतः रूपांतरित हो गयी है। चाहे कृषि यन्त्रों की बात की जाय या उपकरणों के साथ साथ वैज्ञानिक तकनीकों की। हरित क्रान्ति से ही भारत आज विश्व खाद्यान्न भण्डारण में प्रथम स्थान, दूध उत्पादन, सब्जी उत्पादन में प्रथम स्थान प्राप्त कर चुका है। भारत सरकार ने विभिन्न प्रकार की कृषि से सम्बन्धित कार्यक्रमों का संचालन कर रही है जिसके परिणामस्वरूप भारतीय कृषि पूर्णरूपेण रूपांतरित हो गयी है।

## 4. जाति व्यवस्था में रूपान्तरण

भारत एक मात्र ऐसा देश है जहॉ पर जाति व्यवस्था पायी जाती है जिसके कारण भारत को जाति व प्रजातियों का अजायब घर कहा जाता है। भारतीय जाति व्यवस्था का प्रतिबन्धित व्यवसाय में पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता आ गयी है आज भारत में कहीं भी किसी कोने का व्यक्ति किसी भी जाति, वर्ण व धर्म का हो स्वतन्त्र रूप से अपनी इच्छानुसार कोई भी व्यवसाय कर सकता है। अपने जीविकोपार्जन के लिए स्वतन्त्र है और कही भी किसी भी प्रकार का रोजगार अपना सकता है। भारत में जाति प्रथा अपने मूल रूवरूप को बदल चुकी है मात्र राजनीतिक पार्टियाँ ही अपने वोट बैंक के लिए इसे बनाये रखी हैं।

## 5. स्त्रियों की प्रास्थिति में रूपान्तरण

भारत प्राचीन काल से ही पुरूष प्रधान देश रहा है। यहॉ पर शुरू से ही स्त्रियों की दयनीय स्थिति रही केवल अपवाद स्वरूप ही कुछ स्त्रियों का सम्मान होता था। स्त्रियों की स्थिति का पता हमें तुलसी दास के इस सूक्ति से पता चलता है कि स्त्रियों को कितना प्रताड़ित किया जाता रहा होगा ''ढोल, गवाँर, पशु, शूद्र, नारी यह सब ताड़न के अधिकारी।''

किन्तु वर्तमान समय में विभिन्न संवैधानिक उपबन्धों तथा महिला सशक्ति–करण और स्वयं सेवक संगठन (NGO'S) द्वारा भारतीय स्त्रियों में विशेष रूप से बदलाव आया है। आज महिलायें किसी भी क्षेत्र में पुरूषों से पीछे नहीं रह गयी हैं। भारत के शैक्षणिक, प्रशासानिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति प्रस्तुत कर भारतीय समाज का स्वरूप ही रूपांतरित हो गया है। यह बात अलग है कि ग्रामीण महिलाओं में अभी भी बदलाव करना जरूरी है ग्रामीण

अंचलो में महिला घर की दहलीज तो पार कर चुकी हैं पर वह अभी भी खेतों तक ही सीमित है। यह सही है कि कृषि कार्यो में पुरूषों से अधिक महिलाएँ अपना योगदान दे रही हैं।

## 1.4 नगरीय सामाजिक रूपान्तरण

### 1. पारिवारिक संरचना का रूपान्तरण

आधुनिक समय में मानव इतना व्यस्त हो गया है कि वह परिवार जैसी महत्वपूर्ण संस्था को भी भूलता जा रहा है। अन्धाधुन अर्थ प्राप्ति के लिए व्यक्ति अपना परिवार छोड़ता जा रहा है। भारत ही नहीं विश्व के महानगरों में भी तो आश्चर्य चकित कर देने वाली पारिवारिक घटनायें घट रही हैं जो भारतीय नगरों में भी वही घटनायें पनपती जा रही हैं। वर्तमान समय में नगरों में संयुक्त परिवार तो क्या एकल परिवार में भी विघटन होना प्रारम्भ हो गया है। लोग अपने पारिवारिक जीवन को अपनी स्वतन्त्रता व विकास में बाधा समझते हैं। एकल परिवार की जगह अकेला रहना पसन्द करते हैं। विवाह पश्चात् भी अकेले रहना अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। अपनी सन्तानों को बोर्डिंग स्कूल व आवासीय विद्यालयों में रखना अधिक कारगर मानने लगे हैं । बहुत ही बड़ी विडम्बना यह आ रही है कि लोग अपने वृद्वो को अनाथालयों व वृद्वाआश्रमों में रखना अधिक उचित समझते हैं। अपनो को व्यस्तता इस तरह रखते हैं और अपने परिवार के सदस्यों के पास समय बिताने के लिए भी उनके पास समय नहीं है।

### 2. विवाह के स्वरूप में रूपान्तरण

विश्व के नगरों में ही नहीं भारतीय नगरों में विवाह सम्बन्धी प्रथायें खत्म होने के कगार पर ही है। नगरों में विवाह मात्र एक शारीरिक सुख व इच्छापूर्ति मात्र बनकर रह गया है। अब तो सब से बड़ी विडम्बना Live Relationship लिव रिलेशन शिप। बिना विवाह के साथ–साथ रहना तथा समलैंगिक विवाह जैसी विडम्बनायें भारतीय नगरों में विवाह के स्वरूप को ही बदल कर रख दिया है। अब तो न्यायालय भी अपनी स्वीकृति दे दिया है तथा संवैधानिक सुरक्षा प्राप्त होने से नगरों में विवाह के स्वरूप में विघटन होना प्रारम्भ हो गया है और यह अलग रूप धारण करता जा रहा है।

### 3. आर्थिक क्रियाओं में रूपान्तरण

भारत भले ही कृषि प्रधान देश है किन्तु भारतीय नगरों में लोग अधिकतर व्यावसायिक आर्थिक क्रियाओं को अपनाना कारगर समझते हैं। भारत जहाँ लघु उद्योगों के लिए जाना जाता था, वर्तमान समय में नगरों में बड़े–बड़े उद्योग व कलकारखानों में रूपांतरित हो गये हैं। नगरीय लोग जीविकोपार्जन के लिए सेवा क्षेत्र व व्यवसायिक गतिविधि में अधिक उत्सुकता व्यक्त करते हैं। आधुनिक समय में भारत वह नही रहा जहाँ पर कृषकता ही मुख्य आर्थिक कार्य हुआ करती थी। अब कृषि की अपेक्षा स्वरोजगार अधिक करते हैं। नगरीय लोग तो अधिक मात्रा में

तकनीकि क्षेत्रों में व सेवा क्षेत्रों में अपनी अधिक उपस्थिति दिखा रहे हैं। आज भारत कृषि प्रधान से औद्योगिक प्रधान में रूपांतरित हो गया है।

## 4. जाति प्रथा व जाति कट्टरता का रूपान्तरण

नगरों में जाति प्रथा लगभग पूर्ण रूप से रूपांतरित हो गयी है किन्तु ग्रामों में आज भी जाति कट्टरता से सम्बन्धित विभिन्न घटनायें समाचार पत्रों व संचार माध्यमों द्वारा अवगत हो जाती हैं। नगरों में तो औद्योगिकीकरण, अति नगरीकरण ने तो जाति प्रथा पर जबरजस्त घात किया है जो जाति बन्धनों को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया है। सोपान कार्यो में जो क्रम विन्यास था आज वह खत्म हो चुका है। थोड़ा बहुत राजनीतिक पार्टियाँ अपने कायदे के लिए जाति प्रथा को बरकरार रखना चाहती है वह भी बहुत जल्द ही समाप्त हो जायेगा। विभिन्न संवैधानिक उपबन्धों, अधिनियमों, सरकारी कार्यक्रमों, आरक्षण, राजनीतिक सहायको द्वारा जातिगत कुप्रथाओं का पूर्ण रूप से रूपान्तरण हो गया है। आधुनिक समय में जातिगत व्यवसाय व परम्परागत कार्य प्रणालियाँ रूपांतरित हो गयी है। भारत का कोई भी नागरिक किसी भी नागरिक पर जातिगत दुर्व्यवहार नहीं कर सकता।

## 5. राजनीतिक रूपान्तरण

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। यहाँ की संवैधानिक शक्ति किसी विशेष व्यक्ति में न होकर सम्पूर्ण जनता में विद्यमान है जिसके कारण कोई भी पदाधिकारी निरंकुश नही हो सकता। 1947 के पूर्व भारत पराधीन होने के कारण सम्पूर्ण जनता की शक्ति व्यक्ति विशेष में मौजूद होने के कारण आम आदमी राजनीतिक अधिकारी नही था परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत के नीतिनिर्माताओं ने राज्य की सम्पूर्ण शक्ति को जनता में विस्थापित कर दिया। आधुनिक समय में देश का प्रत्येक नागरिक सत्ता का अधिकारी हो सकता है। वंशानुगत शासन प्रणाली का रूपान्तरण ही भारत की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती हे। सत्ता का विकेंद्रीकरण तथा सम्प्रभुता का केन्द्रीकरण ही भारत की बिशिष्टता का प्रमाण है।

## 6. धर्म का रूपान्तरण

भारत जैसे धार्मिक देश में धर्म का प्रभाव कम हो गया है। भारत का प्रत्येक नागरिक स्वतन्त्र है कि वह चाहे जिस धर्म को स्वीकार करे व परिवर्तित करे। हिन्दू धर्म में विवाह जैसे पवित्र संस्कार का रूप संवैधानिक निकायो व सरकारी कार्यालयों में लोग शादी कर रहे है (कोर्ट मैरिज)। धर्म बस आत्म सन्तुष्टि और दिखावा मात्र रह गया है। धर्म की कट्टरता व प्रभाव भी शिथिल हो गया है जिसका लाभ निम्न जातियों व स्त्रियों को विशेष रूप से प्राप्त हुआ है। हिन्दू धमों के प्रकाण्ड धर्मावलम्बी सत्यसाईं, आशाराम बापू, और हरियाणा के राम पाल जैसे भौतिक सुख वादियों ने धर्म की विश्वसनीयता को प्रभावित किया है जिसके कारण धर्म को विशेष आघांत पहँचा है। वर्तमान में प्रत्येक व्यक्ति भौतिकवादी व सुखवादी हो चुका है। वह धर्म के विभिन्न मानक मूल्यों से स्वतन्त्र होकर भौतिक सुखो की प्राप्ति में प्रयत्नशील है। धर्म के विभिन्न अनुष्ठानों को वह मात्र एक दिखावा व फॉरमेल्टी रूप से पूर्ण करता है न कि विशेष लगाव स्वरूप पूर्ण करता है।

## 7. स्त्रियों की प्रास्थितियों में रूपान्तरण

आधुनिक समय में विश्व के विभिन्न सम्मानित व प्रतिष्ठित क्षेत्रों में स्त्रियाँ अपना योगदान दे रही हैं तो भारतीय नारी कहाँ पीछे रह सकती हैं। आधुनिक

समय में भारतीय स्त्रियों भी अपने करकमलों द्वारा और अपनी प्रतिभा से भारतीय पदों पर विराजमान हैं। भारत में चाहे सरकारी क्षेत्र हो य निजी क्षेत्र हो प्रत्येक स्थानों पर स्त्रियाँ अपना वर्चस्व स्थापित कर रही हैं।

भारत पुरूष प्रधान देश प्राचीन काल से रहा है जहाँ स्त्रियों की दशा अति दयनीय थी परन्तु 19 वीं शताब्दी से स्त्रियों की दशा ये सुधार आता गया। आज भारतीय संवैधानिक अधिनियमों व सरकारी नियोजनों तथा उपबन्धों द्वारा स्त्रियों को विशेषाधिकार द्वारा स्त्रियों की स्थिति को सुदृढ़ की गयी। विभिन्न क्षेत्रों में आरक्षण व महिला विकास कार्यक्रमों, महिला सशक्तिकरण, गैर सरकारी संगठनों द्वारा महिलाओं की दशाओं में रूपान्तरण किया गया। वर्तमान समय में भारत में पुरूषों के बराबर स्त्रियाँ भी पद, अधिकार, सम्मान की अधिकारी हैं चाहे वह कोई भी क्षेत्र हो।

### 8. संचार माध्यमों व प्रौद्योगिकी में रूपान्तरण

भारत जैसे विशाल और विकासशील देश में आमूल चूक रूप से रूपान्तरण हुआ है। प्राचीन भारत आधुनिक भारत तथा स्वतन्त्रता पूर्व भारत और स्वतन्त्रता पश्चात भारत में अत्यधिक रूपान्तरण हुआ है। विशेष कर संचार व प्रौद्योगिकी क्षेत्र में यहाँ तक कि अब कृषि जैसे क्षेत्रों में भी संचार माध्यमों से सूचनायें भेजी तथा प्राप्ति की जा रही हैं और प्रौद्योगिकी विकास से विभिन्न तकनीकि विधि से कृषि भी की जा रही है। हमारे जीवन में जन्म से लेकर अन्तिम संस्कार तक भौतिक संसाधनों का प्रयोग हो रहा है जो प्रौद्योगिकी का ही विकसित तकनीकि है। आधुनिक समय में हमारा जीवन प्रौद्योगिकी संसाधनो पर ही निर्भर हो गया है। इसी के कारण समाज में एक नयी क्रान्ति आयी है। यह नयी क्रान्ति प्रौद्योगिकी के कारण पूरा भारतीय समाज रूपांतरित हो गया है।

## 1.5 समस्याएँ

वर्तमान समाज में अपराध, बाल अपराध, वेश्यावृत्ति, बेरोजगारी, गंदी वस्तियाँ, पागलपन, निम्न स्वास्थ्य, कुपोषण, वर्ग संघर्ष, वायु प्रदूषण, बीमारी, मानसिक संघर्ष, निराशा, आत्म हत्याये, चोरी, डकैती, बलात्कार, विवाह विच्छेद आदि अनेक समस्याएँ दिखाई पड़ती हैं। स्वतंत्रतापूर्व समाज में विद्यमान अनेक सामाजिक कुरीतियाँ जैसे बाल विवाह, सतीप्रथा, विधवा विवाह निषेध, स्त्री शिक्षा का विरोध, अस्पृश्यता तथा अन्तर्जातीय विवाह निषेध विद्यमान थे।

## 1.6 सारांश

इस प्रकार हम देखते है कि पूरे भारत में चाहे वह ग्रामीण क्षेत्र हो य नगरीय क्षेत्र, चाहे गृह कार्य हो या संसद के कार्यालय तक प्रत्येक क्षेत्र में भारतीय समाज रूपांतरित हुआ है। इस रूपान्तरण में भारतीय समाज में जहाँ कहीं कुछ व्याधियाँ दूर हुई है तो कहीं पर भारतीय परम्परा को आघात भी पहुँचा है। हाँ एक बात अवश्य है कि भारत में सामाजिक रूपान्तरण से भारत में स्त्रियों व निम्न वर्ग

के लोगों को लाभ प्राप्त हुआ है जिससे भारतीय लोगों में एक बडा समुदाय उभर कर अपने विकास से सम्मान व गौरव पूर्ण जीवन जी रहा है।

## 1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ


1. फण्डामेण्टल ऑफ सोशियोलॉजी– जिन्सबर्ग
2. भारत मे सामाजिक व आर्थिक रूपान्तरण – विश्व प्रकाश गुप्ता
3. सामाजिक समस्या – राम आहुजा
4. समाजशास्त्र विश्वकोश – डॉ संजीव महाजन
5. सामाजिक आर्थिक विकास – अवध प्रकाश
6. सामाजिक परिवर्तन में कला एवं साहित्य– डॉ जुगनू पाण्डेय


## 1.8 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) लघुउत्तरीय प्रश्न

1. रूपान्तरण से क्या अभिप्राय है?
2. भारतीय समाज में प्रौद्योगिकी रूपान्तरण की व्याख्या कीजिए।
3. स्त्रियों की स्थिति में रूपान्तरण की समीक्षा कीजिए।
4. उत्पादन साधनों में रूपान्तरण के प्रभाव की चर्चा कीजिए।
5. ग्रामीण व नगरीय पारिवारिक रूपान्तरण की समीक्षा कीजिए।

### (ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. नगरीय सामाजिक रूपान्तरण पर प्रकाश डालिये।
2. ग्रामीण सामाजिक रूपान्तरण व नगरीय सामाजिक रूपान्तरण की समीक्षा कीजिए।
3. ग्रामीण स्त्रियों व नगरीय स्त्रियों की स्थिति में होने वाले रूपान्तरण की तुलनात्मक समीक्षा कीजिए।

### (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. नगरों में विवाह का कौन सा नया स्वरूप उभर रहा है?

   (अ) ब्रह्म विवाह (ब) आर्ष विवाह

   (स) राक्षस विवाह (द) समलैंगिक विवाह

2. 1947 के पूर्व भारत क्या था?

   (क) पराधीन (ब) आजाद

   (स) स्वतन्त्र (द) स्वाधीन

3. दूध उत्पादन मे भारत का स्थान कौन सा है?

(अ) प्रथम (ब) द्वितीय

(स) तृतीय (द) चतुर्थ

4. नगरो में कौन सा परिवार बढ़ रहा है?

(अ) संयुक्त परिवार (ब) समूह परिवार

(स) एकल परिवार (द) विस्तृत परिवार

5. जाति प्रथा को किस कारण आघात पहुँचा है?

(अ) शिक्षा से (ब) औद्योगीकरण

(स) राजनीति से (द) विवाह से

## 1.9 प्रश्नोन्तर

**1. (द) 2. (अ) 3. (अ) 4. (स) 5. (ब)**

# इकाई–02

# उपागम एवं रूपावली

## इकाई की रूपरेखा


2.0. उदेश्य

2.1. प्रस्तावना

2.2. सामाजिक समस्या– परिभाषा, प्रकृति, विशेषताएँ, प्रकार

2.3.. सांस्कृतिक विलम्बना उपागम

2.4. मूल्यों में संघर्ष उपागम

2.5. वैयक्तिक विचलन उपागम

2.6. सामाजिक विघटन उपागम

2.7. रूपावली

2.8. सारांश

2.9. संदर्भ ग्रंथ

2.10. सम्बन्धित प्रश्न

(अ) लघुउत्तरीय प्रश्न

(ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

2.11 प्रश्नोत्तर


## 2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

- सामाजिक समस्या की परिभाषा, प्रकृति को जान सकेंगें।
- सामाजिक समस्या के प्रकार एवं उसकी विशेषताओं को समझ सकेंगें।
- सामाजिक समस्याओं को समझने के लिए विभिन्न उपागमों या सिद्धान्तों को समझ सकेंगें।

- सांस्कृतिक विलम्बना उपागम की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।
- मूल्यों में संघर्ष उपागम की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।
- वैयक्तिक विचलन उपागम के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।
- सामाजिक विघटन उपागम की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।
- उपागमों से सम्बन्धित विभिन्न रूपावली को ज्ञात कर सकेंगें।

## 2.1 प्रस्तावना

समाज में कुछ ऐसे नियम एवं मूल्य होते हैं जिनके आधार पर समाज में रहने वाले व्यक्ति एक दूसरे से अनुकूलन तथा विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। सामाजिक परीवर्तन की दशा में समाज की आवश्यकताएँ तथा आकाक्षाएँ तो बदल जाती हैं लेकिन सामाजिक संरचना में इसके अनुरूप परिवर्तन नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप सामाजिक संरचना में कुछ ऐसे अवरोध तथा तनाव पैदा हो जाते है जो सम्पूर्ण सामाजिक संतुलन को बिगाड़ देते हैं। सामाजिक अनुकूलन में बाधा डालने वाली दशाओं अथवा सामाजिक जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने वाली दशाओं को ही सामाजिक समस्याएँ कहा जाता है।

## 2.2 सामाजिक समस्या : परिभाषा, विशेषताएँ एवं प्रकार :

सामाजिक संरचना में कोई बाधा जब इस प्रकार जुड़ जाती है जिसके परीणामस्वरूप बहुत से व्यक्तियों का जीवन प्रतिकूल रूप से प्रभावित होने लगता है तो उसे सामाजिक समस्या कहा जाता है। सामाजिक संरचना से सम्बन्धित जैसे अपराध, मद्दपान, बेरोजगारी, छुआछूत, प्रवजन जनांगिकी निर्धनता सामाजिक समस्या के अन्तर्गत आयेंगे। ग्रीन के अनुसार ''सामाजिक समस्या ऐसी दशाओं की समग्रता है जिन्हे नैतिक आधार पर समाज में अधिकांश व्यक्तियों द्वारा अनुचित समझा जाता है।'' इसी प्रकार लुण्डवर्ग के अनुसार ''सामाजिक समस्या एक विचलित व्यवहार है जो समाज द्वारा अमान्य होता है और समाज को इस सीमा तक प्रभावित करता है कि उसके प्रति समुदाय की सहनशीलता की सीमा समाप्त हो जाती है।'' कोई भी समाज ऐसा नहीं है जहाँ सामाजिक समस्याएँ न पाई जाती हों अन्तर समस्याओं की गम्भीरता एवं मात्रा से है।

सामाजिक समस्या की प्रकृति के आधार पर कुछ मुख्य विशेषताएँ :

1. इसमें सामूहिकता या तत्व होता है कुछ व्यक्तियों के पारस्परिक अभियोजन द्वारा उत्पन्न होने वाली बाधा सामाजिक समस्या नहीं।
2. सामाजिक समस्या उसे कहेंगे जिसे दूर करना एवं सुधार करना सम्भव होता है।

3. इसका सम्बन्ध समुदाय के अधिक व्यक्तियों के विचलित व्यवहारों या आदर्श नियमों के उलंघन से है।

4. सामाजिक समस्या या सम्बन्ध सामाजिक मूल्यों से है। मूल्यों में परिवर्तन होने से सामाजिक समस्या के रूप में भी परिवर्तन हो जाता है। जैसे– पहले बाल–विवाह एक समस्या नहीं थी परन्तु वर्तमान समय में एक समस्या है।

5. इसका सम्बन्ध समाज कल्याण की अवधारणा से है। जब कोई समाज समाजकल्याण के प्रति सचेत होता है तब कुछ विशेष व्यवहारों को सामाजिक समस्या के रूप में देखा जाता है।

6. नीति निर्धारण तथा सुधार एवं जागरूकता द्वारा सामाजिक समस्याओं का निराकरण किया जाता है।

## प्रकार–

हेराल्ड फेल्प्स के अनुसार प्रत्येक समाज में आर्थिक सम्पन्नता, शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य तथा व्यक्तिगत और सामूहिक अनुकूलन से सम्बन्धित कुछ प्रतिमान अवश्य पाए जाते हैं। समाज की विभिन्न दशाएँ इन प्रतिमानों से अलग हो जाती हैं और समाज में असमानता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इन्होंनें सभी समस्याओं को चार भागों में विभाजित किया है।

1. आर्थिक – आर्थिक साधनों का अभाव जैसे– निर्धनता, बेरोजगारी तथा आर्थिक निर्भरता।

2. जैविकीय समस्याएँ – शारीरिक दोष उत्पन्न करके समाजीकरण में बाधाएँ।

3. जैविक–मनोवैज्ञानिक – पागलपन, मानसिक दुर्बलता, नशाखोरी, मिर्गी, वैयक्तिक अभियोजन में कमी आत्महत्या।

4. सांस्कृतिक तत्वों द्वारा उत्पन्न– वृद्धावस्था, गृहविहीनता, विधवापन, अपराध, बाल–अपराध, तलाक, अवैध संतान।

## अमेरीका की एक अध्ययन समिति के अनुसार

1. प्राकृतिक विरासत – प्राकृतिक स्रोतो के उपयोग से सम्बन्धित समस्याएँ।
2. जैविकीय विरासत – जनसंख्या के आकार जन्म–दर, मृत्यु–दर, परिवार–नियोजन।
3. सामाजिक विरासत – प्रौद्योगिक परिवर्तन, बेकारी, शिक्षा, धर्म, स्वास्थ्य, राजनीति, कानून, अल्पसंख्यक।
4. सामाजिक नीतियाँ – नियोजन, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संस्थाओं के पुनर्निर्माण से सम्बन्धित समस्याएँ।

यद्यपि प्रत्येक समाज में कुछ सामाजिक समस्याएँ हमेशा मौजूद रहती हैं परन्तु उनके प्रति सामाजिक दृष्टिकोण एवं उनकी प्रकृति में अत्यधिक भिन्नता दिखाई पड़ती है। कुछ सामान्य प्रकृति की होती है तो कुछ गम्भीर। कुछ समस्याएँ इसलिए उत्पन्न होती हैं कि एक समुदाय विशेष में व्यक्ति अपने परम्परागत आदर्श

नियमों एवं मूल्यों का पालन करने में स्वयं को असहाय अनुभव करता है तथा कुछ समस्याएँ ऐसी जिसे ज्यादातर लोग इन नियमों को जान बूझकर पालन नहीं करना चाहते है। सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति और इनसे सम्बन्धित कारणों को समझने के लिए विभिन्न उपागमों को समझना आवश्यक है। इनमें से चार उपागम या सिद्धान्त अधिक महत्वपूर्ण है।

## 2.3 सांस्कृतिक विलम्बना उपागम :–

सामाजिक समस्याओं की विवेचना आगबर्न ने सांस्कृतिक विलम्बना के आधार पर की है। इनके अनुसार परिवर्तन सभी समाजों की एक अनिवार्य विशेषता है लेकिन संस्कृति के सभी अंगों के बीच समान गति से परिवर्तन नहीं होता। भौतिक संस्कृति के तत्वों जैसे–यंत्रो, आविष्कारों, उपकरणों में होने वाला परिवर्तन अभौतिक संस्कृति के तत्वों जैसे– नैतिकता, प्रथा, विश्वासों और सामाजिक मूल्यों में होने वाले परिवर्तन की तुलना में बहुत तेज गति से होता है। इस प्रकार संस्कृति का अभौतिक पक्ष भौतिक पक्ष से बहुत पिछड़ जाता है। इस स्थिति को आगबर्न ने सांस्कृतिक विलम्बना कहा है। सांस्कृतिक विलम्बना में समाज के अधिकतर लोगों को अपने व्यवहार में नये सिरे से अभियोजन करना आवश्यक हो जाता है। संस्थाओं के कार्य दूसरी संस्थाओं को हस्तांतरित होने लगते हैं। परम्परागत आदर्श–नियम अनुपयोगी मालूम होने लगते हैं तथा बहुत से व्यक्तियों की स्थिति और भूमिका के बीच एक भ्रमपूर्ण स्थिति पैदा हो जाती है। यही परिस्थितियाँ हैं जो सामाजिक समस्याओं को जन्म देती हैं। भारत में औद्योगिक विकास के कारण स्त्रियों को कारखानों तथा कार्यालयों में नौकरी के पर्याप्त अवसर मिल गए लेकिन अभौतिक क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति तथा भूमिका से सम्बन्धित हमारे विचारों में समुचित परिवर्तन न हो सकने के कारण हमें परिवारिक विघटन आत्महत्या दाम्पत्य संघर्ष तथा विवाह–विच्छेद जैसी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

## 2.4 मूल्यों में संघर्ष उपागम

किसी भी समाज के मूल्यों में संघर्ष हो जाने की दशा ही सामाजिक समस्याओं को जन्म देती हैं। सामाजिक मूल्य किसी समाज के वे आर्दश प्रतिमान हैं जिनके आधार पर उस समाज के सदस्य किसी विशेष व्यवहार का एक विशेष अर्थ समझते हैं। सामाजिक मूल्य ही यह निश्चित करते हैं कि उनके लिए क्या उचित है और क्या अनुचित ? एक समूह में व्यक्तियों की मनोवृत्तियों, भावनाओं और व्यवहार के तरीकों का निर्धारण सामाजिक मूल्यों के अनुसार होता है विभिन्न वर्गो के बीच यदि सामाजिक मूल्यों को लेकर मतभेद उत्पन्न हो जाता है तब इसी स्थिति से सामाजिक समस्याओं को बल मिलता है मूल्यों में संघर्ष होने से व्यक्तिवादिता, लाभ की प्रवृति तथा विचलनकारी व्यवहार जैसी दशाएँ उत्पन्न होती हैं जो आगे चलकर अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म देती हैं। प्रौढ़ लोगों के सामाजिक मूल्य विवाह की पवित्रता, रूढ़ियों में निष्ठा तथा परिवार के कर्ता की सर्वोच्च सत्ता को महत्वपूर्ण मानते हैं जबकि युवा पीढ़ी के मूल्य वैयक्तिक स्वतंत्रता, व्यक्तिगत योग्यता तथा अधिकारों की समानता को महत्व देते हैं। ऐसी स्थिति में

हमारे समाज में पीढ़ियों के बीच संघर्ष, युवा तनाव और बाल–अपराध जैसी समस्याओं में वृद्धि हुई है। वर्तमान सामाजिक मूल्य धन के संचय और लाभ की प्रवृत्ति पर अधिक जोर देते हैं जिसके कारण आर्थिक अपराधों की संख्या में अधिक वृद्धि हुई है।

## 2.5 वैयक्तिक विचलन उपगम

यह उपागम इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक समाज मे कुछ व्यक्तियों की प्रेरणाएँ तथा व्यवहार के ढंग शेष व्यक्तियों से भिन्न होते हैं। ऐसे व्यक्ति या तो समाज द्वारा मान्यता प्राप्त नियमों का पालन करना आवश्यक नहीं समझते अथवा सामाजिक नियमों का पालन करने में असफल हो जाने के कारण ऐसे व्यवहार प्रदर्शित करने लगते हैं जिन्हें समाज अपने अस्तित्व के लिए हानिकारक मानता है। मर्टन के अनुसार प्रत्येक समाज अपने सदस्यों के लिए कुछ लक्ष्य निर्धारित करता है। जो व्यक्ति इन निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने में जितना सफल हो जाता है उसकी सामाजिक स्थिति भी उतनी ही ऊँची हो जाती है लेकिन कुछ विशेष परिस्थितियों में बहुत से व्यक्ति यह महसूस करने लगते हैं कि वैध साधनों के द्वारा वे निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकते और साथ ही ऐसे लक्ष्यों को प्राप्त करना आवश्यक भी समझते हैं। परीणामस्वरूप व्यक्ति समाज द्वारा स्वीकृत नियमों या तरीकों की अवहेलना करके मनमाने रूप से लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगते हैं। यही स्थिति वैयक्तिक व्यवहारों में उत्पन्न होने वाले विचलन की स्थिति है जिसके फलस्वरूप सामाजिक समस्याओं का प्रादुर्भाव होता है । उदाहरणार्थ – प्रत्येक समाज व्यक्ति के लिए यह लक्ष्य निर्धारित करता है कि वह अपने आश्रितों का भरण पोषण करने के लिए जीविका उपार्जित करे। इसे पूरा करने हेतु जब वैध साधनों के द्वारा सफल नहीं हो पाता तो व्यक्ति बेईमानी, गैर–कानूनी ढंग से जीविका उपार्जित करने का प्रयत्न करने लगता है जिससे उसके वैयक्तिक व्यवहार में विचलन की दशा उत्पन्न हो जाती है।

## 2.6 सामाजिक विघटन उपागम

विभिन्न विद्वानों थामस नानिकी एवं वारेन ने सामाजिक समस्याओं की व्याख्या का सामजिक विघटन के आधार पर की है। इस उपागम के अनुसार यह माना जाता है कि मानव सभ्यता के आरम्भिक स्तर पर समाज में कोई समस्याएँ नहीं थीं। बाद में सामाजिक परिवर्तन के कारण परम्परागत नियमों को अस्वीकार किया जाने लगा, यद्यपि व्यवहार के नये और संतुलित नियमों का स्पष्ट निर्धारण नहीं हो सका। परिणामस्वरूप समाज में एक ऐसी दशा पैदा हो गयी जिसमें एक समूह के सदस्यों पर पूर्वनिर्धारित नियमों का प्रभाव कम होने लगा। सदस्यों के बीच एकमत्यतता में कमी आने लगी तथा व्यक्तिवाद में वृद्धि हो जाने से सामाजिक नियंत्रण कमजोर पड़ गया। यही स्थिति सामाजिक विघटन की है जो सामाजिक समस्याओं का मूल कारण है। इस दृष्टिकोण से थामस तथा नैनिकी ने बताया कि सामाजिक विघटन एक ऐसी दशा है जिसमें समाज के अन्तर्गत व्यवहार के पूर्व निर्धारित नियमों का अपने सदस्यों पर प्रभाव कम हो जाता है। इन्होंनें पोलैण्ड के निवासियों पर अध्ययन करके यह बताया कि अमेरिका मे बसने के बाद पोलैण्डवासी अपनी संस्कृति एवं व्यवहार के आदर्श नियमों को तो छोड़ दिया लेकिन अमेरिका के सामाजिक मूल्यों एवं व्यवहार को पूर्णतया ग्रहण नहीं कर सके।इस स्थिति ने दो संस्कृतियों के बीच पारस्परिक संघर्ष को जन्म दिया जिसने

पोलैण्ड के निवासियों के सामाजिक संगठन, व्यवहार के तरीकों तथा वैयक्तिक जीवन में समस्याएँ उत्पन्न कर दी।

## 2.7 रूपावली –

**सामाजिक मूल्य** – 'जो होना चाहिए' से सम्बन्धित एक विचार का नाम है।

**सामाजिक आदर्श नियम** – एक नियम या आदर्श है जो हमारे आचरण को उस सामाजिक परिस्थिति में निर्धारित करता है, जिसमें हम भाग लेते हैं।यह एक सामाजिक अपेक्षा है।

**सांस्कृतिक विलम्बना** – जिस प्रक्रिया के द्वारा संस्कृति का एक पक्ष (भौतिक) तेजी से परिवर्तित होकर आगे निकल जाता है और दूसरा पक्ष (अभौतिक) पीछे छूट जाता है, उसे सांस्कृतिक विलम्बना कहते है।

**सामाजिक विघटन** – एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा समूह में सदस्यों के सम्बन्ध टूट जाते हैं अथवा भंग हो जाते हैं।

**सामाजिक संरचना** – एक समाज की आर्थिक प्रणाली , राजनीति, समूह , समूहों के अन्तर्सम्बंध तथा निवास की व्यवस्था को सम्मिलित करते है।

**सामाजिक नियंत्रण** – उन सभी माध्यमों एवं प्रक्रियाओं जिनके द्वारा एक समूह या समाज अपने सदस्यों के व्यवहार में अपनी अपेक्षाओं के अनुरूप अनुकूलन लाने में सफल होता है।

**भौतिक संस्कृति** – ये मूर्त होती हैं। इन्हें हम स्पर्श कर सकते हैं एवं देख सकते हैं। जैसे – वायुयान, घड़ी, वस्त्र, कलम, भवन इत्यादि।

**अभौतिक संस्कृति** – यह अमूर्त होती है। जिसे हम स्पर्श नहीं कर सकते हैं और उसे देख नहीं सकते हैं। जैसे – प्रथा, लोकरीति, धर्म, सामाजिक मूल्य , कला, साहित्य , आदर्श इत्यादि।

**विचलन व्यवहार** – ऐसा व्यवहार है जिसका उलंघन कर्ता उसकी ओर अभिमुख होकर करता है। यह अभिप्रेरित उलंघन है।

## 2.8 सारांश –

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति एवं कारणों को समझने के लिए समाजवैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त वर्णित विभिन्न उपागमों अथवा सिद्धान्तों का एक बड़ा दोष यह है कि यह एक विशेष परिस्थिति के आधार पर ही सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण करने का प्रयत्न करते हैं। सभी उपागम अति सरलीकरण से प्रेरित हैं। सामाजिक समस्याओं के स्रोत को ज्ञात करना न तो बहुत सरल है और न ही किसी एक या दो आधारों पर सभी

समस्याओं का विश्लेषण किया जा सकता है। इसलिए विभिन्न कारणों के आधार पर सामाजिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन करना ही उचित दृष्टि कोण है।

## 2.9 संदर्भ ग्रन्थ


1. क्यूबर जे0यफ0 एण्ड हारपर आर0 ए0 : प्राब्लम्स आफ अमेरिकन सोसाइटी : वैलूज आन कन्फ्लिक्ट
2. आगबर्न एण्ड निमकाफ : ए हैण्डबुक आफ सोशियॉलोजी 1960
3. वाल्स एण्ड फर्फे : सोशल प्राब्लम्स एण्ड सोशल ऐक्शन
4. थॉमस नैनिकी : पोलिश पीजैन्टस इन यूरोप एण्ड अमेरिका
5. पाल लौण्डिस : सोशल प्राब्लम्स
6. फुलर एण्ड मेयर : दी नेचुरल हिस्ट्री आफ ए सोशल प्राब्लम
7. फेल्पस : कन्टेम्पोरेरी सोशल प्राब्लम्स
8. मर्टन एण्ड निस्बेट – कन्टेम्पोरेरी सोशल प्राब्लम्स, 1969
9. आगबर्न – सोशल चेन्ज 1922


## 2.10 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) लघुउत्तरीय प्रश्न :

1. व्यक्तिगत अभियोजन की असफलता पर प्रकाश डालिए।
2. संस्थागत अभियोजन से आप क्या समझते है।
3. मौतिक संस्कृति की विशेषताएँ बताइए।
4. अमौतिक संस्कृति की प्रकृति को स्पष्ट कीजिए।

### (ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

1. मूल्यों में संघर्ष के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
2. सांस्कृतिक विलम्बना के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
3. सामाजिक विघटन क्या है? सामाजिक विघटन के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
4. वैयक्तिक विचलन क्या है? वैयक्तिक विचलन सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

### (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. निम्नलिखित में से 'दी नेचुरल हिस्ट्री आफ ए सोशल प्राबलम' के लेखक कौन है?

   (अ) ग्रीन (ब) लुण्डवर्ग

   (स) पाल लैण्डिस (द) मर्टन

2. ''सामाजिक समस्या ऐसी दशाओं की समग्रता है जिन्हे नैतिक आधार पर समाज में अधिकांश व्यक्तियों द्वारा अनुचित समझा जाता है''। निम्न में से किसका कथन है?

(अ) गिलिन एण्ड गिलिन (ब) ग्रीन

(स) डेविस (द) बार्न

3. निम्नलिखित में से कौन ''ए हैण्ड बुक सोशियॉलोजी'' 1960 के लेखक है?

(अ) हारपर (ब) क्यूबर

(स) आगबर्न एण्ड निमकाफ (द) मर्टन

4. निम्नलिखित में से कौन सा एक विचलन का उदाहरण नहीं है?

(अ) विद्रोही व्यवहार (ब) एक नाटक में खलनायक

(स) कर चोरी (द) राजनैतिक दल–बदल

## 2.11 प्रश्नोत्तर

1. (स) 2. (ब) 3. (स) 4. (द)

# इकाई–03

# सामाजिक समस्यायें :भारतीय सन्दर्भ में

## इकाई की रूपरेखा


3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 भारत में सामाजिक समस्यायें

3.3 व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं में अन्तर

3.4 सामाजिक समस्याओं के प्रकार

3.5 सामाजिक समस्याओं के कारण

3.6 ग्रामीण और शहरी समस्यायें

3.7 भारत में सामाजिक समस्यायें और सामाजिक विघटन

3.8 सामाजिक समस्याओं का उपचार एवं आने वाली कठिनाइयां

3.9 सामाजिक समस्याओं के प्रति समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

3.10 सारांश

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.12 सम्बन्धित प्रश्न

3.13 प्रश्नोत्तर


## 3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

1. विभिन्न भारतीय सामाजिक समस्याओं का अवधारणात्मक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं में अन्तर ज्ञात कर सकेंगे।
3. भारतीय सामाजिक समस्याओं को ग्रामीण एवं शहरी परिदृश्य में विवेचित कर सकेंगे।
4. भारत में व्याप्त सामाजिक समस्याओं के फलस्वरूप परिलक्षित परिवर्तनों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
5. सामाजिक समस्याओं के प्रकारों, कारणों, उपचार, एवं उपचार में आने वाली कठिनाइयों का मूल्यांकन कर सकेंगे।

6. सामाजिक समस्याओं के प्रति समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों को विश्लेषित कर सकेंगे।

## 3.1 प्रस्तावना

समाज में किसी भी वर्ग की समस्यायें अनेक मुखी होती है और उनके छोटे–बड़े, प्रमुख–गौण कितने ही प्रकार और स्वरूप होते है। इन सबकी संख्या साधारणतया निश्चित नहीं की जा सकती , क्योकि गतिशील सामजिक जीवन और उसके किसी भी हिस्से में समस्याएं दिन प्रतिदिन उत्पन्न होती रहती है। इसके साथ ही प्रचलित या पुरातन समस्याओं में भी समय के परिवर्तन से प्रकारगत या मात्रागत भिन्नता उपस्थित होती रहती है। इस प्रकार समाज में समस्याओं की कमी नहीं है। भारतीय समस्याये भी इतनी अधिक और विविध प्रकार की है कि उनका सम्यक विश्लेषण और विविचन श्रमसाध्य कार्य है।

भारतीय सामाजिक समस्याओं की विवेचना पूर्व आवश्यक है कि सामाजिक समस्या की अवधारणात्मक व्याख्या की जायें। सामाजिक समस्या से तात्पर्य एक ऐसी स्थिति से होता है, जिससे समाज का एक बड़ा भाग प्रभावित होता है तथा जिसके ऐसे हानिकारक परिणाम होते है या हो सकते है, जिनका मात्र सामूहिक रूप से ही समाधान सम्भव है।

सामाजिक समस्या के स्वरूप को समझने के लिए, इसकी विशेषताओं को समझना आवश्यक है, जो निम्नांकित है–

1. सामाजिक समस्यायें आदर्श और सामाजिक मानक से एक प्रकार का विचलन होती है।
2. सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति का कोई समान आधार होता है।
3. सभी सामाजिक समस्याओं एक दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित होती है।
4. सभी सामाजिक समस्याओं की जड़ समाज ही होता है।
5. सभी सामाजिक समस्याओं का परिणाम भी सामाजिक ही होता है, क्योकि उसका प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पूरे समाज पर पड़ता है।
6. सामाजिक समस्याओं के समाधान का दायित्व वैयक्तिक न होकर सामाजिक होता है।

## 3.2 भारत में सामाजिक समस्याएँ

वर्तमान समय में भारत में अनेक सामाजिक समस्याएँ हैं। यद्यपि भारतवर्ष एक स्वतन्त्र गणराज्य है जिसने धर्म–निरपेक्ष, प्रजातन्त्र तथा आर्थिक समानता के प्रगतिशील मूल्यों को स्वीकार किया है, परन्तु यहाँ निर्धनता पायी जाती है। गरीब–अमीर के बीच एक बहुत बडी खाई–दिखायी पड़ती है। यहाँ धर्म, भाषा, प्रजाति, जाति, तथा क्षेत्रीयता के आधार पर अनेक भेदभाव किये जाते है। व्यक्ति–

व्यक्ति में सामाजिक और आर्थिक स्तर पर ऊँच–नीच का एक संस्तरण पाया जाता है। जातिवाद, अस्पृश्यता, भाषावाद, प्रान्तीयता, मद्यमान, आतंकवाद, युवा विक्षोभ, साम्प्रदायिकता, महिलाओं के प्रति हिंसा, लिंग असमानता, बेकारी आदि समस्याएं यहॉ मौजूद है। यहाँ बाल अपराधी, और प्रौढ अपराधी भी पाये जाते है जो समाज के सम्मुख समस्या उत्पन्न करते है। यहाँ जनसंख्या की वृद्धि भी तीव्रता के साथ होती जा रही है। निरक्षरता, निम्न जीवन– स्तर शराबखोरी, जुआ, वेश्यावृत्ति तस्करी, एड्स, काला धन और राजनीति एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार की समस्याओं का भी देशवासियों को सामना करना पड रहा है। यहॉ औद्योगीकरण एवं नगरीकरण से सम्बन्धित समस्याएॅ भी गम्भीर रूप धारण करती जा रही है।

## 3.3 व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं में अन्तर :–

1. व्यक्तिगत समस्या का समबन्ध और प्रभाव क्षेत्र व्यक्ति विशेष तक सीमित होता है जबकि सामाजिक समस्या का सम्बन्ध सम्पूर्ण समाज व समुदाय से है तथा सम्पूर्ण समाज या उसके एक बडे भाग को प्रभावित करती है।

2. चूंकि व्यक्तिगत समस्या का सम्बन्ध व्यक्ति–विशेष से होता है, अतः उसे हल करने का प्रयत्न भी व्यक्तिगत रूप से किया जाता है जबकि सामाजिक समस्या के निवारण के लिए सामूहिक रूप से प्रयत्न किये जाते है।

3. व्यक्तिगत समस्या व्यक्ति के विकास में तथा सामाजिक समस्या, सामाजिक विकास और प्रगति में बाधक होती है।

4. व्यक्तिगत समस्या के जन्म के लिए व्यक्ति स्वयं या कुछ व्यक्ति उत्तरदायी होते है और उसके परिणाम व्यक्ति विशेष को ही भुगतने होते है, जबकि सामाजिक समस्या को जन्म देने मे समाज या समुदाय के कई लोगों का हाथ होता है और उसके परिणाम भी अनेक लोगों को भुगतने होते है।

5. व्यक्तिगत समस्या के दौरान व्यक्ति के व्यक्तित्व में असन्तुलन और विघटन उत्पन्न हो जाता है जबकि सामाजिक समस्याओं की स्थिति में सामाजिक सरंचना और संगठन अस्त–व्यस्त लगते है।

6. व्यक्तिगत समस्या व्यक्ति के साथ ही समाप्त हो जाती है जबकि सामाजिक समस्या समाज की निरन्तरता से सम्बन्धित होने के कारण दीर्घजीवी होती है। इसके निवारण के प्रयत्न के बावजूद यह कुछ मात्रा में अवश्य विधमान रहती है।

## 3.4 सामाजिक समस्या के प्रकार

फुलर और मेयर्स ने तीन प्रकार की समस्याओं बतलाई है–

1. **प्राकृतिक समस्याये –** यद्यपि समाज के लिए ये समस्यायें होती है किन्तु उनका कारण मूल्य–संघर्ष पर आधारित नहीं होता। उदाहरणार्थ – बाढ़ और अकाल।

2. **सुधारात्मक समस्यायें** – इन समस्याओं के दुष्प्रभावों के विषय में आम सहमति है, परन्तु उनके समाधान के विषय में मतभेद है। उदाहरणार्थ– अपराध, गरीबी, मधपान, आदि।

3. **नैतिक समस्यायें** – इन समस्याओं की प्रकृति और कारणों के बारे में आम सहमति नहीं है। उदारणार्थ, जुआ और तलाक।

क्लैरेन्स मार्शल केस ने, सामाजिक समस्यायों को उनकी उत्पप्ति के आधार पर चार प्रकार की बतलाई है–

1. वे समस्यायॅ जिनका प्राकृतिक पर्यावरण के किसी पहलू में होता है।
2. जो सम्बन्धित जनसंख्या की प्रकृति या उसके विवरण में अन्तर्निहित होती है।
3. जो सामाजिक समस्याएॅ कमजोर सामाजिक सगंठन के कारण उत्पन्न होती है।
4. जो समाज के सांस्कृतिक मूल्यों के टकराव से बनती है।

## 3.5 सामाजिक समस्याओं के कारण–

सामाजिक समस्याओं को विकृत सामाजिक स्थितियॅ जन्म देती है। ये सभी समाजो में उत्पन्न होती हैं। चाहे वे समाज, साधारण हो या जटिल हों। अर्थात् जहाँ कही भी और जब भी व्यक्तियों के समूह में पारस्परिक सम्बन्ध प्रभावित होते है, जिससे कुसमायोजन और संघर्ष उत्पन्न होते है।

रेनहार्ट ने सामाजिक समस्याओं के विकास मे तीन तत्वों का उल्लेख किया है–

1. **स्वार्थो और क्रियाओं का विभेदीकरण और गुणन** – यह सिद्धान्त कि एक मशीन या जीवित प्राणी में जितने अधिक भाग होते हैं, उतनी ही अधिक उसके भागों में असन्तुलन की सम्भावना होती है, मानव समाजो पर भी लागू होता है। जहॅा विभिन्न व्यक्तियों, समुदायों, संस्थाओं और व्यवस्थाओं के स्वार्थो में टकराव के अवसर अधिक होते है। अस्पृश्यता, साम्प्रदायिक दंगे और राजनीतिक अपराध ऐसी ही सामाजिक समस्याएॅ है जो विभिन्न जातियों और वर्गो के स्वार्थी के संघर्ष से उत्पन्न होती है।

2. **सामाजिक परिवर्तन और सभ्यता के विकास की आवृत्ति को त्वरित करना** – यह वैज्ञानिक और मशीनी नवाचारो के बाहुल्य से सम्भव हुआ है।

   **उदाहरणार्थ** – मशीनों के नवाचारो ने रोजगार के कई पुराने ढॅाचो को समाप्त कर दिया है, जिसके परिणाम स्वरूप लोखों लोगो को प्रवास करना पड़ा और इससे विभिन्न वर्गो में संघर्ष उत्पन्न हुए। इस प्रकार क्रान्तिकारी आविस्कारों से उत्पन्न हुए संरचनात्मक और प्रकार्यात्मक कुसमायोजन कई सामाजिक समस्याओं को जन्म देते है।

4. **वैज्ञानिक विश्लेषण करने की मानव की विकसित अन्तर्दृष्टि :–** जब से मानव ने प्रकृति की गतिविधि का अध्ययन करने के लिए सामाजिक अन्तर्दृष्टि विकसित की है उसके फलस्वरूप वे विषय जो पहले साधारण समझे जाते थे, अब कई प्रकार की उन प्राकृतिक स्थितियों के कारणवश आवश्यक समझे जाते है, जो मानव और समाज को प्रभावित करते है।

## 3.6 ग्रामीण और शहरी समस्याएँ :–

**ग्रामीण समस्याएँ :–** भारत के ग्रामीण क्षेत्रों की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ जिनका कुछ सामाजिक समस्याओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है इस प्रकार है।

1. व्यक्ति प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से खेती पर निर्भर है।
2. उच्च जाति के लोगो के पास अभी भी बड़े–बड़े खेत है जब कि निम्न जाति के लोगो के पास न्यूनतम भूमि है या वे भूमिहीन श्रमिकों की भॉति काम करते है।
3. शहरी लोगो की तुलना में ग्रामीण लोग बिखरे हुए है।
4. ग्रामीणो की न केवल भूमिकायें परन्तु मूल्य भी अभी तक परम्परागत है।
5. किसानो को अपनी पैदावार का मूल्य उनके परिश्रम के अनुपात में कम मिलता है।

यद्यपि ग्रामीण आर्थिक संकट का प्रभाव सब किसानों पर समान नही है, परन्तु निम्न और मध्यम वर्ग के किसानों को, जो कि अधिक संख्या में है, अपने लड़को और भाइयों को जीवन–यापन के नये स्रोतो को खोजने के लिए शहरी क्षेत्रो में भेजने के लिए बाध्य होना पड़ता है। शहरो में उन्हे गन्दी बस्तियो में रहना पड़ता है और शिक्षा और उचित प्रशिक्षण के अभाव में दैनिक वेतन श्रमिकों की तरह काम करना पड़ता है। ग्रामीण किसानों का जीवन स्तर बहुत निम्न होता है और बड़े जमीदार, बिचौलिये और उधार देने वाले साहुकार उनका बहुत शोषण करते है। इसलिए कोई आश्चर्य नही कि उनका समस्त जीवन निराशा से भरा हुआ होता है।

ग्रामीण समस्याओं का दूसरा कारण ग्रामीण लोगो का सकेन्द्रित समूहों में नही रहना है। इस कारण से उन्हें विशेष सुविधायें, जो जीवन यापन के लिए आवश्यक है, बहुत ही कम उपलब्ध हो पायी है। उदाहरणार्थ चिकित्सा, बाजार, बैकिंग, यातायात, संचार, शिक्षा, मनोरंजन, आदि।

इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रो के लोगो को सामान्यतः बहुत असुविधा का सामना करना पड़ता है, और उनके सामने कई सामाजिक समस्याये होती है।

**शहरी समस्याएँ–** इस प्रकार ग्रामीण समस्याएँ ग्रामीणों के अकेले और बिखरे हुए रहने के कारण होती है, उसी प्रकार कई शहरी समस्याएँ आबादी के केन्द्रीकरण से उपजती हैं। गन्दी बस्तियां, बेरोजगारी, बाल अपराध, अपराध भिक्षावृत्ति, भ्रष्टाचार, शराबखोरी, तस्करी, काला धन, वायु प्रदूषण, आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, जातिवाद आदि ये सब शहरी समस्याएं छोटे और बड़े शहरों के असहनीय जीवन की परिस्थितियों के परिणाम हैं। गॉव के प्रत्येक व्यक्ति को गॉव के दूसरे व्यक्ति इतना जानते है कि उसके कुकर्म छिपते नही बल्कि चर्चा के विषय बन जाते है। परन्तु शहर में भीड़भाड़ में रहने के कारण किसी को यह पता नहीं चलता कि दूसरा व्यक्ति क्या कर रहा है? शहर में अधिकांश व्यक्तियो पर कोई सामाजिक दबाब

नही होता और इस कारण विचलन की दर बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त शहरी जीवन में अन्तर निर्भरता इतनी अधिक है कि छोटे किन्तु महत्वपूर्ण भाग की गड़बड़ी दूसरे भागों को निष्क्रिय बना देती है। सफाई मजदूरों, यातायात कर्मचारियों, राज्य विद्युत मण्डल के कर्मचारियों, जल विभाग के कर्मचारियों जल विभाग के कर्मचारियों या दुकानदारों द्वारा की गई हड़तालें इसके उदाहरण है। गुमनामयन दंगो, धार्मिक झगड़ो और उपद्रवों की घटनाओं को बढाता है। इसलिए यह आश्चर्यजनक नहीं कि शहरी जीवन की विशेषताएं कई सामाजिक समस्याओं के लिए उत्तरदायी है।

## 3.7 भारत में सामाजिक समस्यायें और सामाजिक विघटन

सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण समाज में समस्याएं उत्पन्न होती है। सामाजिक परिवर्तनों का अर्थ है, प्रतिमानित भूमिकाओं में परिवर्तन, सामाजिक सम्बन्धों के जाल में परिवर्तन, या समाज की संरचनाओं और संगठन में परिवर्तन। सामाजिक परिवर्तन कभी सम्पूर्ण नहीं होता , वह सदैव अपूर्ण होता है। वह छोटा अथवा मूलभूत और स्वतः स्फूर्त या नियोजित हो सकता है। नियोजित परिवर्तन कुछ सामूहिक ध्येय प्राप्त करने के लिए किया जाता है। स्वाधीन होने के पश्चात् भारत ने भी कुछ सामूहिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का निश्चय किया था। हमारे समाज में पिछले चार पॉच दशकों में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है, वे इस प्रकार है –

कुछ निश्चित मूल्यों और संस्थाओं में परम्परा के स्थान पर आधुनिकता प्रदत्त प्रस्थिति के स्थान पर अर्जित प्रस्थिति का महत्व, प्राथमिक समूहों की प्रमुखता के स्थान पर द्वितीयक समूहो की प्रमुखता, नियन्त्रण के अनौपचारिक साधनों के स्थान पर औपचारिक साधन, समूहवाद के स्थान पर व्यक्तिवाद, धार्मिक मूल्यों के स्थान पर धर्म निरपेक्ष मूल्य, लोक कथाओ के स्थान पर विज्ञान और युक्तिकरण एकरूपता के स्थान पर विषमता और औद्योगीकरण और नगरीकरण की बढ़ती हुई प्रक्रियाएं, समाज के विभिन्न खण्डों में शिक्षा के विस्तार से हुई अधिकारों के प्रति बढ़ती जागरूकता, जाति व्यवस्थ में शिथिलता , सुरक्षा के पारम्परिक स्त्रोतों में शिथिलता, अल्पसंख्यक समूहो में बढ़ती हुई आकांक्षाएं, व्यावसायिक गतिशीलता, कई सामाजिक कानूनों का निर्माण, और धर्म को राजनीति से जोड़ना। इस प्रकार हमने, निश्चित सामूहिक लक्ष्यों में से कई लक्ष्य प्राप्त कर लिये है, फिर भी हमारी व्यवस्था में कई अन्तर्विरोध उत्पन्न हो गये है। उदाहरणार्थ–व्यक्तियों की आकांक्षायें तो ऊंची हो गई है, परन्तु इनको पूरा करने के लिए न्यायसंगत साधन या तो उपलब्ध नहीं है, या उन्हें प्राप्त नहीं किया जा सकता है। हम राष्ट्रीयता का उपदेश तो देते हैं परन्तु जातिवाद, भाषावाद, और संकीर्णता को अपनाते हैं। कई कानून बनाये गये हैं परन्तु इन कानूनों में या तो बचाव के कई रास्ते है या फिर इन्हे ठीक से लागू नहीं किया जाता । हम समानतावाद की बात करते है परन्तु पक्षपात का प्रयोग करते है। हम आदर्शात्मक संस्कृति की अभिलाषा करते है, परन्तु वास्तव में जिसका उद्भव हो रहा है वह है ऐन्द्रियिक संस्कृति। इन सब अन्तविरोधों से व्यक्तियों में असन्तोष और निराशा की भावनाये बढ़ी हैं। और इनके कारण कई सामाजिक समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं। युवा अशान्ति, जनजाति

अशान्ति, कृषकों में अशान्ति, औद्योगिक अशान्ति, विधार्यियों में अशान्ति, स्त्रियों के विरूद्ध हिंसा, इन सब ने आन्दोलनों, दंगो, विद्रोहों और आतंकवाद को पनपाया है।

## 3.8 सामाजिक समस्याओं का उपचार एवं उपचार मे आने वाली कठिनाइयाँ

सामाजिक समस्या का समाधान उन कष्टप्रद सामाजिक स्थितियों के कारणों को पता लगाने पर निर्भर है जो समस्या को उत्पन्न करते है। प्रत्येक सामाजिक समस्या अनेक कारणों से होती है, फिर भी उसके प्रमुख कारणों, सहायक कारणों और छोटे उत्तेजित करने वाले कारणों का पता लगाना सम्भव है जो उस समस्या की उत्पत्ति या विकास के लिए उत्तरदायी है। कुछ विद्वानों की यह मान्यता है कि परिस्थितियों के बदलने के साथ –साथ नवीन समस्याएं उठ खड़ी होती है। ऐसी स्थिति में पूरानी समस्याओं का स्थान नवीन समस्याएं ले लेती है। इस दूष्टि से सामाजिक समस्याएँ हल नहीं होती बल्कि उनके स्थान पर नई समस्याएं उठ खड़ी होती है।

सामाजिक समस्याओं का निवारण तभी सम्भव है जब समाज के व्यक्ति चार निम्नांकित भावनाएं रखते है–

**i.** स्थिति सुधारी जा सकती है

**ii.** स्थिति को सुधारने के लिए दृढ़ निश्चय

**iii.** लोगो में विश्वास और यह धारणा कि उनकी बुद्धिमत्ता और प्रयासों से असीमित उन्नति हो।

**iv.** स्थिति को सुधारने के लिए प्रौद्योगिकी और बुद्धिसंगत ज्ञान और निपुणता के प्रयोग की आवश्यकता।

सामाजिक समस्याओं के निवारण हेतु निम्नांकित तीन दृष्टिकोणों पर विचार करना आवश्यक है:–

1. बहु–कारकवादी उपागम :– इसके अनुसार किसी भी सामाजिक समस्या का जन्म अनेक कारको के फलस्वरूप होता है। किसी भी सामाजिक समस्या के लिए कोई एक कारक उत्तरदायी नहीं हैं । उदाहणार्थ, अपराध की समस्या को नियन्त्रित करने के लिए उसका आनुवंशिकता, निर्धनता, बेरोजगारी, सामाजिक गठबंधन, सामाजिक संरचनाओं की कार्यशैली, तनावों और निराशाओं के सन्दर्भ में सामूहिक रूप से अध्ययन किया जाना आवश्यक है अन्यथा वह नियन्त्रित नहीं की जा सकती ।

2. पारस्परिक सम्बद्धता उपागम :– किसी भी सामाजिक समस्या को एक अलग–थलग समस्या अथवा परमाणवीय (atomistically) दृष्टि से नहीं समझा जा सकता। प्रत्येक समस्या दूसरी समस्याओं से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार किसी भी समस्या को हल करने हेतु उससे सम्बन्धित अन्य समस्याओं के निराकरण की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है।

3. सापेक्षिकता :– प्रत्येक सामाजिक समस्या का समय और स्थान से गहरा सम्बन्ध होता है। एक समाज की समस्या को हो सकता है दूसरा समाज, समस्या ही नहीं स्वीकार करे। किसी स्थिति को समस्या के रूप में देखना, समाज विशेष के लोगो के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। सामाजिक

समस्याओं के निवारण में आने वाली कठिनाइयों की निमांकित रूप से समझा जा सकता हैं –

i. सामाजिक समस्या के बने रहने से कुछ शक्तिशाली लोगो के स्वार्थ की पूर्ति होती है, ऐसे लोग बाहरी तौर पर उस समस्या के हल में रूचि दिखाते है, परन्तु आन्तरिक रूप से उनका प्रयत्न यही रहता है कि समस्या, समस्या ही बनी रहे।

ii. सामाजिक समस्या के हल में तब कठिनाई आती है जब निहित स्वार्थ वाले लोगो के द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि समस्या के निराकरण हेतु प्रस्तावित सुझाव समस्या को हल करने के बजाय उसे और गम्भीर बना देंगे।

iii. कई लोग काफी समय तक समस्या को, समस्या के रूप में मानने को तैयार नहीं होते। भारत में लोग राजनीतिक और प्रशासनिक भ्रष्टाचार को मानने को तैयार नहीं थे। लेकिन अब लोग यह स्वीकार करने लगे है कि वास्तव में व्यापक पैमाने पर भ्रष्टाचार व्याप्त है और उसे दूर करने की आवश्यकता है।

## 3.9 सामाजिक समस्याओं के प्रति समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

समाज वैज्ञानिक सामाजिक समस्या को समाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया के रूप में देखता है। समाजशास्त्री वस्तुनिष्ठ तरीके से तथ्यों का विश्लेषण करता है और सामाजिक समस्या के पीछे पाये जाने वाले कार्य–कारण सम्बन्धों का पता लगाने की कोशिश करता हैं वह अपने दृष्टि कोण में सर्वत्र समाजशास्त्रीय तार्किकता को बनाये रखता है। वह जानता है कि कभी समाज क्रान्ति की स्थिति से गुजरता है। तो एक ओर परम्परागत जीवन के ढंग और दूसरी ओर रहन–सहन तथा विचार करने के आधुनिक तरीकों में टकराव की स्थिति पैदा होती है। यह स्थिति ही अनेक प्रकार की सामाजिक समस्याओं के लिए उत्तरदायी है। समाजशास्त्री वैज्ञानिक पद्धतियों को काम में लेता हुआ सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण करता है, और उन्हे हल करने के लिए सामूहिक उपचारात्मक प्रयत्नों का मूल्यांकन भी करता है।

## 3.10 सारांश

प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट है कि सामाजिक समस्याएँ और वैयक्तिक एवं सामाजिक विघटन एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। एक विघटित व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों को अपने व्यवहार द्वारा प्रभावित करता है जिसके फलस्वरूप सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती है और सामाजिक समस्याओं के उग्र रूप धारण करने पर समाज में विघटन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

निदानात्मक दृष्टिकोणों के आधार पर सामाजिक समस्याओं से छुटकारा प्राप्त करना सम्भव है परन्तु फिर भी किसी ऐसे समाज की कल्पना करना कठिन

है जों समस्याओं से पूर्णतः मुक्त हो। अलग–अलग कालों और समाजों में सामाजिक समस्याओं को हल करने में नेताओं की प्रमुख भूमिका होती है। वे जनता को समस्या के निराकरण के सम्बन्ध में स्वस्थ विचार प्रदान कर और समस्या को हल करने में सफलता प्राप्ति के पूर्व सफलता की एक हवा या वातावरण तैयार कर लोगों में एक सामूहिक अभिरूचि उत्पन्न कर सकते हैं। ऐसा होने पर लोगो में आवश्यक धारणायें निर्मित हो पायेंगी और सामाजिक समस्याओ के निराकरण में वे सक्रिय योगदान दे सकेंगे। सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित समाजशास्त्रियों की यही–भूमिका है कि वे समस्याओं के प्रति जागरूकता पैदा करे, इनके कारणों का विश्लेषण करें एवं इनके विषय में सिद्धान्तों को विकसित करे। सामाजिक समस्याओं का व्यक्तियों समूहों और समाज पर प्रभावो के बारे में विचार विमर्श करें और समस्याओं के समाधान के लिए सुझाई गई वैकल्पिक योजनाओं के परिणामों का परीक्षण करें।

## 3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ


1. मर्टन और निस्वेट– कॉन्टेम्पररी सोशल प्राब्लम्स, न्यूयार्क, 1971
2. एलियट, मॉबेल ए. और मैरिल फ्रॉन्सिस ई. –सोशल डिसआर्गेनाईजेशन, न्यूयार्क, 1950
3. आहुजा, राम– सामाजिक समस्यायें, जयपुर, 2011
4. फुलर रिचार्ड सी और मेयर्स, रिपार्ड आर– द नेचुरल हिस्ट्री आफ ए सोशल प्राब्लम, न्यूयार्क, 1941
5. पाण्डेय, संगीता और पाण्डेय तेजस्कर– भारत में सामाजिक समस्यायें, नई दिल्ली, 2009
6. रेनहार्ट, जेम्स एम., मीडोपॉल और गिलेट, जॉन एम– सोशल प्राब्लम्स एण्ड सोशल पॉलिसी, न्यूयार्क, 1952
7. न्यूमेयर, एम. एच.– सोशल प्राब्लम्स एण्ड द चेन्जिग सोसाइटी नयूजर्सी, 1953
8. हर्टन, पॉल बी0 और लेस्ली जेरार्ड आर– द सोशियोलॉजी एण्ड सोशल प्राब्लम्स, न्यूयार्क, 1970


## 3.12 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) दीर्ध उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक समस्या को स्पष्ट करते हुए सामाजिक समस्याओं एवं व्यक्तिगत समस्याओं में अन्तर बताइये।
2. भारत की समकालीन प्रमुख सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालिये।
3. ''सामाजिक विघटन और वैयक्तिक विघटन का सामाजिक समस्याओं से धनिष्ठ सम्बन्ध है।'' स्पष्ट कीजिए।

## (ब) लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. सामाजिक समस्याओं की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
2. भारतीय ग्रामीण सामाजिक समस्याओं को विश्लेषित कीजिए।
3. भारतीय नगरीय जीवन पर, नगरीय सामाजिक समस्याओं के प्रभावों को स्पष्ट कीजिए।
4. सामाजिक समस्याओं के प्रति समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को विवेचित कीजिए।
5. सामाजिक समस्याओं हेतु उपचार (समाधान), और समाधान के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों की व्याख्या कीजिए।

## (स) वस्तुष्ठि प्रश्न

1. ग्रामीण समस्या है–

   (अ) नगरीकरण (ब) अस्पृश्यता

   (स) साम्प्रदायिकता (द) विवाह– विच्छेद

2. अस्पृश्यता निवारण अधिनियम किस अनुच्छेद के अन्तर्गत है?

   (अ) अनुच्छेद–15 (ब) अनुच्छेद–16

   (स) अनुच्छेद–17 (द) अनुच्छेद–18

3. वैयक्तिक विघटन का लक्षण है–

   (अ) आतंकवाद (ब) जनसंख्या वृद्धि

   (स) नशाखोरी (द) भ्रष्टाचार

4. Social Problems and the changing Society" पुस्तक के लेखक हैं–

   (अ) जेम्स एम. रेनहार्ट (ब) एम. एच. न्यूमेयर

   (स) राम आहुजा (द) पॉल वी. हर्टन

5. मलिन बस्तियों की क्या विशेषतायें है?

   (अ) सामाजिक बुराइयों के क्षेत्र

   (ब) निर्धरता की संस्कृति का क्षेत्र

   (स) अनाधिकृत कब्जा वाले संक्रमणित क्षेत्र

   (द) उपर्युक्त सभी

6. घरेलू हिंसा अधिनियम कब पारित हुआ?

(अ) 2004 (ब) 2005

(स) 2006 (द) 2007

7. सामाजिक समस्याओं ने किन भारतीय सामाजिक परिवर्तन को जन्म दिया है?

(अ) नियन्त्रण के अनौपचारिक साधनो के स्थान पर औपचारिक साधनों की प्रमुखता

(ब) धार्मिक मूल्यों के स्थान पर धर्म निरपेक्ष मूल्य

(स) जाति व्यवस्था में शिथिलता

(द) उपर्युक्त सभी

8. सामाजिक समस्याओं के निवारण से सम्बन्धित समाजशास्त्रियों की भूमिका नहीं है–

(अ) समस्याओं के प्रति जागरूकरता उत्पन्न करे।

(ब) विघटनात्मक तत्वों को उत्तेजित करना।

(स) समस्याओं के कारणों का विश्लेषण करे।

(द) समस्याओं के सामूहिक उपचारात्मक प्रयत्नों का मूल्यांकन करना।

9. सामाजिक समस्या का मूल कारण क्या है ?

(अ) जनसंख्या की अनियन्त्रित वृद्धि

(ब) अशिक्षा

(स) सरकार

(द) उपर्युक्त में कोई नहीं

## 3.13 प्रश्नोत्तर

### वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

**1– (ब) 2– (स) 3– (स) 4– (ब)**

**5– (द) 6– (ब) 7– (द) 8– (ब)**

**9– (ब)**

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

# DCESY-102

# भारत में सामाजिक समस्याएँ

## खण्ड – 2

## समाजिक रूपरेखा

**इकाई – 4** **37–50**
भारत में सामाजिक समस्याएँ

**इकाई – 5** **51–62**
प्रवजन

**इकाई – 6** **63–78**
नगरीकरण

**इकाई – 7** **79–92**
बदलती पारिवारिक संरचना

# उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

## उत्तर प्रदेश प्रयागराज

### परामर्श समिति

| | | |
|---|---|---|
| कुलपति | – | प्रो० के० एन० सिंह |
| कुलसचिव | – | डॉ० ए० के० गुप्ता |

### सम्पादक

1. प्रो. सोहन राम यादव
   विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
   बी० एच० यू० वाराणसी। – 221005
2. प्रो. जगदीश नारायण सिंह
   प्रोफेसर, समाजशास्त्र
   बी० एच० यू० वाराणसी। – 221005

### पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | डॉ० एम० एन० सिंह | – | पूर्व निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ० प्र० रा० ट० मु० वि० वि०, प्रयागराज |
| 2. | डॉ० इति तिवारी | – | प्रभारी, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ० प्र० रा० ट० मु० वि० वि०, प्रयागराज |
| 3. | रमेश चन्द्र यादव | – | शैक्षणिक परामर्शदाता, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र०रा०ट०मु०वि०वि०, प्रयागराज |

### DCESY-102 – भारत में सामाजिक समस्यायें

**लेखक**

| | | |
|---|---|---|
| रमेश चन्द्र यादव | – | शैक्षणिक परामर्शदाता, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र०रा०ट०मु०वि०वि०, प्रयागराज |
| डॉ. इति तिवारी | – | एसो० प्रोफेसर, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज। |
| प्रो. मोहम्मद सलीम | – | प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| प्रो. ए.के. पाण्डेय | – | प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| डॉ. अखिलेश कुमार राय | – | एसों. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, वसंत कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी। |
| डॉ. अरूणा कुमारी | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। |
| डॉ. सुस्मिता सिंह | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| डॉ. दिनेश कुमार सिंह | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। |

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज –2023

ISBN- 978-93-83328-42-0

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

# इकाई–04

# भारत में सामाजिक समस्याएँ

सामाजिक जनसांख्यिकीय


4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 भारत में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति

4.3 प्रजननता

4.3.1 प्रजननता का अर्थ

4.3.2 प्रजननता को प्रभावित करने वाल तत्व

4.4 मरणांक या मृत्युक्रम

4.4.1 मृत्युक्रम का अर्थ

4.4.2 मृत्युक्रम की प्रमुख विशेषताएं

4.4.3 मृत्युक्रम के विविध कारण

4.4.4 मृत्यु को प्रभावित करने वाले कारक

4.4.5 शिशु मृत्युक्रम

4.4.6 ऊँची शिशु मृत्युदर के कारण

4.5 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000

4.6 भारत में जनसंख्या नीति में सुधार के लिए सुझाव

4.7 सारांश

4.8 संदर्भ ग्रंथ

4.9 सम्बन्धित प्रश्न

अ. दीर्घ उत्तरीय

ब. लघु उत्तरीय

स. बहुविकल्पीय

4.10 प्रश्नोत्तर


## 4.0 उद्देश्यः–

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः–

- सामाजिक जनसांख्यिकी के अर्थ से अवगत होगे।
- जनसंख्या वृद्धि की प्रवृति को जान पायेंगे।
- सामाजिक जनसांख्यिकी में प्रजननता की भूमिका को समझ पायेंगे।
- सामाजिक जनसांख्यिकी में मत्यर्ता की भूमिका को समझ पायेंगे।
- जनसंख्या नियंत्रण के सरकारी प्रयासों से अवगत हो पायेंगे।

## 4.1 प्रस्तावना

डेमोग्राफी शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों डेमो (Demo) एवं ग्राफी (Graphy) से मिलकर बना है, जिसमें डेमो का अर्थ जनता और ग्राफी का अर्थ लिखना होता है अर्थात् जनता के विषय में लिखना ही इसका अर्थ होता है। इस शब्द का प्रयोग सन् 1855 में आशिले गुइलार्ड ने किया था। आशिले गुइलार्ड के शब्दों में ''जनसांख्किीय (Demography) एक ऐसा विज्ञान है, जो मनुष्य की जनसंख्या के बारे में अध्ययन करता है।

समाजशास्त्र में जनसांख्किीय या जनांकिकी का बहुत ही महत्व है। जनसंख्याशास्त्री समाज की जनसंख्या की प्रकृति और बनावट आदि का विश्लेषण तभी करता है, जब उसे उस समाज की सामाजिक परिस्थितियों का ज्ञान हो। जन्म–दर एवं मृत्यु–दर मात्र जैविकीय घटना ही नहीं, बल्कि सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं एवं विश्वासों पर आधारित सामाजिक घटना भी है। जनस्वास्थ्य की योजनाएं बनाते समय हमें सामाजिक विशेषताओं को भी ध्यान में रखना आवश्यक हो जाता है। जन्म–दर, मृत्युदर, प्रजनन, आवास–प्रवास, वर्गीकरण एवं वितरण, जनसंख्या वृद्धि तथा जनसंख्या समस्या आदि समाज को प्रभावित करती है। बिना इनके अध्ययन एवं ज्ञान के समाज का अध्ययन पूर्ण नहीं हो पाता है। यही कारण है कि सामाजिक जनांकिकी के अन्तर्गत घटनाओं को समझने के लिए भविष्य में प्रक्षेपण (Projection) के लिए एवं जनांकिकीय आँकड़ा एवं विश्लेषण की पद्धति का प्रयोग किया जाता है। सामान्यतया जनांकिकी मूल रूप से जनसंख्या संरचना एवं वितरण पर केन्द्रित रहता है। वहीं दूसरी ओर सामाजिक जनांकिकी जनसंख्या की संरचना की सामाजिक प्रस्थिति और जनसंख्या के वितरण पर ध्यान केन्द्रित करती है।

## 4.2 भारत में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति :

भारत में जनसंख्या का आकार एवं वृद्धि दर अपने जनांकिकीय इतिहास के लिए अर्मूतपूर्ण एवं चिन्ताजनक है। भारत चीन के बाद दूसरा सबसे जनाधिक्य वाला देश है।

भारत की जनसंख्या का वृहद आकार का अनुमान हमें इस तथ्य से लग सकता है कि उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका दोनों की जनसंख्या मिलाकर भी भारत की जनसंख्या से कम है। भारत की जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग 16.64 प्रतिशत है, जबकि भारत का क्षेत्रफल विश्व के कुल क्षेत्रफल का मात्र 2.4 प्रतिशत ही है। इस तरह क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व के अपेक्षाकृत एक बहुत छोटे भाग में विश्व जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग रहता है।

भारत में मृत्यु–दर में कमी तो दिखाई दे रही, परन्तु उसकी अनुपात में जन्म–दर में कमी नहीं दिखाई पड़ रही है, जिसके कारण भारत की जनसंख्या वृद्धि दर एक चिन्ता का विषय बन गया है। सन् 1901 में भारत की जनसंख्या 23. 84 करोड़ अनुमानित की गई। सन् 1951 में 36.10 करोड़, 1981 में 68.33 करोड़, सन् 2001 में 102.70 करोड़ थी, जो 31 मार्च 2011 को राष्ट्रीय जनगणना 2011 के अन्तरिम आँकड़ों के अनुसार भारत क जनसंख्या 121.08 करोड़ हो गयी है। सन् 1991–2001 के दशक में 18.37 करोड़ जनसंख्या की वृद्धि हुई, जबकि 2001–2011 की दश में 18.31 करोड़ की वृद्धि दर्ज की गई। जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर 1991–2001 की अवधि में 1.93 प्रतिशत थी, जो घटकर 2001–2011 में 1.64 प्रतिशत हो गयी। ज्ञातव्य है कि 1981–1991 के दशक में जनसंख्या की औसत वार्षिक वृद्धि 2.14 थी। 1991–2001 की जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर 21.34 प्रतिशत थी, जो 2001–2011 में जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर 17.64 प्रतिशत हो गयी। इससे स्पष्ट होता है कि भारत जनंसख्या वृद्धि दर में गिरावट का सिलसिला प्रारंभ हो गया है।

## 4.3 प्रजननता

### 4.3.1 प्रजननता का अर्थ :

साधारतया प्रजननता का अभिप्राय किसी स्त्री या उनके समूह के द्वारा किसी समयावधि में कुल सजीव जन्में बच्चों की वास्तविक संख्या से है। प्रजननता की माप बच्चों की संख्या से होती है, अथवा एक दी हुई अवधि पर सजीव जन्में बच्चों की बारंबारता ही प्रजननता का माप है।

इस शब्द की परिभाषा विभिन्न जनांकिकीवेत्ताओं ने भिन्न–भिन्न ढंग से की है। प्रमुख परिभाषाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण निम्नवत है–

1. बर्नार्ड बेंजामिन (Bernard Benjamin) ने कहा है कि '' प्रजननता उस दर का माप है, जिसमें कोई जनसंख्या जन्म द्वारा जनसंख्या में वृद्धि करती है और सामान्यतया, जनसंख्या के किसी वर्ग के विवाहित दंपत्तियों की संख्या शिशु जनन क्षमता वाली, आयु वर्ग की स्त्रियों की संख्या अर्थात् प्रजननता की क्षमता उपयुक्त मापदण्ड हो सकता है।''

व्याख्या : इस परिभाषा में प्रजननता के मापों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। उपर्युक्त परिभाषा में मापन की विधियों में उर्वरता दर का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है।

2. जार्ज बार्क्ले (G.W. Barclay) के अनुसार, '' प्रजननता जीवित जन्म की संख्या पर आधारित जनसंख्या की यथार्थ स्तर की क्रियाविधि है।''

व्याख्या : इस परिभाषा में प्रजननता का संबंध जीवित जन्म की संख्या से लगाया गया है। यह आधार प्रजननता से माप के संदर्भ में सर्वथा तर्कसंगत है।

**3.** थाम्पसन और लेविस (Thompson & Lewis) के शब्दों में, ''साधारणतया, प्रजननता का अभिप्राय किसी स्त्री या इनके समूह द्वारा किसी समयावधि में कुल सजीव उत्पन्न बच्चों की संख्या से लगाया जाता है।''

व्याख्या : यह परिभाषा उपर्युक्त परिभाषाओं से अधिक स्पष्ट और तर्कसंगत है। इन परिभाषाओं के विश्लेषण से प्रजननता की निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट होती हैं–

1. प्रजननता का संबंध जन्म की जीवन घटना से होता है।
2. प्रजननता का संबंध जनसंख्या के मात्र एक वर्ग से है। यह वर्ग उस स्त्री जनंसख्या से सम्बद्ध है, जो प्रजनन योग्य आयु (अर्थात 15 से 49 वर्ष के मध्य) के अंतर्गत है।
3. इसमें उत्पन्न बच्चों का सामूहिक अध्ययन किया जाता है।
4. प्रजननता के मापों में सजीव बच्चों को ध्यान में रखा जाता है। इसे यथार्थ सफलता का स्तर या जीवित प्रसवों की

## 4.3.2 प्रजननता को प्रभावित करने वाले तत्व

| परोक्ष सामाजिक घटक | प्रत्यक्ष सामाजिक घटक अन्य | सामाजिक तत्व |
|---|---|---|
| i. विवाह की आयु | i. निरोधक उपाय | i. सामाजिक–आर्थिक परिस्थिति |
| ii. तलाक एवं अलगाव | ii. मृत्युक्रम या मरणांक | ii. औरतों का सामाजिक स्तर |
| iii. वैधव्य | iii. गर्भपात | iii. बच्चों के प्रति दृष्टिकोण |
| iv. प्रसवोपरान्त के प्रतिबंध | iv. बन्ध्याकरण | iv. सामाजिक और सांस्कृति मूल्य |
| v. मासिक धर्म एवं अन्य कारणों से अलगाव | v. भ्रूण हत्या | iv. सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य |
| vi. संयम | | |
| vii. सहवास की बारंबारता | | |
| viii. बहुपत्नी प्रथा | | |

## 4.4 मरणांक या मृत्युक्रम

### 4.4.1 मृत्युक्रम का अर्थ :

मृत्यु एक अनैच्छिक सत्य है। बीमारी, शरीर की शक्ति एवं सामान्य स्वास्थ्य स्तर में गिरावट, हिंसा एवं दुर्घटना आदि का परिणाम मृत्यु है। श्वास का स्पंदन अवद्ध हो जाने तथा शरीर में रक्त की उष्मता विनष्ट हो जाने की स्थिति मृत्यु समझी जाती है। जैविकीय दृष्टि से मृत्यु से आशय उस शरीर का अंत है, जिसका जीवित जन्म हुआ था, किंतु जनांकिकी दृष्टि से मृत्यु जीवन की ऐसी प्रमुख घटना है जो जनसंख्या के आकार, गठन एवं वितरण में कमी लाती है। उदाहरणार्थ यदि रीवा शहर में किसी विशिष्ट व्यक्ति, जो 25 वर्ष का शिक्षित पुरुष है, की मृत्यु हो जाती है तो इससे रीवा शहर की जनसंख्या के आकार, लिंग अनुपात, कार्यशील जनसंख्या की संरचना,साक्षरता का स्तर व शहरी जनसंख्या सभी प्रभावित होंगे और इन सभी की कमी होगी, उपर्युक्त कमी का कारण जीवन की यह महत्वपूर्ण घटना मृत्यु है। मृत्यु की घटनाओं के समूह को मृत्युक्रम या मरणांक (Moratality) कहते हैं। स्पष्टतः मृत्युक्रम का संबंध व्यक्ति विशेष से न होकर व्यक्तियों के समूह से होता है।

### 4.4.2 मृत्युक्रम की प्रमुख विशेषताएं :

1. मृत्युक्रम का संबंध व्यक्ति विशेष से न होकर व्यक्तियों के समूह से होता है।
2. मृत्युक्रम जीवन की ऐसी प्रमुख घटना है, जो जनसंख्या के आकार गठन एवं वितरण में कमी लाती है।
3. यद्यपि मृत्यु का पूर्व निश्चित समय नहीं होता, किंतु मृत्यु सत्य और अवश्यम्भावी है।
4. मृत्यु एक अनैच्छिक घटना है। इस पर मनुष्य का नियंत्रण नहीं रहता है।
5. ऊंची मृत्यु दर अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था का संकेतक है।
6. दीर्घकाल में मृत्युक्रम में स्थिर रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है, जबकि अल्पकाल में अस्थायी उच्चावन संभव है।
7. जनसंख्या की वृद्धि में मृत्युक्रम महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। किसी देश में जनसंख्या वृद्धि का कारण जन्म दर में वृद्धि न होकर मृत्यु दर में कमी हो सकती है।

### 4.4.3 मृत्युक्रम के विविध कारण

मृत्यु के लिए अनेक कारण उत्तरदायी होते हैं, जैसे बीमारी, शक्ति क्षीणता, दुर्घटना आदि। इन कारकों के ऊपर नियंत्रण करने से जीवन काल की वृद्धि होती है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने मृत्यु के विभिन्न कारणों को अनेक श्रेणियों में विभाजित किया है। इनमें कुछ प्रमुख प्रकार निम्न हैं :

1. प्रथम वर्ग : संक्रमक, पराश्रयी और श्वास संबंधी बीमारियां
2. द्वितीय वर्ग : नासूर
3. तृतीय वर्ग : परिसंचार प्रणाली की बीमारियां

4. चतुर्थ समूह : हिंसा से मृत्यु
5. पंचम समूह : अन्य बीमारियां– यथा, मधुमेह जन्म के प्रथम सप्ताह में होने वाली बीमारियां

प्रथम वर्ग में संक्रामक, पराश्रयी एवं श्वास संबंधी बीमारियां सम्मिलित की जाती हैं। विश्व के विकसित देशों में संक्रामक रोग जैसे– मलेरिया, चेचक, हैजा, टाइफाइड, टी0बी0 आदि में प्रायः आदि में विजय पा ली है। परंतु विकासशील देशों में इस संबंध में स्थिति अभी संतोषजनक नहीं है। वस्तुतः जैसे–जैसे आर्थिक विकास होता जाता है, स्वास्थ्य एवं सामान्य शारीरिक नियमों का ज्ञान बढ़ता जाता है। वातावरण में परिवर्तन हो जाता है।

### 4.4.4 मृत्यु को प्रभावित करने वाले कारक

| **I मृत्युक्रम में अधिकता लाने** | **II. मृत्युक्रम को नियंत्रित करने वाले घटक** | **III. मृत्युक्रम में विभिन्नता के कारण** |
|---|---|---|
| 1. सामाजिक व आर्थिक पिछड़ापन | 1. आर्थिक विकास एवं आय में वृद्धि | 1. भौगालिक भिन्नता |
| 2. प्रकृतिक कारण पिछड़ापन | 2. सामाजिक सुधारों प्रभाव | 2. नगरीय ग्रामीण भिन्नता |
| 3. महामारी | 3. स्वयं की स्वच्छता एवं | 3. औद्योगिक वातावरण |

### 4.4.5 शिशु मृत्युक्रम

मृत्यु का दबाव समाज के सभी वर्गों में एक सा नहीं होता है। किसी आयु वर्ग में मृत्यु क्रम अधिक होती है, तो किसी आयु वर्ग में मृत्यु दर कम होती है। मृत्यु का दबाव जन्म के प्रारम्भिक वर्षों में अधिक होता है। फिर आयु के बढ़ने के साथ साथ घटता जाता है। किंतु 50–55 वर्ष की मृत्यु के बाद पुनः मृत्यु की बारंबारता तीव्र होने लगती है। इस तथ्य को चित्र की सहायता से स्पष्ट करने से ज्ञात होता है कि मृत्यु का दबाव का वक्र U आकृति बनाता है।

वृद्धावस्था में होने वाले मृत्यु को स्वभाविक मृत्यु कहा जाता है। किंतु शैशवावस्था की मृत्यु एक अस्वाभाविक मृत्यु है तथा इस आयु में मृत्यु का दबाव बढ़ना समाज के लिए घातक है। यही कारण है कि जनांकिकी वेत्ताओं ने शिशु मृत्युक्रम का प्रारम्भ से ही गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया है।

शिशु मृत्यु दर को चिकित्सा विज्ञान में निम्नलिखित दो भागों में बांटा है :

1. **नव जन्म या नवजात शैशव मृत्यु (Neo-natal Phase) :** इसके अंतर्गत जन्म से लेकर चार सप्ताह तक की अवधि को सम्मिलित किया जाता है। नवजात शैशव मृत्यु प्रायः सभी देशों में बराबर होती है, क्योंकि नवजात शैशव मृत्यु का कारण अधिकांशतः (Intra-uterine) आनुवांशिक तथा विकासीय तत्त्व होते हैं, जिन पर अभी तक आधुनिक चिकित्सा विज्ञान कोई विशेष महत्व प्रभाव नहीं डाल सका है। यद्यपि इस बात के प्रमाण मिलने लगे हैं कि परि–प्रसव (Pre-natal) विकृतियों का प्रमुख कारण गर्भवती स्त्री द्वारा स्वास्थ्य एवं भोजन संबंधी लापरवाही है।

2. **नवजात शैशव के बाद मृत्यु (Post Neo-natal Phase) :** 4 सप्ताह के बाद एक वर्ष तक की अवधि में मरने वाले शिशुओं को 'नवजात शैशव के बाद मृत्यु' कहते हैं। प्रो0 बोग ने लिखा है कि यह दूसरा काल शैशव मृत्यु की दृष्टि से अधिक घातक है, क्योंकि इस अवधि में शिशु वातावरण की कठोरता, दूषित पर्यावरण, भोजन सामग्री की अशुद्धता आदि से वास्तविक संबंध स्थापित करता है; साथ ही उसकी देखभाल भी कम होने लगती है, जिससे मृत्यु की संभावना बढ़ने लगती है। विकसित देशों में चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध होने के कारण शैशव मृत्युक्रम की वृद्धि को बहुत हद तक रोका जा चुका है।

## 4.4.6 ऊंची शिशु मृत्यु दर के कारण

जनसंख्या के आंकड़ों के संबंध में, जैसा कि ऊपर विवेचन किया जा चुका है, मृत्यु का दबाव प्रारंभिक वर्षों में अत्यधिक होता है। अतः बच्चों की मृत्यु दर अधिक ऊंची होती है। प्रो0 बोर्ग का अनुमान है कि शिशु मृत्यु दर प्रायः 65 वर्ष से ऊपर के व्यक्तियों की भी मृत्यु दर से अधिक होती है। यह ऊंची मृत्यु दर जीवन प्रत्याशा को बहुत घटा देती है।

संक्षेप में ऊंची शिशु मृत्यु दर के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी हैं :

1. **जन्म संबंधी कारण (Birth Related Causes) :** जन्म संबंधी कारणों में वे कारण सम्मिलित किए जा सकत हैं जो शिशु की neo-natal death के लिए जिम्मेदार हैं, जैसे– अपरिपक्व जन्म, भ्रष्ट रचना, जन्म से घाव (Birth Wounds), दम घुटना एवं अकुशल नर्स, समय पर मेडिकल सहायता का नहीं मिलना आदि।

2. **जीवन स्तर (Living Standard) :** जीवन स्तर और शिशु मृत्यु दर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। यदि माता–पिता की आय अच्छी है, तो वे बच्चों का पालन–पोषण अच्छी प्रकार करते हैं। शिशु की पर्याप्त देखभाल होती है। दूसरे शब्दों में, ज्यों–ज्यों आर्थिक स्तर में वृद्धि होती जाती है, शिशु मृत्यु दर गिरती जाती है।

3. **शिक्षा का अभाव (Lack of Education) :** शिशु मृत्यु दर माता–पिता की शिक्षा से भी प्रभावित होती है। शिक्षित व्यक्ति सामान्यतः बच्चों के लालन–पालन संबंधी आवश्यक जानकारी रखते हैं। वे अपने बच्चों की बीमारी की अवहेलना नहीं करते उन्हें संतुलित आहार देते हैं तथा रोग निरोध औषधियों के बारे में ध्यान देते हैं। फलतः शिक्षित व्यक्तियों में शिशु मृत्यु दर कम होती है।

4. **चिकित्सा स्तर (Medical Facilities) :** जहां चिकित्सा सुविधाएं आसानी से सुलभ रहती हैं, वहां मृत्यु दर कम पाई जाती है। चिकित्सा सुविधाओं से शिशु रोग का प्रसार नहीं होता, और तत्काल उपचार होने से उन पर नियंत्रण हो जाता है। यही कारण है कि नगरीय क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में शिशु मृत्यु दर अधिक पाई जाती है।

5. **उच्च जन्म दर (High Birth Rate) :** जिन देशों में जन्म दर अधिक होती है, वहां शिशु मृत्यु दर भी अधिक पाई जाती है। जैसे–जैसे जन्म दर में कमी होती जाती है, मृत्यु दर भी कम होती जाती है।

6. **वैधता (Legitimacy) :** जो शिशु वैध होते हैं, उनकी मृत्यु दर अवैध शिशुओं की अपेक्षा कम होती है, क्योंकि अवैध बच्चों को और उनकी मां को समाज में तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है। अतः यदि समाज में अवैध शिशु बच्चों की संख्या अधिक है, तो भी उनकी हत्या के कारण शिशु मृत्यु दर अधिक होगी।

## 4.5. राष्ट्रीय जनसंख्या नीति – 2000

15 फरवरी, 2000 को स्वामीनाथन समिति (Swaminathan Committee) की सिफारिशों के आधार पर केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय जनसंख्या नीति – 2000 की घोषणा की थी।

उद्देश्य (Objectives) : इस नीति के मुख्य उद्देश्यों को तीन भागों में बांटा जा सकता है :

1. तत्कालीन उद्देश्य (Immediate Objectives) : गर्भनिरोध, स्वास्थ्य सेवा ढांचा और समेकित सेवा प्रदान करने संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।

2. मध्यम अवधि का उद्देश्य (Medium Term Objectives) : प्रजनन दर को एक पीढ़ी के बराबर ही दूसरी पीढ़ी की संख्या रखने की स्थिति तक लाना है। इस तरह इसके अंतर्गत वर्ष 2010 तक रणनीति को ज़ोरदार ढंग से लागू कर एक दंपत्ति का केवल दो बच्चों का लक्ष्य हासिल किया जाना है।

3. दीर्घकालीन उद्देश्य (Long Term Objectives) : वर्ष 2045 तक जनसंख्या को स्थिर करना है। आर्थिक वृद्धि, सामाजिक विकास और पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकताओं के अनुरूप स्तर तक जनसंख्या को स्थिर किया जाएगा।

### विशेषताएं :–

1. **राज्य की निर्भय सहभागिता–** राज्यों की निर्भय सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए सरकार ने यह निर्णय किया है कि संविधान के 42वें संशोधन के

अनुसार सन् 1971 की जनगणना के आधार पर लोकसभा की सीटों पर लगाये गये प्रतिबंध को जो सन् 2001 तक मान्य था, बढ़ा कर सन् 2026 तक बढ़ा दिया जाए। यह इसलिए किया जा रहा है कि तमिलनाडु और केरल जैसे राज्यों जिन्होंने छोटे परिवार के मानक का प्रभावी रूप में अनुसरण किया है जो दंडित न किया जाये और उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान जैसे राज्यों को लोकसभा में अधिक सीटें दे कर पुरस्कृत न किया जाए। अतः लोकसभा की सीटों को सन् 2026 तक जड़ीकृत करने का उद्देश्य जनसंख्या नीति की उपेक्षा करने वाले राज्यों को पुरस्कार न देना और जो राज्य छोटे परिवार के मानक का सफलतापूर्वक पालन करते रहे हैं, उन्हें दंड न देना है।

2. **मानवीय प्रभावी विकास नीतियां–** नई नीति में कहा गया है कि ऐसी तर्कसंगत मानवीय प्रभावी विकास नीतियां बनाई जाए जो कि जनकल्याणकारी हो। राष्ट्रीय जनसंख्या नीति में उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान तथा मध्य प्रदेश सहित भारत की करीब आधी आबादी वाले बारह राज्यों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों में जनसंख्या नियंत्रण के लिए प्रभावी कदम नहीं उठाने पर चिंता व्यक्त की गयी है तथा इन प्रदेशों में इस नीति के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए कार्ययोजना की भी घोषणा की गयी है। जिसके तहत न केवल जनसंख्या नियंत्रण के लिए विशेष कदम उठाए जायेंगे बल्कि नागरिकों का जीवन स्तर सुधारने पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।

3. **राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग का गठन–** नई जनसंख्या नीति के कार्यान्वयन पर निगरानी रखने व उसकी समीक्षा के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय 'राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग' (National Population Commission) का गठन किया जायेगा। केन्द्रीय परिवार कल्याण मंत्री व कुछेक अन्य सम्बन्धित केन्द्रीय मंत्रियों के अतिरिक्त सभी राज्यों व केन्द्रशासित क्षेत्रों के मुख्यमंत्री इस आयोग के सदस्य होंगे। जाने माने जनसंख्याशास्त्रियों, जनस्वास्थ्य विशेषज्ञों व गैर सरकारी संगठनों के प्रतिनिधियों को भी इसमें शामिल किया जाएगा।

4. **बालिका समृद्धि योजना एवं मातृत्व सुविधा योजना–** इस नीति के तहत बालिका समृद्धि योजना तथा मातृत्व सुविधा योजना जारी रखे जाने का प्रस्ताव है। साथ ही गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले दंपति अगर कानूनन विवाह योग्य आयु सीमा के बाद शादी करते हैं तथा संबद्ध महिला 21 वर्ष के बाद पहली बार मां बनती है तो उन दंपति को भी पुरस्कृत किया जायेगा।

5. **छोटे परिवार हेतु प्रोत्साहन–** छोटे परिवार के मानक को अपनाने हेतु प्रोत्साहन करने के लिए शामिल किये गये प्रयासों में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं–

   **(i)** केन्द्र सरकार उन पंचायतों और जिला परिषदों को पुरस्कृत करेगी, जो अपने क्षेत्र में रहने वाले लोगों को जनसंख्या नियंत्रण के उपायों को अधिकाधिक अपनाने के लिए प्रेरित करेगी।

   **(ii)** अधिनियम तथा प्रसव पूर्व लिंग परीक्षण तकनीकी निरोधक अधिनियम को कड़ाई से लागू किया जायेगा।

**(iii)** गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले उन परिवारों को पांच हजार रूपये की स्वास्थ्य बीमा की सुविधा दी जायेगी जिनके सिर्फ दो बच्चे हों और दो बच्चों के जन्म के बाद उन्होंने बंध्याकरण करा लिया हो।

**(iv)** ग्रामीण क्षेत्रों में एंबुलेंस की सुविधा उपलब्ध कराने के लिए उदार शर्तो पर ऋण तथा आर्थिक मदद उपलब्ध कराई जायेगी।

**(v)** गर्भपात सुविधा योजना को और मजबूत किया जायेगा।

**(vi)** गैर सरकारी स्वयंसेवी संस्थाओं को इस कार्य से जुड़ने के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा।

6. **लक्ष्य–** नई नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं–

**(i)** सन् 2045 तक जनसंख्या वृद्धि की शून्य–दर को प्राप्त करना।

**(ii)** शिशु मृत्यु को कम करके 30 प्रति हजार जीवित नवजात तक ले जाना।

**(iii)** सन् 2010 तक जन्म दर को कम करके 21 प्रति हजार तक लाना।

**(iv)** सन् 2010 तक कुल प्रजननता दर (TFR) को कम करके 2:1 करना।

**(v)** सन् 2010 तक भारत की जनसंख्या 111.7 करोड़ होगी।

**(vi)** मातृ मृत्यु दर को कम करके 100 प्रति एक लाख जीवित जन्मजात से नीचे लाना।

**(vii)** जनसंख्या को स्थायी करने की रणनीति।

देश की जनसंख्या को सन् 2045 तक स्थायी बनाने हेतु एक सुनिश्चित रणनीति तैयार की है जिसके मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं–

1. नीति निर्धारण व पालन दोनों क्षेत्रों का विकेन्द्रीकरण करना।
2. स्वास्थ्य व प्रजनन संबन्धित सभी प्रकार की सेवाएं प्रत्येक गांव में उपलब्ध कराना।
3. महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा करना।
4. नवजात शिशु व अन्य शिशुओं में मर्त्यता को निम्न से निम्न बनाना।

5. झुग्गी–झोपड़ी निवासियों, अनुसूचित जनजाति, किशोर आयु वर्ग आदि के लोगों तक उन सभी सुविधाओं व सेवाओं को पहुंचाना जिससे जन्म दर पर अंकुश लगाया जा सके।

6. सरकारी, गैर–सरकारी व सहकारी क्षेत्रों की सभी प्रकार की स्वास्थ्य सुविधाओं को उस प्रयास में समाहित करना।

7. प्रजननात्मक स्वास्थ्य, नवजात शिशु स्वास्थ्य सम्बन्धित सेवाओं में हर प्रकार की भारतीय चिकित्सा तंत्र को प्रयोग में लाना।

8. स्वास्थ्य व प्रजनन सेवाओं के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी का नवीकरण करना।

9. बुजुर्गों की देख–रेख का ध्यान रखना तथा

10. प्रजनन सम्बन्धित सूचना के सही प्रसारण करना।

## 4.6 भारत में जनसंख्या नीति में सुधार के लिए सुझाव

जनसंख्या की समस्या के निवारण के दो संभावित उपाय है : **प्रथम**, आर्थिक विकास कार्यक्रम मे जनसंख्या वृद्धि की तुलना में अधिक तेज़ी से वृद्धि करना तथा **द्वितीय**, जनसंख्या वृद्धि को नियोजित प्रयासों द्वारा नियंत्रित करके वृद्धि को रोकना। उल्लेखनीय है कि उत्पादन में इतनी तेज़ गति से वृद्धि की जाये कि वह जनसंख्या वृद्धि को पार कर ले किन्तु भारत के संदर्भ में उपयुक्त यही होगा कि हम एक तरफ़ तो उत्पादन में वृद्धि करें तथा दूसरी तरफ़ जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करें जिससे विकास कार्यक्रमों का संचालन सुचारू ढंग से हो सके।

अतः भारत में जनसंख्या विस्फोट का मात्र उपचार यह है कि प्रजनन क्षमता में कमी लाई जाए। प्रजनन क्षमता में कमी के लिए यह आवश्यक है कि परिवार नियोजन का सहारा लिया जाए।

परिवार नियोजन के साधनों की दृष्टि से निम्नलिखित सुझाव महत्वपूर्ण हैं।

1. गर्भ निरोधक साधनों को उपलब्ध कराना

2. बंध्याकरण के बाद देखभाल

3. परिवार कल्याण केंद्रों की स्थापना

4. सामाजिक विचारधारा में परिवर्तन

5. अनुसंधान

## 4.7 सारांश

भारत में तीव्र जनंसख्या वृद्धि के फलस्वरूप आर्थिक विकास प्रभावित हुआ है। अनियंत्रित रूप से बढ़ रही आबादी हमारी विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए सबसे बड़ी चुनौती बनी हुई है। गांव से शहर की ओर पलायन, आवास, खाद्यान्न एवं जलापूर्ति की समस्या, पारिस्थितिकीय असंतुलन आदि बढ़ती आबादी के परिणाम हैं। अति जनसंख्या वृद्धि हमारे सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन पर विपरीत प्रभाव डालती है और देश की प्रगति में बाधक बनती है। भारत में जनसंख्या वृद्धि के पीछे सामाजिक कारणों का अत्यधिक योगदान है।

## 4.8 संदर्भ ग्रंथ


1. बघेल, डी0एस0, जनांकिकीय : विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली ।
2. सिन्हा एवं सिन्हा, जनांकिकीय के सिद्धान्त : मथुरा पेपर बैक्स, नोएडा।


## 4.9 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में प्रजननता को प्रभावित करने वाले प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सामाजिक घटक का वर्णन कीजिए।
2. भारत में शिशु–मृत्यु के कारणों को स्पष्ट कीजिए।
3. भारत में स्त्रियों के अनुपात कम होने के कारणों को समझाएं।
4. भारत में जनसख्या नीति की उपलब्धियों का उल्लेख कीजिए।
5. भारत में जनसंख्या नीति में सुधार के लिए सुझाव दीजिए।

### (ब) लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. प्रजननता क्या है? स्पष्ट कीजिए।
2. भारत में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति को स्पष्ट कीजिए।
3. मृत्युक्रम क्या है? इसकी प्रमुख विशेषताओं को लिखें।
4. शिशु मृत्युक्रम क्या है, समझाये।
5. राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (2000) के प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन करें।

### (स) बहु–विकल्पीय प्रश्न :–

1. डेमोग्राफी शब्द का प्रथम प्रयोग किसने किया था?

   (अ) मार्शल मॉस (ब) माल्थस

   (स) एडर्नो (द) आशिके गुइलार्ड

2. सन् 2001–2011 के दशक में भारत में जनसंख्या दशकीय वृद्धिदर कितनी है?

   (अ) 15.64 प्रतिशत (ब) 16.64 प्रतिशत

   (स) 17.64 प्रतिशत (द) 18.64 प्रतिशत

3. निम्नलिखित में से प्रजननता को प्रभावित करने वाले तत्व कौन–कौन से हैं?

(अ) विवाह (ब) आयु

(स) बहुपत्नी प्रथा (द) बच्चों के प्रति दृष्टिोकण

4. राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 किस समिति का अनुशंसा पर आधरित हैं?

(अ) स्वामीनाथन समिति (ब) बलवरांत राय समिति

(स) एल. एम. सिंघवी समिति (द) तारापोर समिति

5. भारत में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 में दीर्घकालीन उद्देश्य हेतु वर्ष क्या रखा गया है?

(अ) 2045 (ब) 2050

(स) 2055 (द) 2060

## 4.10 प्रश्नोन्तर

**1. (अ)** **2. (ब)** **3. (द)** **4. (अ)** **5. (अ)**

# इकाई–05

# प्रवजन

## इकाई की रूपरेखा


5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 प्रवजन की परिभाषा

5.3 प्रवजन के रूप

5.4 प्रवजन के प्रकार

5.5 प्रवजन के कारण या निर्धारक

5.5.1. प्राकृतिक कारक

5.5.2. आर्थिक कारक

5.5.3. सामाजिक–सास्कृतिक कारण

5.5.4. राजनीतिक कारण

5.6 प्रवजन में अवरोधक तत्व

5.7 प्रवजन का समाज पर प्रभाव

5.7.1 जनसंख्या के आकार एवं घनत्व में परिवर्तनः–

5.7.2 सास्कृतिक संघर्षः–

5.7.3 धार्मिक विघटनः–

5.7.4 संयुक्त पारिवारिक विघटनः–

5.7.5 आत्महत्याः–

5.7.6 नैतिक पतनः–

5.7.7 निम्न स्वास्थ्य स्तरः–

5.7.8 कार्यक्षमता में ह्रासः–

5.7.9 उत्पादन में बाधाः–

5.7.10 सुविधाओं से वंचितः–

5.7.11 बेरोजगारी का भयः–

5.7.12 श्रम संघों के विकास में बाधाः–

5.7.13 अस्थिर जीवनः–

5.8 प्रवजन के सिद्धांत

5.9 सारांश

5.10 संदर्भ ग्रन्थ

5.11 सम्वन्धित प्रश्न

(अ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ब) लघु उत्तरीय प्रश्न

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

5.12 प्रश्नोत्तर

## 5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः–

- प्रवजन की परिभाषा से परिचित होगें।
- प्रवजन के रूप एवं प्रकारों से अवगत हो सकेंगे।
- प्रवजन के कारणों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- प्रवजन में अवरोधक तत्वो को समझ पायेंगे।
- प्रवजन के कारण समाज पर पड़ने वाले प्रभावो या समस्याओं से अवगत हो पायेंगे।
- प्रवजन के सिद्धांतो की व्याख्या कर पायेंगे।

## 5.1 प्रस्तावनाः–

प्रवजन के अध्ययन का विशेष महत्व है। सम्पूर्ण विश्व में इस प्रक्रिया को देखा जा सकता है। अतः इस प्रक्रिया का विश्लेषण आवश्यक समझा जा रहा है। जनसंख्या प्रवास मात्र स्थान परिवर्तन नही वल्कि किसी प्रदेश के क्षेत्रिय तत्व और क्षेत्रीय सम्वन्धों को समझने के लिए प्रमुख आधार भी है। जनसंख्या प्रवास का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना स्वयं मानवता का। विश्व में जनसंख्या विकास तथा उसके वितरण प्रतिरूप के निर्धारण में प्रवास की प्रमुख भूमिका रही है। विश्व की तमाम समुदायों व प्रजातियों के विकास उनके पूर्वजों के कारण नही वरन् अन्यत्र से स्थानान्तरित होकर आने से हुई है। जलवायु परिवर्तनो के कारण वारी–वारी से विकसित होने वाली मानव प्रजातियाँ वहाँ से स्थानान्तरित होकर

विश्व के विभिन्न भागों में फैली। अतः जनसंख्या परिवर्तन, प्रतिरूप, संरचना आदि के विश्लेषण में प्रवजन के अध्ययन की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

## 5.2 प्रवजन या प्रवास की परिभाषा

प्रवजन भौतिक तथा सामाजिक आदान–प्रदान की एक प्रक्रिया हैं जिसकी गति व दिशा अनिश्चित होती है। अपने स्वाभाविक निवास से अलग होना प्रवास है किन्तु अल्पकालिक अलगाव प्रवास नही है। प्रवास उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसमें व्यक्ति अपने मूल स्थान को छोड़ देता है और किसी अन्य स्थान पर जाकर वस जाता है। मनुष्य की यह गतिशीलता स्थायी अथवा अस्थायी दोनो प्रकार की हो सकती है।

वैरी एडमौन्स्टन एवं मारगरेट ने लिखा है ''प्रवास से आशय भौगोलिक अथवा स्थानिक गतिशीलता से है जिसमें कोई व्यक्ति स्पष्ट रूप से परिभाषित भौगोलिक इकाई में स्थित अपने स्वाभाविक निवास स्थान को वदल देता है।''

वोग (1959) के अनुसार :– ''प्रवास का अर्थ है एक मानव समुदाय या समूह द्वारा अपने स्थान (प्रदेश, देश आदि) को त्यागकर किसी अन्य स्थान पर जाकर रहना या वस जाना।''

संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) द्वारा दी गयी परिभाषा के अनुसार ''प्रवास सामान्यतः निवास स्थान को बदलते हुए एक भौगोलिक इकाई से दूसरी इकाई के लिए भौगोलिक गतिशीलता का एक रूप है।''

## 5.3 प्रवजन के रूप

स्थान परिवर्तन के दो रूप होते हैंः–

1. उत्प्रवास (Emigration):– जव कोई व्यक्ति या समूह अन्यत्र बस जाते हैं उस संदर्भ में इस प्रवास को उत्प्रवास (Emigration) या वाह्य प्रवास कहा जाता है और प्रवासी मनुष्य को उत्प्रेवासी (Emigration) कहते हैं। भारत से जापान, चीन, अमेरिका या यूरोप आदि में बसे भारतीय को उत्प्रवासी कहा जाता हैं।

2. आप्रवास (Immigration) अन्य स्थानों के मनुष्य जब यहाँ आकर बस जाते है तो ऐसे स्थानान्तरण को आप्रवास या आव्रजन (Immigration) कहते हैं और ऐसे मनुष्यों को आप्रवासी (Immigration) कहते हैं।

## 5.4 प्रवजन के प्रकार

दीर्घकालीन प्रवास (Long Period Migration):– दीर्घकालीन प्रवास कभी–कभी होते हैं। सत्रहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक यूरोपीय देशों से उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका दक्षिणी अफ्रिका आस्ट्रेलिया में होने वाले प्रवास इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। ब्रिटिश काल में चाय वागानों में काम करने के लिए भारत से श्रीलंका, दक्षिण–अफ्रीका आदि के लिए जो प्रवास हुए थे वे दीर्घकालीन मानव प्रवास के उदाहरण थे।

1. अल्पकालीन प्रवास (Short Period Migration) इसके अन्तर्गत वे मानव प्रवास सम्मिलित होते हैं जिनकी अवधि थोड़ी होती हैं। इसमें प्रवासी कुछ दिन या महीने के भीतर ही अपने मूल स्थान को लौट आते है। देशातन, तीर्थ यात्रा, राजनीतिक उद्देश्यो से की गयी देश–विदेश की यात्रा आदि के रूप में लघु समय के लिए होने वाले मानव प्रवास को इसी वर्ग में रखा जाता है।

2. दैनिक प्रवास (Daily Migration) :– प्रतिदिन होने वाला जनसंख्या प्रवास मुख्यतः वड़े शहरों एवं उसके उपनगरीय क्षेत्रो के मध्य पाया जाता है। वड़ी संख्या में लोग प्रतिदिन प्रातः कारखानों तथा कार्यालयों में काम करने, कालेजो में पढ़ने एवं अन्य उद्देश्यों से मुख्य शहर के लिए प्रवास करते है। सायः काल ये अपने गृहनगर लौट आते हैं। इस प्रकार का प्रवास दैनिक प्रवास कहलाता है।

3. मौसमी प्रवासः– वर्ष के किसी निश्चित समय या ऋतु में प्रतिवर्ष होने वाले मानव प्रवजन को मौसमी प्रवजन कहते हैं। इस प्रवास का समय और अवधि लगभग निश्चित होता है। मौसमी प्रवजन उच्च पर्वतीय प्रदेशो में अधिक होते हैं। हिमालय एवं उसके आस–पास के पर्वतीय प्रदेशो के लोग ग्रीष्म ऋतु में उँचे भागों में रहते हैं। शीतऋतु आरम्भ होने पर चारागाह जव वर्फ से ढक जाते हैं और ठंडक वढ़ जाती है वे अपने परिवार एवं पशुओ के साथ निचली घाटियों के लिए प्रस्थान करते हैं।

इस प्रकार का प्रवजन प्रतिवर्ष ऋतु परिवर्तन के साथ होता रहता है। संसार के अनेक भागों में सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक कारणों से भी मौसमी प्रवजन होते रहते हैं।

## 5.5 प्रवजन के कारण

जनंसख्या स्थानान्तरण के आकार, गति एवं दिशा को दो विपरीत गुणों वाली शक्तियाँ नियंत्रित करती हैं– आकर्षण एवं प्रत्याकर्षण (Pull and Push faotors)। किसी प्रदेश में उपलब्ध प्राकृतिक एवं आर्थिक संसाधन तथा निवास योग्य भौगोलिक दशाएं अन्य प्रदेशो के व्यक्तियो को अपनी ओर आकर्षित करती है। कृषि योग्य भूमि, जल की उपलब्धता, प्रचुर खनिज भंडार आदि आकर्षण के प्रमुख तत्व हैं।

जव क्षेत्र विशेष की जलवायुविक दशाएँ मनुष्य के रहने के अयोग्य हो जाती हैं अथवा प्राकृतिक संकट जैसे वाढ, महामारी, आर्थिक–सामाजिक संकट जैसे निर्धनता, वेरोजगारी, धार्मिक उन्माद आदि बढ़ जाते हैं तो इस कारण भी लोग सुरक्षित स्थानों को स्थानान्तरण (प्रवजन) करते हैं। किसी स्थान को छोड़ने को विवश करने वाली शक्तियों को प्रतिकर्षण शक्तियाँ कहते हैं।

जनसंख्या प्रवास को प्रभावित करने वाले समस्त कारकों को चार वर्गो में विभाजित किया जाता है–

1. प्राकृतिक कारक
2. आर्थिक कारक
3. सामाजिक–सांस्कृतिक कारक
4. राजनीतिक कारक

## 5.5.1. प्राकृतिक कारकः–

प्राकृतिक कारको में जलवायु परिवर्तन वाढ़, सुखा आदि प्रमुख है। ग्रिफ्रिथ टेलर जैसे विद्वानों का मत है कि सभी प्रमुख मानव प्रजातियों के विकास का मूल स्थान मध्य एशिया है जहाँ विभिन्न प्रजातियों का विकास हुआ व हिमयुग के आगमन पर ये प्रजातिया वाहरी प्रदेशों को स्थानान्तरित हुईं व सम्पूर्ण विश्व में फैली। पर्वतीय भागों में हिमवर्षा के कारण मनुष्य निचली धारियो को प्रस्थान करते हैं उसे मौसमी प्रवास कहते हैं।

जलवायु व अत्यधिक वर्षा व बाढ़ से जन भूमि व आवास जलमग्न हो जाते हैं तो लोग अपने स्थान छोड़ने को विवश हो जाते हैं। एवं अन्यत्र शरण लेते हैं। किसी क्षेत्र के अनुपालन भूमि एवं जीविका के साधनों के अभाव में भी वहाँ से लोग पलायन कर जाते हैं।

## 5.5.2. आर्थिक कारकः–

आर्थिक कारक प्रवास के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी है। पर्याप्त कृषि योग्य भूमि, सिचाई के साधन एवं उपयुक्त जलवायु जहाँ विद्यमान होते हैं वे आकर्षण के केन्द्र होते हैं। उत्तरी भारत के विशाल मैदान, चीन के पूर्वी भाग, उत्तरी पश्चिमी यूरोप आदि प्रदेशो में जनसंख्या अधिकता के लिए आर्थिक कारको की महत्वपूर्ण भूमिका है।

प्रायः सभी महानगरो तथा उनके उपनगरीय क्षेत्रों के मध्य आर्थिक कारणो से दैनिक प्रवास होता है।

## 5.5.3. सामाजिक–सास्कृतिक कारणः–

प्रवास के लिए सामाजिक–सास्कृतिक कारकों का विशेष महत्व है। सामाजिक प्रथाएँ, मान्यताएँ, स्तर एवं धार्मिक संकट आदि कारक प्रवजन को प्रभावित व नियंत्रित करते हैं। किग्सले डेविस (1951) ने माना भारत में विवाह के कारण स्त्रियों के प्रवजन की दर उच्च है। विकासशील देशो व पिछड़े सामाजिक स्तर में गतिशीलता अधिक होती है। शिक्षा भी प्रवास को प्रोत्साहित करती है।

धार्मिक संकट भी प्रवास को प्रोत्साहित करती है। धार्मिक सकटों के कारण लाखों यहुदियों को जर्मनी और ह्यगनाट समुदायों को फ्रांस छोड़ना पड़ा। भारत पाकिस्तान विभाजन राजनीतिक था परंतु विभाजन का आधार धार्मिक था।

## 5.5.4. राजनीतिक कारणः–

राजनीतिक कारणो में आक्रमण, राज्य विस्तार एवं नीतियाँ प्रमुख है। सत्रहवीं से उन्नीसवी शताव्दी तक अंग्रजों, पुर्तगालियों, डचों एवं फ्रासीसियों ने

उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका, एशिया में अपने–अपने उपनिवेशों की स्थापना की व करोड़ो लोगों ने प्रवजन किया।

सन् 1971 में तत्कालीन पश्चिमी पाकिस्तान में चल रहे आन्दोलन के दौरान एक करोड़ शरणार्थी सीमा पार भारत आ गये थे। राजनीतिक कारणों से होने वाले प्रवजन के ये, कुछ उत्कृष्ट उदाहरण है।

## 5.6 प्रवजन में अवरोधक तत्व

1. **प्राकृतिक अवरोधकः–** विशाल महासागर, मरूस्थल, दुर्गमज़ंगल पर्वत श्रृखलाएँ इत्यादि प्रवजन में प्रमुख प्राकृतिक अवरोधक है। भारत के उत्तरी सीमा स्थित हिमालय पर्वत के रास्ते कभी प्रवास नही हो पाया। अफ्रीका में सहारा व कालाहारी थार आदि मरूस्थलों में जल के अभाव के कारण यात्रा दुष्कर व कष्ट पूर्ण है। ये विशाल मरूस्थल प्रवास में अवरोध उत्पन्न करते हैं तथा भूमध्य रेखीय वनों की अति सघनता, जनाधिक्य, बाढ, निम्न दलदलीय भूमि भी प्रवास को अवरूद्ध करते हैं। अंटार्कटिका जैसे हिमाच्छारित भूखण्ड भी प्रवास अवरोधक हैं।
2. **कृत्रिम अवरोधकः–** वर्त्तमान काल में राजनैतिक व सरकारी नियंत्रण ही प्रवजन में सवसे प्रमुख अवरोधक हैं। प्राचिन काल में वाह्य आक्रमणों से सुरक्षा हेतु राज्य सीमा वंद करने का प्रावधान था ताकि शरणार्थियों व घुसपैठियों को रोका जा सके। समाज में प्रचलित सामाजिक प्रथाए, रूढ़ियॉ व मानदण्द भी उत्प्रवास में अवरोध उत्पन्न करती हैं।

## 5.7 प्रवजन का समाज पर प्रभावः–

प्रवजन का प्रभाव दो तरह से पड़ता है। प्रवजन छोड़े हुए क्षेत्र एवं अपनाए हुए क्षेत्र दोनों को ही विभिन्न रूपों से प्रभावित करता है। प्रवजन का समाज पर निम्नलिखित प्रभाव कहा जा सकता है।

### 5.7.1 जनसंख्या के आकार एवं घनत्व में परिवर्तनः–

प्रवजन के साथ दो प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं। एक स्थान को छोड़ना तथा दूसरे स्थान पर वसना। जहाँ से व्यक्ति प्रवास करता है वहाँ की जनसंख्या का आकार छोटा हो जाता है और जिस स्थान पर वसता है वहाँ की जनसंख्या में वृद्धि होने लगती है। उदाहरणस्वरूप ग्रामीण–नगरीय देशान्तरण के कारण ग्रामीण क्षेत्रो में जनसंख्या के घनत्व मे कमी आई है जवकि वड़े–वड़े शहरो की जनसंख्या के घनत्व में वृद्धि हुई है।

### 5.7.2 सास्कृतिक संघर्षः–

जब एक–खास समूह के लोग एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को प्रवजन करते हैं तव अपने साथ सांस्कृतिक तत्वो को भी ले जाते हैं। जिस क्षेत्र में लोग प्रवजन

करते हैं वहाँ के लोगो के वीच सास्कृतिक संघर्ष को स्थिति उत्पन्न हो जाती है। लेकिन धीरे–धीरे विभिन्न समूहों में अन्तःक्रिया के कारण सांस्कृतिक सामंजस्य उत्पन्न होने लगता है। उदाहरणस्वरूप जव मुसलमान भारत आये थे तव उनके अपने आदर्शात्मक प्रतिमान थे तथा भारत में निवास करने वाले हिन्दुओ के सांस्कृतिक मूल्य मुसलमानो से भिन्न थे, जिससे कला धर्म, प्रथा एवं नैतिकता आदि वहुत से क्षेत्रों में दोनो संस्कृतियों में संर्घष उत्पन्न हुआ। कालान्तर में दोनो संस्कृतियों में समागम भी हुआ व आदान–प्रदान को प्रोत्साहन मिला।

### 5.7.3 धार्मिक विघटनः–

प्रवजन धार्मिक विघटन को भी प्रोत्साहित करता है। धर्म का प्राथमिक समूहों में अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। धर्म और सामाजिक वातावरण अन्तः सम्वन्धित होते हैं। इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। जव प्राथमिक सम्वन्ध नगरों में द्वितीयक सम्वन्धों का स्वरूप ग्रहण करते हैं तो धार्मिक गाँठें टूटने लगती हैं। इससे संस्थात्मक विघटन प्रारम्भ हो जाते हैं।

### 5.7.4 संयुक्त पारिवारिक विघटनः–

नई जीवन पद्धति ने पारिवारिक संगठन को अधिक मात्रा में प्रभावित किया है। नगरों में स्थानाभाव के कारण सम्पूर्ण किसान परिवार के लिए वहाँ रहना असम्भव हो जाता है। इसका परिणाम तलाक और पृथक्करण के रूप में होता है। कुछ भी हो प्रवास कम या अधिक मात्रा में पारिवारिक विघटन को प्रोत्साहित करता है।

### 5.7.5 आत्महत्याः–

दुर्खीम ने आत्महत्या के लिए निम्न दो कारणों का उल्लेख किया है–

**(अ)** व्यक्ति का सामाजिक एकीकरण, और

**(आ)** व्यक्ति के सामूहिक लगाव में कमी।

प्रवास ऐसा कारक है जो पारिवारिक, सामूहिक ढ़ाँचे को नष्ट कर देता है। जव व्यक्ति आर्थिक उन्नति के लिए प्रवास करता है, तो इससे व्यक्तिगत विघटन होता है। सामंजस्य के अभाव में व्यक्ति आत्महत्या की ओर अग्रसर होता है।

### 5.7.6 नैतिक पतनः–

प्रवासी प्रवृत्ति का परिणाम यह होता है कि इससे व्यक्ति और समाज का नैतिक पतन होता है। शहरों में जाकर वे परिवार, पड़ोस, धर्म आदि के नियन्त्रणों से मुक्त हो जाते हैं। परिवार से दूर रहते हैं और अपनी यौन की मूलभूत इच्छा को दवाने में असमर्थ रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वेश्यागमन का सहारा लेते हैं। कारखानों में दिन भर काम करके वे अपनी शारीरिक और मानसिक शक्ति नष्ट कर देते हैं। परिवार के अभाव में उन्हें स्वस्थ मनोरंजन नहीं मिल पाता है। इसका परिणाम यह होता है कि जुआ और मद्यपान का सहारा लेते हैं। इससे उनका नैतिक पतन होता है।

### 5.7.7 निम्न स्वास्थ्य स्तरः–

प्रवासिता के परिणामस्वरूप श्रमिकों का स्वास्थ्य स्तर निम्न से निम्नतर होता जाता है। इसके 3 प्रमुख कारण हैं–

(अ) श्रमिकों को कठिन परिश्रम करना पड़ता है, और

(आ) उन्हे भरपेट पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता है, और

इससे श्रमिकों का स्वास्थ्य खराव होता जाता है। वे मानसिक दृष्टि से चिन्तित रहने लगते हैं। इसके साथ ही वे अनेक प्रकार की वीमारियों के शिकार हो जाते हैं।

### 5.7.8 कार्यक्षमता में ह्रासः–

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि श्रमिकों के काम करने की दशाएँ अत्यन्त ही अस्वस्थकर होती हैं। इसका असर उनके स्वास्थ्य पर पड़ता है। वे अनेक संक्रामक और भयंकर रोग से ग्रस्त हो जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिकों की शारीरिक और मानसिक क्षमता का ह्रास होने लगता है।

### 5.7.9 उत्पादन में बाधाः–

प्रवासी प्रवृत्ति के कारण राष्ट्रीय उत्पादन में वाधा उत्पन्न होती है। प्रवासी प्रवृत्ति के परिणाम होते हैं–

(अ) प्रवासिता के कारण उनकी कुशलता और कार्यक्षमता में वृद्धि नही ंहो पाती है, तथा

(आ) प्रवासिता के कारण औद्योगिक क्षेत्रों में यह अनिश्चितता वनी रहती है कि किस दिन कितने मजदूर काम पर आएँगे।

इससे उत्पादन कम होता है, उत्पादन लागत में वृद्धिहोती है और राष्ट्रीय हानि होती है।

### 5.7.10 सुविधाओं से वंचितः–

श्रमिकों की प्रवासी प्रवृत्ति उन्हे अनेक प्रकार की सुविधाओं से भी वंचित कर देती है। श्रमिकों को जो सुविधाएँ मिलती हैं, वे दो प्रकार की होती हैं–

(अ) कल्याणकारी और

(व) सामाजिक सुविधाएँ सिर्फ उन्हीं श्रमिकों को प्राप्त होती हैं, जो एक निश्चित समय तक काम करते हैं। इस प्रकार प्रवासी श्रमिक इस प्रकार की सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं।

### 5.7.11 बेरोजगारी का भयः–

प्रवासिता से वेरोजगारी और अर्द्ध–वेरोजगारी के वढ़ने का भय भी उत्पन्न हो जाता है। मजदूर कारखानों से छुट्टियों में वृद्धि करते रहते हैं। जब वे लम्वे अर्से तक काम पर नहीं लौटते हैं, तो उनके स्थान पर नई नियुक्तियाँ कर ली जाती हैं। इससे वेरोजगारी के वढ़ने का भय उत्पन्न हो जाता है।

### 5.7.12 श्रम संघों के विकास में बाधाः–

प्रवासिता का परिणाम यह होता है कि श्रमिक स्थायी तौर पर एक स्थान पर नहीं रह पाते हैं। इसके साथ ही श्रमिक श्रम संघों की सदस्यता को ग्रहण नहीं कर पाते हैं। इसके दो परिणाम होते हैं–

**(अ)** श्रम संघों के सदस्यों में कमी रहती है, और

**(आ)** श्रम संघ को शक्ति प्रदान नहीं हो पाती है।

इससे श्रमिको का संगठन शक्तिशाली नहीं हो पाता है, जिससे श्रमिक अपनी समस्याओं के समाधान में असमर्थ रहते हैं।

### 5.7.13 अस्थिर जीवनः–

प्रवासिता का परिणाम यह होता है कि इससे श्रमिकों का जीवन अस्थिर हो जाता है। वे कभी शहरों में रहते हैं, तो कभी गाँवों में। कभी उद्योगों में काम करते हैं, तो कभी कृषि कार्यों का सम्पादन करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वे अपने को अनिश्चित परिस्थितियों में पाते और उनका व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन अत्यन्त ही अस्थिर हो जाता है।

## 5.8. प्रवजन के सिद्धांत

मनुष्य प्रवजन का मुख्य अभिकर्ता है। वह गतिशील व विवेकशील प्राणी है। उसके व्यवहार में अनिश्चतता पायी जाती है। अतः किसी एक नियम का प्रतिपादन कठिन है। प्रवजन अनेकानेक सामाजिक–आर्थिक दशाओं से प्रेरित होते हैं अतः कोई निश्चित माडल या सिद्धान्त प्रेषित करना कठिन कार्य है। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सामाजिक विज्ञानों ने इस सन्दर्भ में कुछ रूचि दिखायी है, जैसे –

### 5.8.1. रैवेन्स्टीन का प्रवास नियम (Revenstein Law of Migration):–

सर्वप्रथम सन् 1889 में प्रवास के नियम की व्यख्या आयी। अनुभाविक आधार पर लिखित यह सिद्धांत प्रवास के सात नियमों पर आधारित है।

**i.** प्रवास व दूरी (Migration and Distance):– अधिकांश प्रवास मध्यम दूरी ही स्थानान्तरित होते हैं। वृहत् प्रवास व्यापारिक या औद्योगिक केन्द्रो की ओर होती है यह नियम दो प्रकार से क्रियाशील होती है (अ) दूरी क्षय कार्य (Distance decay function) जिसके अनुसार दूरी वढ़ने के साथ–साथ प्रवास की मात्रा घटती है और व लम्वी दूरी के प्रवासी वृहत् व्यापारिक तथा औद्योगिक केन्द्रो को प्राथमिकता देते हैं।

**ii.** अवस्थाओं में प्रवास (Migration in phases):– सर्वप्रथम ग्रामीण अंचल से व्यक्ति समीपवर्त्ती नगरों की तरफ आकृष्ट होते हैं जिससे ग्रामीण क्षेत्रों ने रिक्तता आती है। रैवेन्स्टीन के अनुसार यह क्रम तव तक चलता है जव तक कि वृहद नगर का प्रभाव दूरस्थ क्षेत्रो तक नही पहुचं जाता।

इसमें विखराव या प्रकीर्णन प्रक्रिया (Dispension Process) अवशोषण या अन्तर्लयन प्रक्रिया (Absooption process) के विपरीत होती है किन्तु दोनो के लक्षणों में सादृश्यता पायी जाती है।

**iii.** धारा और प्रतिधारा (Drift and counterdrift):– प्रत्येक प्रवजन की मुख्य धारा से रिक्तियॉ उत्पन्न होती है जिनकी पूर्ति के लिए प्रतिधारा का जन्म होता है। इस प्रकार प्रवजन की मुख्य धारा प्रतिधारा को उत्पन्न करती है।

**iv.** ग्रामीण–नगरीय विभेद (Rural-urban Differential):– नगरीय मनुष्य ग्रामवासियो की तुलना में प्रवजन कम करते हैं। कारण नगरीय केन्द्रो पर जीवन की अन्यान्य सुविधाओं के साथ ही रोजगार के नये–नये अवसर उपलब्ध होते हैं जिससे नगर वासियों को वाहर जाने की आवश्यकता कम होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाओं में अभाव में वहाँ के लोग अन्य स्थानों के लिए प्रवास के इच्छुक होते हैं।

**v.** स्त्रियों की वहुलता (Female Majority):– कम दूरी के प्रवास में स्त्रियों की वहुलता पायी जाती है। लम्वी दूरी के प्रवास में स्त्रियों की भागीदारी वहुत कम होती है।

**vi.** तकनीकी विकास और प्रवास (Technologioal Development and migration):– तकनीकी प्रगति के साथ–साथ जनसंख्या के प्रवास की मात्रा में वृद्धि होती है।

**vii.** आर्थिक उद्देश्य की प्रमुखता (Primary of economic aims):– प्रवास सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक अनेक कारणों से होते हैं किन्तु इनमें आर्थिक उद्देश्य ही सर्वोपरि होते हैं।

रैवेन्स्टीन द्वारा प्रतिपादित प्रवजन के अधिकांश नियम व्यवहारिक जगत में सत्यसिद्ध हुए हैं। इनके आधार पर वाद के विद्धानो ने अन्य सिद्धातों का प्रतिपादन किया।

## 5.8.2. आकर्षण एवं दाव सिद्धान्त (Pull and Push theory):–

यह सिद्धान्त प्रवजन के कारणों तथा प्रवजन वासियो द्वारा निर्णय लेने कि प्रक्रिया को प्रदर्शित करता है। किसी भी मनुष्य के लिए प्रवजन का निर्णय दो विपरित शक्तियों–आकर्षण (Pull) और दान (Push) के अन्तंर्द्वन्द्व का परिणाम होता है। प्रवासी के मूल स्थान पर दाव या प्रतिकर्षण शक्ति तथा गन्तव्य स्थान पर आकर्षण शक्ति क्रियाशील होती है जो प्रवजन को प्रेरित करती है।

**(अ)** दाव या दवाव शक्ति (Push Force):– यह प्रावसी के मूल स्थान पर क्रियाशील होती है और लोगो को अपना निवास स्थान छोड़कर जाने को वाहय करती है। किसी स्थान पर व्याप्त निर्धनता, वेरोजगारी, युद्ध, वाढ़,

सुखा आदि प्राकृतिक आपदाएं वहाँ के निवासियों को स्थान छोड़ने को विवश करती हैं।

**(ब)** आकर्षण शक्ति (Push force):– यह गन्तव्य स्थलों पर विद्यमान होती है। अन्यत्र मौजूद साधन–सुविधाएँ शिक्षा, मनोरंजन आदि सुविधाओ की उपस्थिति लोगो को अपनी ओर खीचती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी स्थान पर दवाव के कारण उत्प्रवास (Emigration) और आकर्षण के फलस्वरूप आप्रवास (Immigration) की प्रक्रिया क्रियाशील होती है।

## 5.9 सारांश

प्रवजन को जनांकिकी एक महत्वपूर्ण परिर्वतनकारी शक्ति के रूप में लेता है। इसमें प्रवास का अध्ययन जनसंख्या के आकार, संरचना, वितरण में आने वाले परिवर्तनो के सन्दर्भ में किया जाता है। प्रवास के कारण उस क्षेत्र की जनसंख्या के आकार में परिवर्तन आते हैं, उसकी आयु–संरचना, लिंग–संरचना उस स्थान के घनत्व में परिवर्तन आते है, जहाँ प्रवासित जाकर बसते हैं। जनांकिकी में स्थान विषय का भी अध्ययन किया जा सकता है जहाँ से प्रवासित छोड़कर आते हैं। यह उल्लेखनीय है कि प्रवासी हमेशा समाज का वह अंग रहता है जो प्रगतिशील, साहसी एवं संघर्षशील होता है। वह शेष समाज से वेहतर जनशक्ति का द्योतक होता है। अतः प्रवास का अध्ययन प्रवासितों की आयु, लिंग वैवाहिक स्तर, शिक्षा का स्तर आदि के सन्दर्भ में किया जा सकता है।

## 5.10 संदर्भ ग्रन्थ


1. मौर्य, एस0डी0, (2005), जनसंख्या भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, इलाहावाद।
2. पंत, जे0सी0, (2010), जनांकिकी, विशाल पब्लिशिंग को0, जालंधर।


## 5.11 सम्वन्धित प्रश्न

**(अ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्नः**

1. जनसंख्या प्रवजन के किन्ही दो सिद्धान्तो का विवेचन कीजिए।
2. अंतर्राष्ट्रीय जनसंख्या के प्रवास के कारणों एवं परिणामों का विश्लेषण कीजिए।
3. प्रवजन का अर्थ स्पष्ट कर इसके अवरोधक तत्वों के वारे में लिखिए।
4. भारत में प्रवजन की समस्या पर संक्षिप्त निबंध लिखिए।
5. प्रवजन के प्रमुख निर्धारकों की चर्चा कीजिए।

**(ब) लघु उत्तरीय प्रश्नः**

1. प्रवजन का अर्थ वताइये।
2. प्रवजन के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारणों की विवेचना कीजिए।

3. प्रवास के प्रमुख प्रकारों का विश्लेषण कीजिए।

4. मौसमी प्रवास की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

## स. वस्तुनिष्ठ प्रश्नः

1. प्रवजन कितने प्रकार के होते है?

   (अ) एक (ब) दो

   (स) तीन (द) चार

2. स्थान विशेष को छोड़ने को मजबूर करने वाली शक्तियों को क्या कहते हैं ?

   (अ) आर्कषण (ब) प्रतिर्कषण

   (स) प्राकृतिक कारण (द) आर्थिक कारण

3. कौन प्राकृतिक अवरोधक नही है?

   (अ) महासागर (ब) मरूस्थल

   (स) पर्वत–पठार (द) सामाजिक प्रथॉए

4. प्रवजन को भौगोलिक निस्तरता किसने माना है ?

   (अ) वोग (ब) रेवेन्स्टीन

   (स) U.N.O. (द) गुइलाई

5. ''विवाह प्रव्रजन का एक बड़ा कारण है'', किसने कहा है ?

   (अ) लेविस (ब) डेविड

   (स) मागेन (द) मुखर्जी

## 5.12 प्रश्नोत्तरः

**1. (स) 2. (ब) 3. (द) 4. (स,) 5. (ब)**

# इकाई–06

# नगरीकरण

## इकाई की रूपरेखा


6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 नगरीकरण का अर्थ

6.3 भारत में नगरीकरण की प्रवृति

6.4 शहरी व ग्रामीण जनसंख्या का वितरण

6.5 नगरीकरण की समस्याए

6.6 नगरीकरण एवं गंन्दीवस्ती

6.7 नगरीकरण एवं पर्यावरण अवनयन

6.8 नगरीकरण के सामाजिक प्रभाव

6.9 सुझाव

6.10 नगरीकरण की समस्या समाधान हेतु सरकारी प्रयास

6.11 सारांश

6.12 संदर्भ ग्रन्थ

6.13 संबंधित प्रश्न

(अ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ब) लघु उत्तरीय प्रश्न

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

6.14 प्रश्नोत्तर


## 6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः–

- नगरीकरण के अर्थ को समझ पायेंगे।
- भारत में नगरीकरण की प्रवृति को जान सकेंगे।
- नगरीकरण की समस्याओं से अवगत हो सकेंगे।

- समस्याओ के विविध आयाम जैसे–गंदी बस्ती, पर्यावरण अवनयन व इसके सामाजिक प्रभावों से अवगत हो पायेंगे।
- नगरीकरण से जुड़ी समस्याओं को दूर करने के सरकारी प्रयासों से परिचित होगें।

## 6.1 प्रस्तावना

मानव सन्यता के इतिहास के प्रत्येक युग में नगर सन्यता एवं संस्कृति के केन्द्रस्थल रहे है और तत्कालिन मानव समाज के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विकास में इनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। नगरीकरण को सामान्यतः आर्थिक सामाजिक प्रगति का सहगामी या अनुगामी समझा जाता है किन्तु वर्तमान में तीव्र नगरीकरण से विकसित और विकासशील दोनो प्रकार के देशो में असंख्य समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं जो नगरीकरण का वरदान के स्थान पर अभिशाप सिद्ध हो रही है। नगरीय विकास और सामाजिक–आर्थिक विकास में उचित सामंजन्स्य का अभाव प्रतीत होता है जिनके कारण ही आर्थिक सामाजिक तथा पर्यावरणीय समस्याएं उद्भूत होती जा रही हैं।

## 6.2 नगरीकरण का अर्थ :

नगरीकरण का सामान्य अर्थ है नगरीय वृद्धि। यह एक बहुविषयी शब्द है जिसका प्रयोग विभिन्न अर्थो में किया जाता है। विषयो के विशेषज्ञ इस शब्द का प्रयोग अपने–अपने विषय क्षेत्र के सन्दर्भो में करते हैं। अर्थशास्त्री, नगर नियोजक, भूगोलवेता एवं अन्य समाज विज्ञानी नगरीकरण शब्द का प्रयोग विविध अर्थो एवं सन्दर्भ में करते हैं। नगरीकरण नगरीय होने या बनाने नगरोन्मुख गति और प्राथमिक व्यवसाय तथा ग्रामीण जीवन पद्धति से द्वितीयक, तृतीयक व्यवसाय तथा नगरीय जीवन पद्धति में परिवर्तन की सामान्य प्रक्रिया है। जे0सी0 मिवेल के शब्दो में ''नगरीकरण ग्राम्य अधिवासो से नगरो के रूप में कायान्तरण की एक समन्वित विधि है जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीण अधिष्ठानो, व्यसाय तथा अर्थव्यवस्था, क्षेत्र या भूमि उपयोग, समाज एवं संस्कृति, जीवन तथा रहन सहन के स्तर और अन्य मानव मूल्यो में गुणात्मक तथा परिणात्मक परिवर्तन क्रमशः स्पष्ट होने लगते हैं''।

नगरीकरण का प्रयोग भौतिक, सामाजिक, सास्कृतिक, आर्थिक, जनांकि कीय आदि पृथक–पृथक दृष्टिकोणो से और भिन्न–भिन्न सन्दर्भो में किया जाता है, जैसे–

1. नगरीकरण के सामाजिक–सांस्कृतिक पक्ष के अनुसार ग्रामीण जीवन पद्धति से भिन्न जीवन पद्धति में परिवर्तन को नगरीकरण का लक्षण माना जाता है। इसके अन्तर्गत न केवल आवास तन्त्र, जलापूर्ति, परिवहन एवं संचार साधनो, स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन आदि सुविधाओं, प्रशासनिक स्तर आदि को ही सम्मिलित किया जाता है बल्कि वे समस्त मूर्त्त एवं अमूर्त्त तथा

स्थूल एवं सूक्ष्म तत्त्व भी समाहित होते हैं जो नगरीय जीवन स्तर तथा मूल्यो के स्थायित्व और विकास के लिए आवश्यक होते हैं। इन सामाजिक–सांस्कृतिक पक्षो के उन्नयन एवं प्रगति से नगरीकरण के विकास का बोध होता है। इनकी प्राप्ति होने पर नगर निवासी को नगरीय होने की अनुभूति होती है। वास्तव में नगरीकरण के तत्त्व ही नगरीय पर्यावरण की सवेदनशीलता के आधार फलक हैं।

2. नगरीकरण का आर्थिक पक्ष भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। नगरो का विकास अधिकांशतः केन्द्रस्थलो के रूप में होता है जिनकी उत्पत्ति एवं विकास उन विशिष्ट कार्यो की प्रकृति तथा स्वरूप पर ही निर्भर करते हैं जो इन केन्द्रो पर संचालित होते हैं। नगर प्रायः कृष्येत्तर क्रियाओ के केन्द्र होते है जहाँ उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य, परिवहन एवं संचार तथा विधि सेवाओ जैसे शिक्षा, प्रशासन, स्वास्थ्य, मनोरंजन, प्रतिरक्षा आदि से सम्बन्धित क्रियाएं विकसित होती हैं। इस प्रकार नगर द्वितीयक, तृतीयक एवं चतुर्थक क्रियाओ का केन्द्र होता है जबकि प्राथमिक क्रियाएं ग्रामीण क्षेत्रों की विशेषताएं मानी जाती हैं। अतः नगरीय कार्यो में संलग्न जनसंख्या के अनुपात में वृद्धि को नगरीकरण के विकास का सूचक माना जा सकता है।

## 6.3 भारत में नगरीकरण की प्रवृत्ति

भारत की जनसंख्या में भारी वृद्धि होने के साथ–साथ नगरीय जनसंख्या में भी तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। 1901 में कुल नगरीय जनसंख्या 2.58 करोड़ थी, जो 1991 में बढ़कर 21.7 करोड़, सन् 2001 में 28.53 करोड़ तथा सन् 2011 में 37. 71 करोड़ हो गयी।

**भारत में नगरीय जनसंख्या, 1901–2011**

| जनगणना वर्ष | जनसंख्या (करोड़ में) नगरीय | कुल जनसंख्या का प्रति0 नगरीय |
|---|---|---|
| 1901 | 2.59 | 10.84 |
| 1911 | 2.59 | 10.29 |
| 1921 | 2.81 | 11.18 |
| 1931 | 3.34 | 11.99 |
| 1941 | 4.42 | 13.86 |
| 1951 | 6.24 | 17.29 |
| 1961 | 7.89 | 17.97 |
| 1971 | 10.91 | 19.91 |
| 1981 | 15.95 | 23.34 |
| 1991 | 21.72 | 25.72 |
| 2001 | 28.53 | 27.78 |
| 2011 | 37.71 | 31.1 |

**स्रोत : जनगणना 2011**

उपर्युक्त आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता के पूर्व भारत में नगरीकरण की गति बहुत मन्द थी। 1951–61 के दशक में नगरीकरण में कुछ तेजी आई लेकिन भारत–चीन एवं भारत–पाकिस्तान युद्ध तथा 1966–67 में सूखे की स्थिति के कारण पुनः उसकी गति मन्द हो गई। 1971–91 के बीच नगरीकरण में तीव्र वृद्धि हुई तथा नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत 19.91 से बढ़कर 31.1 हो गया। भारत में बड़े नगरों या एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों की आबादी में तेजी से वृद्धि हुई। 1901 में एक लाख से अधिक आबादी वाले नगरों की कुल जनसंख्या 6.6 मिलियन या 25.7 प्रतिशत थी, जो 1991 में बढ़कर 138.8 मिलियन या 65.2 प्रतिशत हो गई। इसके विपरीत 50,000 से 99,999 तथा 20,000 से 49,999 तक की जनसंख्या वाले नगरों की आबादी 1901 से 1991 के बीच लगभग स्थिर रही जो 1901 और 1991 में क्रमशः 11.11 प्रतिशत और 14.5 प्रतिशत रही। 20 हजार से कम आबादी वाले नगरों की जनसंख्या में 1901–1991 के बीच तीव्र गति से ह्रास हुआ जो 1901 में 47.2 थी वह 1991 में घटकर 10.70 प्रतिशत रह गई। 1951 के बाद प्रथम श्रेणी के नगरों की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई। 1951 में प्रथम श्रेणी अर्थात एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों की संख्या 76 थी, जो 1991 में बढ़कर 296 हो गयी। 'मेगा सिटी' या 'मिलियन सिटी' के नाम से जाने जाने वाले अर्थात् 10 लाख से अधिक आबादी वाले शहरों की संख्या 1991 में 23 थी वह 2001 में 35 पर जा पहुँची है। इनमें कुल नगरीय जनसंख्या का 33 प्रतिशत भाग निवास करता है। 2001 की जनगणना के अनुसार 10 लाख से अधिक आबादी वाले नगरों की संख्या 23 से बढ़कर 35 हो गई है। 2011 की जनगणना के अनुसार 10 लाख से अधिक आबादी वाले नगरों की संख्या 35 से बढ़कर 45 हो गयी है।

**सर्वाधिक नगरीय जनसंख्या वाले 12 राज्यों के नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत (2011 सेन्सस)**

| राज्य | नगरीय जनसंख्या प्रतिशत में (2011) |
|---|---|
| महाराष्ट्र | 45.2 |
| पश्चिमी बंगाल | 31.9 |
| दिल्ली | 97.5 |
| तमिलनाडु | 48.4 |
| कर्नाटक | 38.7 |
| आन्ध्र प्रदेश | 33.4 |
| गुजरात | 42.6 |
| महाराष्ट्र | 45.2 |
| दमन एवं दीव | 75.2 |
| उत्तर प्रदेश | 22.3 |
| चण्डीगढ़ | 97.3 |
| पुद्दुचेरी | 68.3 |

यदि भारत के नगरीकरण की तुलना पाश्चत्य देशों के साथ की जाये तो भारत की स्थिति काफी पिछड़ी नजर आती है। जहाँ संयुक्त राज्य अमेरिका में 74 प्रतिशत जापान में 76 प्रतिशत आस्ट्रेलिया में 86 प्रतिशत यूनाइटेड किंगडम में 92 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में निवास करती है वहीं भारत में केवल 31.1 प्रतिशत जनसंख्या (सन् 2011) ही नगरों में रहती है।

## 6.4 शहरी व ग्रामीण जनसंख्या का वितरण

किसी देश की ग्रामीण तथा शहरी जनसंख्या के आधार पर उस देश के उद्योग–धंधे, व्यापार व आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। जहाँ विकसित देशों में अधिकांश जनसंख्या नगरों में निवास करती है, वहीं विकासशील देशों में अधिकांश जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है औ वह अधिकांशतः कृषि उद्योग पर निर्भर होती है। भारत गाँवों का देश है। आज भी यहाँ की 75 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है। ग्रामीण सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश में गाँवों की जनता आलसी, भाग्यवादी, अशिक्षित, परम्परावादी, रूढ़िवादी, अंधविश्वासी और नये विश्वासों व परिवर्तनों को ग्रहण करने में असमर्थ–सी है। अपनी इन सामाजिक–सांस्कृतिक विशेषताओं के कारण भारतीय ग्रामीण जनता प्रायः आर्थिक विकास के प्रति उदासीन नजर आती है। इसके विपरीत नगरों की जनसंख्या प्रगतिशील होती है, लेकिन भारत में कवेल 25 प्रतिशत जनसंख्या ही नगरों में निवास करती है। यद्यपि 1981 की उदारीकरण की आर्थिक नीतियों के पश्चात् भारत में औद्योगिकरण और नगरीकरण की प्रक्रिया में काफी तीव्रात आई है, जिससे धीरे–धीरे ग्रामीण जनसंख्या का प्रवाह नगरों की ओर निरन्तर बढ़ा है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने भी इस प्रवाह में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। नीचे तालिका में 1901 से 2001 तक की ग्रामीण तथा नगरीय जनसंख्या में प्रतिशत दिया गया है–

**जनसंख्या का वितरण–ग्राम तथा नगर (प्रतिशत में)**

| क्र.सं. | वर्ष | ग्रामीण जनसंख्या | नगरीय जनसंख्या |
|---|---|---|---|
| 1. | 1901 | 89.16 | 10.84 |
| 2. | 1911 | 89.71 | 10.29 |
| 3. | 1921 | 88.82 | 11.18 |
| 4. | 1931 | 88.11 | 11.99 |
| 5. | 1941 | 86.14 | 13.86 |
| 6. | 1951 | 82.69 | 17.29 |
| 7. | 1961 | 82.03 | 17.97 |
| 8. | 1971 | 80.09 | 19.91 |
| 9. | 1981 | 76.66 | 23.34 |
| 10. | 1991 | 74.18 | 25.72 |
| 11. | 2001 | 72.22 | 27.78 |
| 12. | 2011 | 68.9 | 31.1 |

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि यद्यपि जनसंख्या का प्रतिशत बढ़ा है पर वह निरन्तर वृद्धि की ओर नहीं रहा, साथ ही वृद्धि दर बहुत धीमी रही है। भारत प्राचीन काल से आज तक ग्राम प्रधान देश बना हुआ है। सन् 1981 में ग्रामीण जनसंख्या 76.37 प्रतिशत तथा शहरी 23.73 प्रतिशत थी। सन् 1991 में ग्रामीण जनसंख्या 73.87 प्रतिशत तथा नगरीय जनसंख्या 26.13 प्रतिशत थी। सन् 2001 में ग्रामीण जनसंख्या 72.2 तथा नगरीय जनसंख्या 27.8 हो गई है। सन् 2011 में ग्रामीण जनसंख्या 68.9 प्रतिशत तथा नगरीय जनसंख्या 31.1 प्रतिशत हो गयी है।

## 6.5 नगरीकरण की समस्याएँ

### नगरीकरण की कुछ प्रमुख समस्याएं इस प्रकार हैं–

#### 1. स्थान की समस्याः–

नगर में स्थापित होने वाले नये–नये उद्योग धंधो, स्टोरो, दूकानो, कार्यालय, पार्को, आवासगृहों आदि के लिए अधिकाधिक भूमि की आवश्यकता पड़ती है जिसकी पूर्ति के लिए नगर की बाह्य सीमा का प्रसार ग्रामीण क्षेत्रो की ओर होता है। इस प्रकार बहुत सारी कृषि योग्य भूमि निर्मित क्षेत्र के रूप में परिवर्तित हो जाती है। नगर के बाह्य विस्तार के कारण नगरीय उपांत (urban-fringe) सदैव नगरीय दबाव से पीड़ित रहता है। नगर में भूमि के अभाव के कारण अपेक्षाकृत अधिक भूमि की आवश्यकता वाले कार्यो यथा बड़े कारखानो, रेल वार्ड, बड़े स्टोर आदि को नगर से दूर स्थापित करना पड़ता है।

#### 2. आवास की समस्याः–

नगरों विशेषतः वृहद नगरों में प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में लोग ग्रामीण क्षेत्रो अथवा अन्य बाहरी क्षेत्रों से आकर रहने लगते हैं जिससे नगर की जनसंख्या तीव्रगति से बढ़ती जाती है किन्तु जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में नगर में आवासो की संख्या नही बढ़ पाती है जिसका परिणाम होता है आवासो का अभाव अथवा आवासीय समस्या। अल्प आय अथवा बेरोजगारी के कारण प्रायः सभी बड़े नगरों में हजारो लाखो लोग गन्दी बस्तीयो तथा झुग्गी झोपड़ीयो और फूटपाथों पर सोने के लिए विवश होते है। गन्दी बस्तियां या मलिन बस्तियां औद्योगिक नगरों में अधिक पायी जाती हैं। मलिन बस्तियो में नगरीय सुविधाओं का प्रायः अभाव पाया जाता है। नगरो की खाली पड़ी हुई सरकारी या सार्वजनिक भूमि पर असामाजिक तत्त्व या निर्धन वर्ग के लोग जबरदस्ती कब्जा कर लेते हैं और उस पर झुग्गी–झोपड़ी बना लेते है। यहां पीने का पानी, बिजली, शौचालय, सड़क आदि की व्यवस्था प्रायः नही होती है और गन्दगी के कारण वातारण रहने योग्य नही होता है। नगरों के मध्यवर्ती भागो में जीर्ण–शीर्ण तथा गिराये जाने योग्य आवासो के कुछ प्रखण्ड मिलते हं जहाँ निर्धन आय वर्ग के

लोग तथा श्रमिक गन्दे वातावरण में जीवन व्यतीत करते हैं। गन्दगी के कारण इन मलिन बस्तियो में तरह–तरह की बिमारियां फैलती रहती हैं।

### 3. परिवहन की समस्याः–

नगरीय विस्तार तथा बढ़ते नगरीकरण ने परिवहन संबधी जटिल समस्याएं उत्पन्न कर दी हैं। नगरो में परिवहन सम्बन्धी समस्याओं के अनेक रूप हैं। अधिकांश नगरो के आतंरिक भागो में सड़को के कम चौड़े होने तथा वाहनो की अधिकता से इतनी अधिक भीड़ जमा हो जाती है कि कभी'कभी घण्टो यातायात अवरूद्ध हो जाता है। नगरों में पैदल चलना ही एक मात्र उपाय रह जाता है। पश्चिमी देशो में जहाँ व्यक्तिगत कारों तथा मोटरवाहनों की अधिकता है, व्यस्तक्षेत्रो में मोटर पार्किग के लिए स्थान उपलब्ध न होने के कारण वाहनो के पार्किग की समस्या जटिल होती है।

### 4. जल आपूर्ति की समस्याः–

नगरो में विशाल जनसंख्या के लिए शुद्ध पेयजल की आपूर्ति कर पाना नगर प्रशासन के लिए एक बड़ी जिम्मेदारी और चुनौती भरा काम होता है। पेयजल के अतिरिक्त नगर में स्थापित उद्योगो के लिए उनकी प्रकृति के अनुसार काफी जल की आवश्यकता होती है। स्थानीय उपलब्धता तथा तकनीकी विकास के अनुसार काफी जल की आवश्यकता होती है। स्थानीय उपलब्धता तथा तकनीकी विकास के अनुसार नगरों में नदियों, नहरों, झीलों, झरनों आदि के स्थलीय स्त्रोतो द्वारा अथवा भूमि से नलकूपो द्वारा निकाले गये जल को उपलब्ध कराया जाता है। गर्मियो में जलस्तर के नीचे जाने पर जलापूर्ति में अधिक कठिनाई होती है। इससे नगरों में जलापूर्ति इतनी कम हो जाती है कि कभी–कभी पीने भर को पानी मिल पाना कठिन हो जाता है। बहुत से महानगरों में पेयजल की आपूर्ति को बनाये रखने के लिए पेयजल और अन्य घरेलू तथा कारखानों के उपयोग के लिए जल की अलग–अलग पाइपो द्वारा व्यवस्था की जाती है। अनेक बार गन्दे पेयजल की आपूर्ति हो जाने पर हैजा, पीलिया आदि बिमारियां भयंकर तथा महामारी के रूप में फैल जाती हैं।

### 5 विद्युत आपूर्ति की समस्याः–

विद्युत आधुनिक नगर की प्राण है जिसके अभाव में नगर मृत प्राय हो जाते हैं। अतः विद्युत या बिजली के बिना नगरीय जीवन की कल्पना भी नही की जा सकती है। घरों तथा सड़कों पर प्रकाश से लेकर प्रायः सभी घरेलू तथा औद्योगिक उपकरण तथा मशीनें बिजली की बढ़ती मांग को पूरा करना अत्यंत कठिन कार्य होता है विशेषरूप से वहाँ जहाँ विधुत उत्पादन सीमित मात्रा में हो पाता है। विश्व के विभिन्न भागों में असंख्य नगर ऐसे हैं जहाँ वर्ष भर विद्युत आपूर्ति अबाध गति से नही हो पाती है।

## 6.6 नगरीकरण एवं गन्दी बस्ती

यू0एन0हैबिटेट ने अपनी 2006–07 की रिपोर्ट में बताया है कि विश्व की गन्दी बस्तियों में रहने वालो संख्या 2007 में एक बिलियन से ऊपर हो गया है। अर्थात् औसत रूप में, प्रत्येक तीन में से एक शहर की आबादी गन्दी बस्तीयो में

निवास करती है। यह सत्य है कि विश्व के नगरो और महानगरो में वृद्धि अनेक अवसरों के साथ–साथ अनेक समस्याओं को भी पैदा किया है।

गन्दी बस्ती प्रमुख रूप से एक ऐसा आवासीय क्षेत्र है जहाँ निवास स्थान अत्यधिक भीड़–भाड़ युक्त होता है, जिनका डिजाइन त्रुटीपूर्ण होता है, जहाँ रोशनदान, प्रकाश एवं सफाई का अभाव होता है या इनमें से कुछ कारकों के सम्मिलित प्रभाव के कारण सुरक्षा स्वास्थ एवं नैतिकता के लिए हानिप्रद होता है। भारत सरकार ने नगरीय विकास की विभिन्न योजनाओ को लागू करने के उद्देश्य से, झोपड़पट्टी या गन्दी बस्ती को इस प्रकार परिभाषित किया है– ''झोपड़पट्टी या गन्दी बस्ती क्षेत्र का अभिप्राय किसी भी ऐसे क्षेत्र से है जहाँ ऐसे आवासों की बाहुल्यता हो जो जर्जरित, भहड़ युक्त, गलत व्यवस्था एवं गलत नक्शे से बने हो, तथा जहाँ गलियो की तंग व गलत व्यवस्था हो, हवा एवं रोशनदान का अभाव हो अथवा इन सभी का एक मिला जुला स्वरूप हो जो लोगो की सुरक्षा, स्वास्थ्य अथवा नैतिकता के लिए हानिकारक हो।''

गन्दी बस्ती की अवधारणा को अधिक स्पष्ट समझने के लिए इसकी निम्नलिखित विशेषताओ की चर्चा की जा सकती है :

1. गन्दी बस्तियो की बनावट अधिक प्राचीन और गिरी हुई दिखाई देती है।
2. सामान्यतः गन्दी बस्तियो में कम आय वाले लोग रहते हैं। गन्दी बस्ती गरीबो का क्षेत्र होता हैं। यहाँ के अधिकांश निवासी श्रम बाजार में श्रमिक के रूप मे कार्य करते हैं।
3. गन्दी बस्ती के मकानो में लोगो की भीड़–भाड़ होती है और लोग वहाँ खाली पड़ी जमीन पर अनाधिकृत कब्जा किए होते हैं।
4. ऐसे लोग जिन्हे अन्यत्र कही स्थान न मिला हो या जो दूसरी जगह में रहने में असमर्थ होते हैं, यहाँ आकर रहने लगते हैं। इस तरह गन्दी बस्ती वृद्धों, बीमारों, निवास रहित लोगो तथा समाज में कुसमायोजित लोगो के लिए शरण स्थल होता है।
5. गन्दी बस्ती में स्वच्छता और सफाई की सार्वजनिक सेवाओ का अभाव होता है। यहाँ बिमारी व मृत्युदर अधिक होती है।
6. गन्दी बस्ती बाल अपराध एवं बुराई का क्षेत्र होता हैं किन्तु यह बात सामाजिक रूप से विघटित बस्तियो के लिए अधिक सही हैं।
7. गन्दी बस्तियो में वे लोग रहते हैं जिनकी सामाजिक प्रतिष्ठा निम्न होती है।
8. इन बस्तियो मे कानून व्यवस्था का प्रायः अभाव पाया जाता हैं। अतः ये तमाम अपराधो के केन्द्र व शरण स्थली होते है। सदरलैण्ड इस बात का समर्थन करते हैं।

## 6.7 नगरीकरण व पर्यावरण ह्रास

नगरीय केन्द्रों में जनसंख्या वृद्धि एवं औद्योगिकरण के फलस्वरूप नये नगरो के निर्माण एवं पूर्वस्थित नगरों में विस्तार के कारण विकसित एवं विकासशील देशो में पर्यावरण प्रदूषण तथा अवनयन की कई समस्यायें उत्पन्न हो गयी हैं।

प्रारम्भ में नगरों एवं कस्बों को उच्च जीवन स्तर का प्रतीक माना जाता था क्योकि इनमें जीवन यापन के लिए बेहतर पर्यावरणीय एवं भौतिक सुविधाये उपलब्ध थी परन्तु वर्तमान समय में विश्व के महानगरों एवं विकासशील देशों के महानगरों एवं लघु शहरों में वायु, जल एवं ध्वनि प्रदूषण के बढ़ जाने के कारण ये नगरी केन्द्र अब मानव के लिए प्रायः अनुपयुक्त हो चले हैं क्योकि इनके पर्यावरण की गुणक्ता में भारी गिरावट आयी है।

वास्तव में नगरीकरण में विस्तार एवं वृद्धि का तात्पर्य होता है नगरो में मानव जनसंख्या के सान्द्रण में अत्यधिक वृद्धि तथा इस नगरीय जनसंख्या में प्रस्फोट के कारण भवनों, सड़कों, गलियों, मलजल के नालों, बरसाती नलों, पक्की सतह, स्वचालिक वाहनों, कारखानो की संख्या, नगरीय अपशिष्ट पदार्थो, एयरोसॉल, धूम्र, धूल, राख, कचरा, मलजल, दूषित जल, हानिकारक गैसों आदि में भारी वृद्धि होती है जिस कारण कई पर्यावरणीय समस्याए उत्पन्न हो जाती है। दिल्ली के पास यमुना नदी अब एक मलजल वाहक बन कर रह गयी है क्योकि दिल्ली शहर के 17 से अधिक खुले बड़े नालों से प्रतिदिन 323 मिलियन मैलन से भी अधिक मलजल यमुना नदी में पहुंचता है जबकि दिल्ली नगरमहापालिका निगम के दूषित जल के शोधन संयत्रो की सकल शोधन क्षमता 184 मिलियन गैलन प्रतिदिन है। कानपुर के पास गंगा नदी इतनी अधिक प्रदूषित हो गयी है कि अब वहाँ पर इसका जल पीने के लिए अनुपयुक्त हो गया है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि विश्व की तथा भारत की प्रायः सभी बड़ी नदियो के किनारो पर बसे नगरो द्वारा नदियो का जल खतरे के स्तर से अधिक प्रदूषित हो गया है।

नागपुर स्थित राष्ट्रीय पर्यावरण शोध संस्थान के सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार दिल्ली, कोलकाता, मुम्बई, चेन्नई, अहमदाबाद, कोचिन, हैदराबाद, जयपुर, कानपुर, नागपुर आदि नगरों में वायु प्रदुषण का स्तर बहुत अधिक हो गया हैं। वायु में नाइट्रोजन तथा सल्फर के ऑक्साइड के सान्द्रण में निरन्तर वृद्धि के कारण अम्ल वर्षा का खतरा बढ़ता जा रहा हैं। एक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि मुम्बई महानगरी में प्रतिदिन 1700 प्रदूषक वायु में सम्मिलित होते हैं। इनमें से 55 प्रतिशत प्रदूषकों का विसर्जन स्वचालित वाहनों द्वारा होता है।

औद्योगिक नगरो में जाड़े के मौसम में तापीय प्रतिलोमन के समय कारखानों की चिमनियो से विसर्जित धूम्र एवं सल्फर का स्थिर वायु के साथ मिश्रण के कारण जानलेवा नगरीय धुम्र कुहरे (urban smogs) की उत्पत्ति होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका के पेन्शलवेनिया प्रान्त के डोनोरा का धुम्र कोहरा (26 oct 1948), बेल्जियम की म्यूज घाटी का धुम्र कोहरा (दिसम्बर 1950) तथा लन्दन नगर

का धूम्र कोहरा (1952) आदि जहरीले तथा प्राणघातक नगरीय धूम्र कोहरे के कतिपय उदाहरण हैं।

नगरीकरण में वृद्धि के कारण धारातलीय सतह के जल एवं भूमिगत जल भी प्रभावित होते है। नगरीय क्षेत्रों में विस्तार के कारण उनके पास की सरिताओं में बाढ़ की आवृत्ति तथा विस्तार में वृद्धि हो जाती है क्योकि पक्की सतह में वृद्धि होने से वर्षा के जल का भूमि में रिसाव तथा अतसंचरण न होने के कारण धरातलीय वाहीजल (surface runoff) में वृद्धि हो जाती है। परिणाम स्वरूप वर्षा का अधिकांश जल बहकर शीघ्र ही पास की सरिताओ में पहुंच जाता है। नगरों के केन्द्र में उष्मा द्वीप तथा नगरो के ऊपर प्रदूषण गुम्बद के निर्माण के कारण स्थानीय एवं क्षेत्रिय विकिरण एवं उष्मा संकुलन में परिवर्तन हो जाता है।

नगरो में प्रतिदिन त्याजित ठोस अपशिष्ट पदार्थो, यथा कुड़ा कचरा से भी कई पर्यावरणीय समस्याये उत्पन्न होती है। ज्ञातव्य है कि विकसित देशो के महानगरो में नगरीय अपशिष्ट पदार्थो के संचयन, भडारण, परिवहन, शोधन तथा समुचित विस्तारण (proper disposal) के प्रति अधिकाधिक दिया जा रहा है परन्तु विकासशील देशो के नगरो में नगरीय अपशिष्ट पदार्थो के निस्तारण की समस्या का समाधान नही हो पाया में भी तेजी से वृद्धि हो रही है। नागपुर स्थित राष्ट्रीय पर्यावरण शोध संस्थान की एक रिपोर्ट के अनुसार कलकत्ता एवं मुम्बई में प्रति व्यक्ति नगरीय अपशिष्ट पदार्थो अर्थात कचरे का उत्पादन प्रति 0.5 किलोग्राम है जबकि देश के अन्य नगरो में यह मात्रा 0.15 से 0.40 किलोग्राम प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन है। नगरो के विभिन्न स्थानों पर शहरी कचरा कई दिनो तक सड़ता रहता है। जिससे दुर्गन्ध निकलती रहती है। इन सड़ते कचरो के ढ़ेरो से जहरीली जैसे भी निकलती है जिनसे वायु प्रदुषण होता है।

## 6.8 नगरीकरण के सामाजिक प्रभाव

1. **नगरीकरण व परिवारः–** नगरीकरण न केवल परिवार की संरचना को प्रभावित करती है बल्कि अन्तः एंव अनतरा (intera & inter family relation) पारिवारिक संबधो को प्रभावित करने के साथ–साथ परिवार के कार्यो पर भी प्रभाव डालती है। बहुत से आनुभविक अध्ययनो जैसे आई पी देसाई कपाडिया तथा एलेन रॉस जैसे विद्वानो ने यह पाया कि संयुक्त परिवार धीरे–धीरे एकाकी परिवार में बदल रही है। परिवार की आकार ही नही सीमित हो रही है बल्कि नातेदारी संबध भी दो से तीन पीढ़ी तक ही निर्धारित हो रही है। आई0पी0देसाई ने सन 1964 में अपने गुजरात के महुआ शहर के अध्ययन में पाया कि नगरीकरण के कारण परिवार की

संरचना में परिवर्तन तो आ रही है परन्तु परिवार में व्यक्तिवाद की भावना नही बढ़ रही है।

रोजगार का अवसर, नयी व्यवसाय की चाह, शिक्षा का अवसर, एवं जीवन की भौतिक आंकाक्षा आदि जैसे कारणो से ग्रामीण लोगो का प्रवास नगरो की तरफ हो रहा है जिससे न केवल संयुक्त परिवार की आकार में परिवर्तन आ रहा है बल्कि संयुक्तता (Jointness) की भावना में कमी आ रही है। सामूहिकता के स्थान पर व्यक्तिवादिता प्रबल होते जा रही है। यही कारण पारसंस ने भी इसी नगरीकरण के कारण एकाकी परिवार (Isolated family) की अवधारणा दी। बर्गेस व लॉक ने भी समर्थन किया कि नगरीकरण के कारण सहचर्य परिवार (Companionship family) की प्रवृत्ति बढ़ रही है जिसमें विवाहित युग्म साहचर्यात्मक जीवन बिताने की मनोकामना करते है। विवाहित युग्म स्थायी वैवाहिक बधनो की अपेक्षा परिवर्तनशील मैत्रीवत् संबधो में आबद्ध रहना अधिक पसंद करते है।

## 2. नगरीकरण व अपराधः—

गावों की अपेक्षा शहरों में अपराध की दर अधिक दिखाई देती है। बाल—अपराध, बलात्कार, हत्या, लुटमार, वेश्यावृत्ति, आत्महत्या एवं मद्यव्यासन का दर गांवो की अपेक्षा शहरों में अधिक पाया जाता है। इन सभी अपराधों के पीछे गांव और शहरी जीवन शैली में अन्तर उत्तरदायी है क्योंकि एकल परिवार शहरों की जीवन—शैली महंगी होने के कारण मां—बाप दोनों को ही घर से बाहर व्यवसाय करने की आवश्यकता होती है जिससे बच्चे घर पर अकेले होने सें, पूर्ण समाजीकरण के अभाव में बच्चों का व्यक्तित्व विघटन होने लगता है। यही कारण है कि शहरों में बाल अपराध में अधिकता पायी जाती है,

नगरो में अत्यधिक जनसंख्या के कारण रोजगार का अभाव बढ़ती भौतिक जीवन शैली की आकांक्षा आदि के कारण हत्या, लूटमार जैसे अपराधो में वृद्धि शहरो में देखी जा रही है।

समाजशास्त्रीय आधार पर नगरीकरण और अपराध के बीच के सबंधो पर यदि ध्यान दिया जाय तो नगरीकरण के कारण परम्परागत संस्था एवं व्यवहार के प्रतिमान एवं सामाजिक नियंत्रण की साधनों की प्रभावशीलता में कमी के कारण ही नगरो में अपराध की दर में बढ़ोतरी हो रही है।

## 3. नगरीकरण व बेरोजगारीः—

नगरीकरण के कारण शहरो में बेराजगारी की दर भी बढ़ रही है। बेहतर जीवन स्तर, बेहतर स्वास्थ्य सुविधा और व्यवसाय की अवसर की आशा लेकर लोग शहरों की तरफ प्रवजनित होते हैं। अति नगरीकरण के कारण अत्यधिक जनसंख्या, के अनुपात में रोजगार की सीमितता के कारण शहरों में रोजगार नही मिल पाता है। चूकि प्रवजन गांवो से शहरो की ओर होती है, जिसमे अधिकतर जनसंख्या या तो अर्द्धकुशल श्रेणी के होते हैं या अकुशल श्रेणी के होते हैं। शहरो में आकर अपनी ही श्रेणी के रोजगार की तलाश करते हैं जिससे अधिकतर का जीवन निर्वाह सिर्फ खाने और सोने तक ही सीमित होता है।

नगरों में बेरोजगारी का एक प्रमुख कारण उद्योगो का मशीनीकरण भी है। मशीनें व्यक्तियो को स्थानान्तरित कर रही हैं। केवल कुछ ही सीमित व्यक्ति जो इन मशीनों को चलाने में कुशल हैं, वही रोजगार प्राप्त करते हैं। यही कारण है कि गांवो की तुलना में शहरो में बेरोजगारी एक प्रमुख समस्या के रूप में उभर रहा है। शहरों में सीमित रोजगार और बढ़ती प्रतिस्पर्द्धा के कारण केवल कुछ ही लोग रोजगार पाते हैं। इनमें अधिकाशं लोग गंदी बस्ती की ओर उन्मुख होते हैं और आय के अन्य साधनो की तलाश करते है। रोजगार की अपर्याप्तता ही अन्ततः लोगो को गरीबी की ओर ढ़केलती है।

### 4. नगरीकरण एवं भिक्षावृत्तिः–

नगरो में भिक्षावृत्ति पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। सड़को के किनारे मस्जिद, मन्दिर, धार्मिक स्थान, शिक्षण संस्थान, रेलवे स्टेशन बस स्टैण्ड एवं सार्वजनिक स्थानो पर भिखारियो की भीड़ देखी जा सकती है। इसका प्रमुख कारण अतिनगरीकरण के कारण नगरो में पर्याप्त रोजगार का अभाव है, जिससे गरीबों की संख्या में अधिकता देखी जाती है। ये गरीब अपना पेट पालने के लिए भिक्षावृत्ति पर निर्भर हो जाते हैं।

### 5. नगरीकरण एवं वेश्यावृत्तिः–

नगरीकरण का सबसे बड़ा दुष्प्रभाव वेश्यावृत्ति है। समाजशास्त्रीय ढ़ंग से विश्लेषण करने पर इसके पीछे पारिवारिक विघटन एवं वैयक्तिक विघटन, व्यक्तिगत उच्च महात्वाकांक्षा, बेरोजगारी, गरीबी आदि ऐसे कारक हैं जो शहरों में वेश्यावृत्ति को बढ़ावा दे रही है। नगरों में यौन अपराध की अधिकता एवं नैतिक मूल्यों का ह्रास पाया जाता है। इस प्रकार नगरीकरण ने मानव के सदियो से चले आ रहे जीवन में अनेक परिवर्तन किये हैं और नई समस्याओं को जन्म दिया है।

### 6. नगरीकरण, तनाव और संघर्षः–

अतिनगरीकरण के कारण व्यक्तियो मे तनाव एवं संघर्ष जैसे मनोवैज्ञानिक विकार अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। एक गैरसरकारी आकड़ो के आधार पर देखा गया कि भारत सहित पश्चिमी देशो के सभी शहरों के 98 प्रतिशत लोग किसी न किसी कारण से नगरीकरण के प्रभाव से तनाव एवं डिप्रेशन के जैसी बिमारीयों से ग्रसित हैं। इन कारणों से उबरने के लिए नींद की दवाओ का प्रयोग बढ़ गया है।

## 6.9 नगरीय समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव

1. शहरो का व्यवस्थित तरीके से विकास के साथ–साथ रोजगार के नवीन अवसरों की व्यवस्था की जानी चाहिए। ग्रामो में रोजगार जनित कार्यक्रमो

को सुचारू ढ़ंग से चलाने पर शहरों पर अतिरिक्त पड़ने वाले भार को कम किया जा सकता है जिससे शहरी समस्याओ से उबरा जा सकता है।

2. नगरीय योजनाओं के साथ–साथ क्षेत्रिय योजनाओं पर बल दिया जाना चाहिए, जैसे नगरीय क्षेत्र में गन्दी बस्ती के निवासियों के लिए सिर्फ आवास मुहैया करने के बजाय ऐसे क्षेत्रों की ओर भी ध्यान दिया जाय जहाँ रोजगार की पर्याप्त संभावना हो। इस परिस्थिति में नगरों में गन्दी बस्तियों में कमी आयेगी।

3. पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों को स्थापित करने हेतु उद्योगपतियों कों प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। सरकार द्वारा विभिन्न उद्योग प्रोत्साहन नीतियों से उद्योगपतियो को नगर छोड़कर दूसरे अन्य स्थानो पर, जो पिछड़े हुए हैं, वहाँ उद्योग लगाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

4. नगरपालिकाओं को अपने वित्तिय संसाधनो को स्वयं खोजना चाहिए। नगर के लोग जब नगरों के आधारभूत अवसंरचना हेतु पर्याप्त व्यवस्था नगरपालिका द्वारा किया जाता है तब अपने द्वारा दिये गये करो की ओर ध्यान नही देते हैं। परन्तु नगरपालिका में व्यापत भ्रष्टाचार के कारण नगर की आधारभूत अवसंरचना को प्रमुखता नही दिया जाता है जिससे नगर के लोग भी अपना कर देने से कतराते हैं।

5. किराया नियंत्रण नियम में भी सुधार की आवश्यकता है। महाराष्ट्र सरकार द्वारा किराया नियंत्रण नियम अपनाया गया जो एक सराहनीय प्रयास है। इसको अन्य राज्यों को भी अनुसरण करना चाहिए।

6. आवासों हेतु आवास नीति अपनाना चाहिए। शहरों में गन्दी बस्तियों में रहने वाले लोगो, अल्प आय वाले लोगो के लिए, आवासरहित आवासो की व्यवस्था अत्यंत कम दामो में उपलब्ध कराने हेतु नीति बनाना चाहिए।

## 6.10 नगरीकरण की समस्या समाधान हेतु सरकारी प्रयास

### 1. जवाहर लाल नेहरू शहरी नवीकरण मिशन (जेएनएनयूआरएम):–

यह कार्यक्रम वर्ष 2005 में शुरू किया गया है। इस मिशन के मुख्य उद्देश्य हैं– शहरी अवसंरचना और नागरिक सुविधाओं का विकास और उस दिशा में सुधारों को प्रोत्साहित करना, शहरी स्थानीय निकायों को अधिक अधिकार प्रदान करना, इन निकायों द्वारा यथोचित शुल्क लगाया जाना, स्टैम्पशुल्क को प्रतिशत या उससे कम पर पुनर्निधारित करना, आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के आवास के लिए भूमि विकास, किराया अधिनियम में सुधार, शहरी भूमि सीमा और अधिनियम को समाप्त करना और सार्वजनिक नीजी भागीदारी को बढ़ावा देना। इस कार्यक्रम के तहत नगर विकास योजना और विस्तृत परियोजना रिपोर्ट को मंजूरी मिलने और आशय समझौते पर हस्ताक्षर के बाद राज्यों को मदद दी जाती है।

### 2. 12 वीं योजना अवधि में स्लम पुनर्वास और किफायती आवास के लिए योजनाएं:–

12वी योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित योजनाएं होगी:– 1. राजीव आवास योजना:– समग्र संकल्पना पर आधारित योजना है। योजना के तहत

सहायता मांगने से पूर्व सभी सहभागी शहरों को सभी स्लमों का स्व–स्थान पुनर्वास करने का प्रावधान है ताकि उनके निवासी आजीविका के अवसरो से वंचित न हों। यदि ऐसे स्लमों को जहाँ वे बसे है, वास योग्य न होने के कारण अन्यत्र बसाया जाना है, तो एक पारदर्शी प्रक्रिया के माध्यम से ऐसा किया जाना चाहिए और पुर्नवास की योजना मौजूदा स्लम के समीप की जानी चाहिए। इसमें स्वीकृत की जा रही परियोजना के एक वर्ष के भीतर समुचित कानून बनाकर स्लमवासियों को सम्पति अधिकार दिये जाने का प्रावधान है। इसके अलावा इसमें इस अवधि के दौरान ईडब्लूएस/एलआईजी श्रेणी के लिए आवासीय परियोजना हेतु विकसित भूमि में से 20–25 प्रतिशत भूमि निर्धारित करने तथा शहरी गरीबों के लिए सेवा प्रदान करने वाले नगरपालिका एवं अन्य निकायों के बजट का कम से कम 25 प्रतिशत निर्धारित करने के लिए कानून बनाने का प्रावधान है।

### 3. शहरी परिवहनः–

एक ऐसी शहरी परिवहन प्रणाली के महत्त्व पर अधिक बल दिया जा सकता है, जो सुरक्षित और विश्वासनीय हो। राष्ट्रीय शहरी परिवहन नीति, 2006 में हमारे शहरों में जन परिवहन का हिस्सा बढ़कर 25 प्रतिशत से 60 प्रतिशत तक करने की मांग की गई है।

4. **पोषण वर्धक बहुक्षेत्रीय कार्यक्रमः–** केन्द्रीय बजट 2012–13 के अनुसार भारत के पोषण संबधी चुनौती से संबधित प्रधानमंत्री जी के राष्ट्रीय कौसिंल की सुझाव पर चुनिंदा 200 जिलो में जहाँ बच्चों में कुपोषण बहुत अधिक है, यह कार्यक्रम चलाया गया है। इसके अन्तर्गत पोषण, सफाई, पेयजल, प्राइमरी हेल्थ, स्त्री शिक्षा, खाद्य सुरक्षा तथा उपभोक्ता संरक्षण स्कीम पर विशेष बल दिया गया है।

### 5. असंगठित श्रमिक सामाजिक सुरक्षा अधिनियमः–

यह अधिनियम 16 मई 2008 को लागू हुआ जिसका उद्देश्य असंगठित श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना था। उल्लेखनीय है कि पारस्परिक आधार पर प्रवासी श्रमिकों तथा कंपनियों के हितो की रक्षा के लिए बेल्जियम, स्विट्जरलैण्ड, नीदरलैण्ड, डेनमार्क तथा नार्वे के साथ द्विपक्षीय सामाजिक सुरक्षा करारों पर पर हस्ताक्षर किये गयें।

### 6. स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजनाः–

यह योजना वर्ष 1997 में लागू हुई है जिनमें तीन शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों–नेहरू रोजगार योजना (NRY), शहरी गरीबों के लिए बुनियादी सेवायें योजना तथा प्रधानमंत्री एकीकृत शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमो को एक में मिला दिया गया है। इसका उद्देश्य स्वरोजगार उद्यमों की स्थापना को प्रोत्साहन देना या मजदूरी रोजगार के सृजन द्वारा गरीबी रेखा के नीचे नवीं दर्जा तक शिक्षित शहरी बेरोजगारों या अर्धरोजगारों को रोजगार

प्रदान करना है। इसकी वित्तिय व्यवस्था केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा 75:25 अनुपात में होती है। यह स्कीम गरीब महिलाओं को उपर उठाने पर बल देती है और एक विशेष प्रकार का कार्यक्रम शहरी क्षेत्रो में महिलाओं और बच्चो का विकास के लिए चलाती है जिसके अन्तर्गत स्वरोजगर स्थापित करने वाले शहरी गरीब महिलाओं को 50 प्रतिशत सब्सिडी दी जाती है। व्यवस्थित रूप से लागू इस योजना के पांच संघटक हैं–(क) शहरी रोजगार कार्यक्रम जिसका लक्ष्य हर शहरी निर्धन द्वारा एक उद्यम स्थापित करना है (ख) शहरी महिला स्व सहायता कार्यक्रम (ग) शहरी निर्धनो के बीच रोजगार संवर्धन हेतु कौशल प्रशिक्षण (घ) शहरी वेतन रोजगार कार्यक्रम (ड़) शहरी सामुदायिक विकास नेटवर्क

## 6.11 सारांश

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि भारत जैसे विकासशील एवं विकसित देशों में नगरीकरण जहाँ एक तरफ रोजगार का अवसर, जाति व्यवस्था के जटिलता में कमी, राजनीतिक जागृति, व्यवसायों में श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण जैसी सुप्रभाव को अपने साथ लाती है वहीं दूसरी तरफ अपराध, सामाजिक विघटन, वैयक्तिक विघटन, कुसामायोजन, आधारभूत अवसंरचना में कमी, पर्यावरण अवनयन और गन्दी बस्ती जैसे विकराल समस्याओं को जन्म देती है। यद्यपि सरकारी एवं गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओ, एवं समस्या निर्देशित प्रयासों से नगरीकरण से उत्पन्न समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया गया है लेकिन विभिन्न संरचनात्मक एवं गैरसंरचनात्मक अवरोधों के कारण किये गये प्रयास सफल नही हो पाये हैं। अतः इसमें और भी प्रयास करने की आवश्यकता है।

## 6.12 संदर्भ ग्रन्थ


1. बघेल, डी.एस., बघेल, किरण – जनांकिकी, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली
2. राव., एम.एस., ए अर्वनइजेशन इन इण्डिया, नई दिल्ली।


## 6.13 संबंधित प्रश्न

### (अ) दीर्घ उत्तरीयः–

1. नगरीकरण की अवधारणा को समझाते हुए नगरीकरण एवं मूलभूत/आधारभूत अवसंरचना के मध्य संबध को समझाएं।
2. ''नगरीकरण एक सामाजिक समस्या है।'' निबंध लिखे
3. नगरीकरण से संबंधित समस्याओं को दूर करने के लिए सरकारी प्रयासों को वर्णन करें।
4. भारत में नगरीयकरण की प्रवृत्तियों का वर्णन करे?
5. भारत में नगरीकरण से संबन्धित समस्याओं को दूर करने लिए आप क्या सुझाव देगे? विस्तृत में वर्णन करें।

## (ब) लघु उत्तरीयः–

1. नगरीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करें।
2. ''नगरीकरण से मलिन बस्तियो में वृद्धि होती है'' टिप्पणी करें।
3. ''नगरीकरण से पर्यावरण अवनयन होता है।'' समझाएं।
4. नगरीकरण और अपराध के बीच संबधों की विवेचना करें।
5. नगरीकरण एवं आधारभूत संरचना के बीच संबध स्पष्ट कीजिए।

## (स) वैकल्पिक प्रश्न :–

1. सन 2011 में भारत में कुल नगरीय जनसंख्या कितनी थी ?

   (अ) 37.71 करोड़ (ब) 35.61 करोड़

   (स) 32.71 करोड़ (द) 38.72 करोड

2. नगर को किन क्रियाओं का प्रमुख केन्द्र माना जाता है ?

   (अ) द्वितीयक (ब) तृतीयक

   (स) चतुर्थक (द) उपरोक्त सभी

3. नगरीकरण से उत्पन्न होने वाली कौन सी सामाजिक समस्याएं हैं ?

   (अ) गन्दी बस्ती (ब) बेरोजगारी

   (स) वेश्यावृत्ति (द) उपरोक्त सभी

4. नगीकरण की समस्या के निवारण हेतु जेएनएनयूआरएम कार्यक्रम किस वर्ष शुरू किया गया है ?

   (अ) वर्ष 2006 में (ब) वर्ष 2005 में

   (स) वर्ष 2004 में (द) वर्ष 2003 में

5. स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना किस वर्ष लागू किया गया है?

   (अ) 1996 (ब) 1997

   (स) 1998 (द) 1999

## 6.14 प्रश्नोंत्तर

**1. (अ) 2. (ब) 3. (द) 4. (ब) 5. (ब)**

# इकाई–07

# बदलती पारिवारिक संरचना

इकाई की रूपरेखा


7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 परिवार का अर्थ एवं परिभाषा

7.3 परिवार की विशेषताए

7.4 परिवार के प्रकार

7.5 परिवार का कार्य

7.6 परिवार में आधुनिक परिवर्तन

7.7 परिवार की संरचना में परिर्वतन

7.8 बदलती पारिवारिक संरचना से संबंधित समस्याएं

7.9 परिवार व्यवस्था का भविष्य

7.10 सारांश

7.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

7.12 सबंधित प्रश्न

(अ) दीर्घ उत्तरीय

(ब) लघु उत्तरीय

(स) बहुवैकल्पिक

7.13 प्रश्नोत्तर


## 7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः

- परिवार जैसी समाजिक संस्था की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- परिवार की विशेषताओं, कार्यो व प्रकार को जान पायेंगे।
- परिवार की संरचना में होने वाले परिर्वतनो से अवगत हो सकेंगे।
- बदलती परिवारिक संरचना से संबंधित समस्याओं के बारे में जान पायेंगे।

- परिवार के भविष्य को समझ पायेंगे।

## 7.1 प्रस्तावनाः–

परिवार सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ है जिसका मानव के सम्पूर्ण जीवन में महत्व है। काम्ट का कथन है ''परिवार समाजशास्त्र विषय की अध्ययन इकाई है''। काम्ट ने परिवार को समाज की इकाई या कोशिका कहा है।

परिवार सामाजिक संगठन की एक सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक निणार्यक इकाई है। परिवार के द्वारा ही सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण होता है जो समाजशास्त्र की मूल विषयवस्तु है। संस्कृति के सभी स्तरों में चाहे उन्हें उन्नत कहा जाए या निम्न, किसी न किसी प्रकार का पारिवारिक संगठन अनिवार्यतः पाया जाता है। शारीरिक आवश्यकताओं एवं कामवासना की पूर्ति ने ही परिवार को जन्म दिया। परिवार ही नवजात शिशुओं एवं गर्भवती माताओं की देखभाल करता है। यौन सम्बन्धों एवं संतानोत्पति का नियमन कर उन्हें सामाजिक मान्यता प्रदान करता है।

## 7.2 परिवार का अर्थ एवं परिभाषा–

प्राणीशास्त्रीय सम्बन्धों के आधार पर बने समूहों में परिवार सबसे छोटी इकाई है। परिवार सामाजिक संगठन की मौलिक इकाई है। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी परिवार का सदस्य होता है। मानव की सभी संस्थाओं में परिवार एक महत्वपूर्ण व सर्वव्यापी संस्था है। संस्कृति के प्रत्येक स्तरों में चाहे उन्हें उन्नत कहा जाय या निम्न किसी न किसी प्रकार का पारिवारिक संगठन अनिवार्यतः पाया जाता रहा है।

परिवार को अंग्रेजी में 'Family' कहते हैं। 'Family' शब्द लैटिन शब्द 'Famulus' से बना है जो एक ऐसे समूह के लिए प्रयुक्त होता है जिसमें माता–पिता, बच्चे, नौकर और दास होते हैं। साधारण अर्थों में एक विवाहित जोड़े को परिवार की संज्ञा दी जाती है। किन्तु यह समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से परिवार का व्यापक अर्थ नहीं है।

**मैकाइवर एवं पेज** के मतानुसार, ''परिवार पर्याप्त निश्चित यौन सम्बन्धों द्वारा स्थापित एक ऐसा समूह है जो बच्चों के जन्म एवं पालन–पोषण की व्यवस्था करता है।''

**मरडॉक** ने परिवार के सम्बन्ध में बताया है कि, ''परिवार एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसके लक्षण सामान्य निवास, आर्थिक सहयोग और जनन है। इनमें दो लिंगो के बालिग शामिल हैं जिनमें कम से कम दो व्यक्तियों में स्वीकृत यौन सम्बन्ध होता है और जिन बालिग व्यक्तियों में यौन सम्बन्ध होता है उनके अपने या गोद लिए हुए एक या अधिक बच्चे होते हैं।''

**लूसी मेयर** के अनुसार, ''परिवार एक गृहस्थ समूह है जिसमें माता–पिता और सन्तान साथ–साथ रहते हैं। इसके मूल रूप में दम्पत्ति और उसकी सन्तान रहती हैं।''

विभिन्न विद्वानों ने परिवार को विभिन्न दृष्टिकोणों से परिभाषित किया है। परिवार एक समूह एक संघ और एक संस्था के रूप में समाज में विद्यमान है।

अतः स्पष्ट है कि परिवार जैविकीय सम्बन्धों पर आधारित एक सामाजिक समूह है जिसमें माता–पिता और बच्चे रहते हैं तथा जिनका उद्देश्य अपने सदस्यों के लिए सामान्य निवास, आर्थिक सहयोग, यौन–सन्तुष्टि और प्रजनन, सामाजीकरण और शिक्षण आदि सुविधाएँ जुटाना हैं।

## 7.3 परिवार की विशेषताएँ–

परिवार के अर्थानुसार परिवार की अनेकों विशेषताएँ है जो निम्नलिखित हैं–

### 1. विवाह सम्बन्ध–

विवाह के कारण परिवार अस्तित्व में आता है। विवाह संस्था के द्वारा ही स्त्री या पुरुष को यौन–सम्बन्ध स्थापित करने की सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होती है जिसके परिणामस्वरूप सन्तानें जन्म लेती हैं। माता–पिता व सन्तानों से मिलकर ही एक परिवार का निर्माण होता है।

### 2. सार्वभौमिकता–

परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है। प्रत्येक समाज आधुनिक या प्राचीन, शहरी–ग्रामीण, सभी में परिवार का अस्तित्व रहा है विद्यमान रहा है। समाज के विकास के प्रत्येक स्तर पर परिवार दृष्टिगत होते रहे हैं।

### 3. वंशनाम की व्यवस्था–

सभी परिवारों में बच्चों का वंश के आधार पर नामकरण करने का कोई न कोई आधार रहा है। उसी के नाम से परिवार के बच्चे पहचाने जाते है। पितृवंशीय परिवारों में यह नामकरण पिता के वंश के आधार पर होता है जबकि मातृवंशीय परिवारों में माता के वंश के आधार पर होता है।

### 4. आर्थिक व्यवस्था–

सभी परिवारों में परिवार के सदस्यों का भरण–पोषण करने के लिए किसी न किसी प्रकार की अर्थ व्यवस्था होती है।

### 5. सामान्य निवास–

परिवार के सदस्यों के निवास की कोई न कोई व्यवस्था अवश्य होती है। विवाह के उपरान्त जब पति–पत्नी पति के वंशजों के साथ रहते है तो उसे पितृस्थानीय परिवार कहा जाता है और जब विवाह के उपरान्त

पति–पत्नि पत्नी के वंशजों के साथ रहते हैं तो उसे मातृस्थानीय परिवार कहते हैं।

### 6. भावात्मक आधार–

परिवार के सदस्य परस्पर भावात्मक आधार पर एक–दूसरे से जुड़े होते हैं। परिवार में प्रेम, सहयोग, दया, सहिष्णुता, त्याग, बलिदान आदि की भावनाएँ विद्यमान होती है जो पारिवारिक संगठन को सुदृढ़ बनाती है।

### 7. सीमित आकार–

अन्य सामाजिक संस्थाओं के विपरित परिवार का आकार सीमित होता है। परिवार की एक विशेषता उसका सीमित आकार है।

### 8. सामाजिक संरचना में केन्द्रिय स्थिति–

परिवार की सामाजिक संरचना में केन्द्रिय स्थिति होती है। समाज का निर्माण परिवार रूपी इकाईयों के मिलने से होता है।

### 9. सामाजिक नियन्त्रण–

परिवार में सामाजिक नियन्त्रण बना रहता है। अनेक ऐसे नियम, प्रथाएँ एवं रूढ़ियाँ हैं जो परिवार को बनाये रखने में एवं उस पर नियन्त्रण रखने में योग देती हैं।

### 10. सदस्यों का उत्तरदायीत्व–

परिवार में प्रत्येक सदस्य का अपने परिवार के प्रति कुछ न कुछ उत्तरदायीत्व होता है। सदस्यों के इस उत्तरदायीत्व के कारण ही परिवार का संगठन स्थायी बना रहता है।

अतः इससे स्पष्ट है कि परिवार एक ऐसी संस्था है जो विवाह सम्बन्धों पर आधारित होती है। परिवार सभी समाजों में विद्यमान है। परिवार के माध्यम से सामाजिक नियन्त्रण बना रहता है।

## 7.4 परिवार के प्रकार–

मानव समाज के विकास के साथ–साथ परिवार के अनेक रूप अस्तित्व मे आये हैं। प्रत्येक स्थान की भौगोलिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों ने भिन्न–भिन्न प्रकार की पारिवारिक व्यवस्था को जन्म दिया है। सदस्यों की संख्या, विवाह का स्वरूप, स्त्री पुरूष की सत्ता, निवास, वंशनाम आदि के आधार पर परिवार का वर्गीकरण किया जाता है जो निम्नलिखित है–

**i. संस्था के आधार पर–** संख्या के आधार पर परिवार को तीन भागों में बाँटा जाता है–

**(अ) केन्द्रिय परिवार–** इस प्रकार के परिवार आधुनिक समाजों की प्रमुख विशेषता हैं। केन्द्रिय परिवार परिवार का सबसे छोटा रूप है। वह परिवार जो पति–पत्नी तथा उनके आश्रित बच्चों से मिलकर बना होता है, उसे केन्द्रिय परिवार कहते हैं। इस प्रकार के परिवारों में अन्य रिश्तेदारों को सम्मिलित नहीं किया जाता।

**(ब) संयुक्त परिवार–** एक संयुक्त परिवार में तीन या तीन से अधिक पीढ़ियों के सदस्य साथ–साथ एक ही घर में निवास करते हैं, उनकी सम्पत्ति सामूहिक होती है, एक ही रसोई होती है, सामूहिक पूजा में भाग लेते हैं और परस्पर किसी न किसी नातेदारी व्यवस्था से सम्बन्धित होते हैं।

**(स) विस्तृत परिवार–** इस प्रकार के परिवार में सभी रक्त सम्बन्धी एवं कुछ अन्य सम्बन्धी सम्मिलित होते हैं। ये एक पक्षीय या द्विपक्षीय दोनों हो सकते हैं।

**ii. निवास के आधार पर–** इस आधार पर परिवार को 6 भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं–

**(अ) पितृ–स्थानीय परिवार–** यदि विवाह के पश्चात् पत्नी अपने पति एवं पति के माता–पिता के साथ रहती है तो ऐसे परिवार को पितृ स्थानीय कहते हैं।

**(ब) मातृ–स्थानीय परिवार–**जब विवाहोपरान्त पति अपनी पत्नी के माता–पिता के निवास स्थान पर रहने लगता है तो उसे मातृ–स्थानीय परिवार कहते हैं।

**(स) नव स्थानीय परिवार–** जब परिवार में पति–पत्नी विवाह के बाद न तो पति के पक्ष के लोगों के साथ रहते हैं और न ही पत्नी पक्ष के लोगों के साथ रहते हैं, वरन् अपना अलग घर बनाते हैं तो उसे नव–स्थानीय परिवार कहते हैं।

**(द) मातृ–पितृ स्थानीय परिवार–** कई समाजों में विवाहित दम्पत्ति पति या पत्नी में से किसी एक के ही साथ रहने को बाध्य नहीं होता बल्कि दोनों में से किसी के साथ भी रह सकता है। ऐसे परिवार को मातृ–पितृ स्थानीय परिवार कहते हैं।

**(य) मामा–स्थानीय परिवार–** इसमें नव विवाहित दम्पत्ति पति के मामा के परिवार में जाकर रहते हैं। ट्रोब्रियाण्डा द्वीपवासियों में यह प्रथा प्रचलित थी।

**(र) द्वि–स्थानीय परिवार–** कुछ स्थानों पर ऐसे भी परिवार हैं जहाँ विवाह के बाद पति–पत्नी अपने–अपने जन्म के परिवार में रहते हैं।

**iii. अधिकार के आधार पर–** इस आधार पर परिवार को दो भागों में बाँटा जाता है–

**(अ) पितृ–सत्तात्मक परिवार–** ऐसे परिवारों में सत्ता एवं अधिकार पिता व पुरुषों के पास होता है। वे ही परिवार पर नियन्त्रण करते हैं।

(ब) **मातृ–सत्तात्मक परिवार–** ऐसे परिवारों में सत्ता एवं अधिकार माता या स्त्री के पास होता है। वही परिवारिक नियन्त्रण बनाये रखने का कार्य करती हैं।

iv. **उत्तरधिकार के आधार पर–** इस आधार पर परिवार को दो भागों में बाँटा गया है–

(अ) **पितृमार्गी परिवार–** ऐसे परिवार में उत्तराधिकार के नियम पितृ पक्ष के आधार पर तय किये जाते हैं।

(ब) **मातृ–मार्गी परिवार–** इसमें उत्तराधिकार के नियम मातृ पक्ष के आधार पर तय किये जाते हैं।

v. **वंशनाम के आधार पर–** परिवार का वर्गीकरण वंशनाम के आधार पर भी होता है। इसके आधार पर परिवार को चार भागों में विभाजित किया जाता है–

(अ) **पितृवंशीय परिवार–** ऐसे परिवारों में वंश परम्परा पिता के नाम से चलती है। पुत्रों को पिता' का वंशनाम प्राप्त होता है।

(ब) **मातृवंशीय परिवार–** ऐसे परिवारों में वंश परम्परा माता के नाम से चलती है। माँ से पुत्रियों को वंशनाम प्राप्त होता है।

(स) **उभयवाही परिवार–** कुछ परिवारों में वंश परिचय वंशानुगत सम्बन्ध पर निर्भर न होकर सभी निकट के सम्बन्धियों पर समान रूप से आधारित होती हैं। ऐसे समाजों में पैतृक व मातृक दोनों वंशनाम परम्पराएँ साथ–साथ चलती हैं।

(द) **द्विनामी परिवार–** ऐसे परिवारों में एक व्यक्ति एक ही समय में अपने दादा और नानी से सम्बद्ध रहता है। अन्य दो सम्बन्धी (दादी और नाना) छोड़ दिये जाते हैं।

## 7.5 परिवार का कार्य–

परिवार समाज की आधारभूत इकाई है। परिवार द्वारा किये जाने वाले कार्य अन्य संस्थाओं द्वारा नहीं किये जा सकते हैं। परिवार के कार्य निम्नलिखित हैं–

### 1. आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति–

परिवार व्यक्ति की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। परिवार के द्वारा व्यक्ति को सुरक्षा प्राप्त होती है। परिवार में बच्चों का पालन–पोषण व सामजीकरण होता है। परिवार द्वारा सदस्यों की भोजन, वस्त्र आदि मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

**2. शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति–**

परिवार के अन्तर्गत रहकर प्रत्येक मनुष्य अपनी शारीरिक आवश्यकताओं जैसे यौन–सन्तुष्टि, सन्तानोत्पत्ति आदि आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

**3. सामाजीकरण का कार्य–**

सामाजीकरण में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परिवार में ही बालक का सामाजीकरण प्रारम्भ होता है। बालक परिवार के माध्यम से ही समाज के रीति–रिवाजों, प्रथाओं, रूढ़ियों आदि का ज्ञान प्राप्त करता है।

**4. उत्तराधिकार का निर्धारण–**

प्रत्येक समाज में सम्पत्ति एवं पदों के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरण की व्यवस्था पायी जाती है। यह कार्य परिवार के माध्यम से ही होता है।

**5. सामाजिक नियन्त्रण का कार्य–**

परिवार सामाजिक नियन्त्रण बनाये रखने का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। परिवार का मुखिया परिवार के अन्य सदस्यों पर नियन्त्रण रखता है तथा उन्हें अपनी सामाजिक परम्पराओं, मान्यताओं, मूल्यों के अनुरूप कार्य करने को प्रेरित करता है।

**6. शिक्षात्मक कार्य–**

परिवार ही बालक की प्रथम पाठशाला होती है। परिवार में ही बालक के व्यक्तित्व का निर्माण प्रारम्भ होता है। परिवार के द्वारा दी गयी शिक्षाएँ जीवनपर्यन्त आत्मसात होती रहती है। परिवार में बालक दया, स्नेह, प्रेम, सहानुभूति, त्याग, बलिदान आदि का पाठ सीखता है।

**7. सांस्कृतिक रक्षा का कार्य–**

परिवार ही समाज की संस्कृति की रक्षा का कार्य करता है। नयी पीढ़ी को संस्कृति का ज्ञान प्रदान करता है। परिवार संस्कृति का हस्तान्तरण कर संस्कृति की निरन्तरता बनाये रखता है।

अतः स्पष्ट है कि परिवार समाज की महत्वपूर्ण इकाई है। आज अनेक संघ एवं संस्थाएँ परिवार के कार्यों को ग्रहण कर रहे हैं परन्तु फिर भी किसी न किसी रूप में सामाज में परिवार का अस्तित्व बना हुआ है।

## 7.6 परिवार में आधुनिक परिवर्तन–

परिवर्तन एक सार्वभौमिक और शाश्वत प्रक्रिया है। समाज और उसकी कोई भी ईकाई इसके प्रभाव से बच नहीं सकती। 18वीं शताब्दी के अन्त में यूरोप में और 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत में, जैसे औद्योगिकरण आधुनिकीकरण एवं नगरीकरण का प्रारम्भ हुआ, परिवार में अनेक प्रकार के परिवर्तन दिखाई देने लगें। परिवार में हो रहे परिवर्तनों को निम्नलिखित प्रकार से समझ सकते हैं–

1. **एकल परिवारों का चलन–**

औद्योगिकरण के कारण संयुक्त ग्रामीण परिवारों का शहरों की ओर पलायन हुआ। जिससे संयुक्त परिवारों का ह्रास तेजी से हुआ। वर्तमान परिवेश में 'एकल परिवार' विकसित एवं मार्डन होने का पैमाना बन गया है।

2. **कामकाजियों की अधिक मांग–**

औद्योगिकरण के प्रभाव में परिवार के अधिकाधिक सदस्यों को आर्कषित किया जिससे एक परिवार से पति–पत्नी एवं बच्चों तक कारखानों, फैक्ट्ररियों आदि में एक साथ अथवा अलग–अलग कार्य करते है। इस प्रवृत्ति ने भी परिवार के मूलरूप को परिवर्तित कर दिया।

3. **सदस्यों में मानसिक दुराव–**

परिवार के लोगों में कामकाजी होने के कारण, काम का भिन्न समय इत्यादि के कारण, आपसी अन्तःक्रिया में कमी आयी है। अन्तःक्रिया की कमी के कारण, सदस्यों में मानसिक दुराव ने जन्म ले लिया है। जिसके कारण विच्छेद, संघर्ष, द्वंद, तनाव, कुण्ठा जैसे मानसिक विकार भी उत्पन्न हुए हैं।

4. **समप्रण एवं सेवाभाव का अभाव–**

वर्तमान आधुनिक परिवारों से समप्रण व सेवाभाव का अन्त होता जा रहा है। एकल परिवारों में जहाँ बच्चों को उचित देखभाल नही मिलता वहीं वृद्धजनों को सुरक्षा भी नहीं मिल पाती है। जिससे परिवार के सदस्यों में असुरक्षा की भावना विकसित हो जाती है।

5. **स्त्री विकन्द्रीकरण–**

आदि काल से ही स्त्रियाँ परिवार की केन्द्र बिन्दु की भाँति परिवार को नियन्त्रित करती आयी हैं, किन्तु आधुनिकता एवं औद्योगिकता ने स्त्रियों को उनके केन्द्र से विकेन्द्रित कर दिया है। आज स्त्रि घर के साथ–साथ व्यवसायिक कार्यों एवं अन्य कार्यों में पुरुषों के साथ–साथ है कहीं–कहीं पुरुषों से भी आगे हैं। इस कारण से भी परिवार में परिवर्तन हो रहे है।

6. **स्वतंत्रता एवं स्वच्छदंता में संघर्ष–**

आधुनिक परिवार में एक संघर्ष का जन्म हुआ है, स्वतंत्रता एवं स्वच्छंदता के मध्य। परिवार का प्रत्येक सदस्य स्वतंत्रता की मांग करता है तथा यह

पारिवारिक स्वतंत्रता कब समाजिक स्वच्छंदता के दायरें में आ जाती है इसका ज्ञान किसी भयानक गुनाह के रूप में दिखाई पड़ता है।

**7. स्वार्थपरक उत्पादन–**

आधुनिक परिवार में सभी केवल स्वयं की सोचते हैं। वह अपने हितों के प्रति समप्रित होते है फिर चाहे अन्य को कुछ भी हानि हो जाए। इस प्रवृत्ति का पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तानान्तरण हो रहा है जिस कारण समाज में लगातार एक स्वार्थपरक उत्पाद का उत्पादन हो रहा है।

**8. आर्थिक एवं पर्यावरणीय रूप से उपयोगी–**

आधुनिक परिवार आपने आप में आर्थिक रूप सुदृढ़ है क्योंकि परिवार का स्वरूप छोटा है तथा सभी कामकाजी होते हैं जिससे व्यय आय से कम होता है। पर्यावरण की दृष्टि से भी आधुनिक परिवार अधिक उपयोगी हैं क्योंकि आकार में छोटा होने तथा आर्थिक सुदृढ़ता के कारण तकनीकी से लैस होते है जिसमें पर्यावरण को नुकसान पहुँचने वाले वस्तुओं में, कार्यों में कमी आयी है।

## 7.7 परिवार की संरचना में परिवर्तनः–

अनेक समाजशास्त्रियों ने परिवार का अध्ययन अपने–अपने तरिकों से किया है गुडे (william J. Goode) ने अपने अध्ययन में पाया कि कृषि प्रधान समाज में परिवार एक आर्थिक इकाई के रूप में काम करता है। परिवार का स्वरूप सत्तावादी स्थिर एवं विस्तृत होता है। पुत्र अपने पिता के काम को विरासत के रूप में ग्रहण करता है। स्त्री व पूरूषों के बीच काम का बटवारा स्पष्ट होता था। लेकिन आज बदलती परिस्थिति में परिवार में आमूल चूल परिवर्तन आ रहे है। संयुक्त परिवार का विघटन व एकांकी परिवारों का उदय हो रहा है। व्यवस्थित विवाह में कमी आ रही है और प्रेमविवाह में वृद्धि हो रही है। विवाह के आर्थिक महत्व में कमी आ रही है। पारिवारिक नियंत्रण में कमी आ रही है एवं स्त्री पूरूष के बीच समानता धीरे–धीरे बढ़ती जा रही है।

परिवार की संरचना में होने वाला यह परिर्वतन वैश्वीकरण व औद्योगीकरण का परिणाम है साथ ही साथ बढ़ती भौगोलिक गतिशीलता ने पारिवारिक संरचना में परिर्वतन कर मूल परिवारों को बढ़ावा दिया है। क्लेटन (Richard R.Clayton, 1979) ने पारिवारिक व्यवस्था में परिर्वतन को आर्थिक व्यवस्था से जोड़ कर देखने की कोशिश की है। जब समाज में आर्थिक व्यवस्था कृषि आधारित थी तो विस्तृत परिवार की प्रधानता थी तथा कृषि व्यवस्था के विकास के पूर्व अदिम कालीन समाज में प्रमुख रूप से मूल परिवार की प्रधानता थी। लेकिन जब समाज कृषि स्तर से औद्योगिक स्तर की ओर बढ़ा मूल परिवार की आवश्यकता फिर से बढ़ने लगी।

दूसरे शब्दो में, मूल परिवार आधुनिक अर्थव्यवस्था की विशेषता है तो विस्तृत परिवार कृषि प्रधान समाज की।

आज पाश्चात्य देशो में नये प्रकार के परिवारों की उत्पत्ति हो रही है जहाँ दो समलिंगी (Homosexuals) साथ रहते है जिसे 'गे' अभिभावक परिवार (Gay-Parent family) के नाम से भी जाना जा रहा है। इसके दो प्रकार है एक वह जिसमें दो पुरूष एक साथ रहते है और दूसरा वह जिसमें दो महिलाएँ एक साथ

रहती हैं। कृत्रिम गर्भाधान (Arificial Insemination) से बच्चों का जन्म होता है। महिलाएँ आज अपने अधिकारो के प्रति ज्यादासजग है पारिवारिक मामलो से लेकर निजी मामलों में स्वयं निर्णय ले रही है नारी मुक्ति आन्दोलनो ने उनकी विचारधाराओं को बहुत अधिक प्रभावित किया है जिससे सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन हो रहा है। लोग जीवन साथी का चुनाव स्वयं कर रहे है एवं परम्परागत वैवाहिक दायरे को तोड़ने लगे है। कई विकासशील देशों में यौन सम्बन्धित विचारों में स्पष्ट परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा है। जैसे–शादी की उम्र में वृद्धि, तलाक में वृद्धि, पारिवारिक संम्पतिका बटवारा इत्यादी।

## 7.8 बदलती पारिवारिक संरचना से संबधित समस्याएंः–

आर्थिक विकास, औद्योगिकरण, नगरीकरण, व्यक्तिगत महत्त्वकांक्षा में वृद्धि आदि कारणों से वर्तमान में पारिवारिक संरचना में परिवर्तन आ रहा है। संयुक्त परिवार के स्थान पर नाभकिय परिवार ही नही बल्कि समलिंगी परिवार, सहजीवन आदि के नये–नये रूप समाज में आ रहे है। इसी संदर्भ में बदलती पारिवारिक संरचना से संबधित निम्न समस्याएं उत्पन्न हो रही है।

1. **अस्थिरता :–** वर्तमान समय के परिवार की प्रमुख विशेषता अब अस्थिरता बन गया है। पहले की तुलना में पारिवारिक विघटन अब ज्यादा दिखने को मिल रही है। परम्परागत भारतीय समाज में मां–बाप के जीवनकाल में उनके पुत्रों के बीच बटवारा सधारणतया नही होता था, लेकिन वर्तमान समय में भाई–भाई के बीच ही नही, बल्कि पिता–पुत्र के बीच भी परिवार में सम्पत्ति को लेकर बटवारा हो रहा है।

2. **परिवार के मुखिया के प्रमुख में कमी :–** परिवार में किसी भी निर्णय का अन्तिम रूप परिवार का मुखिया ही देता था। परिवार के मुखिया के इस प्रकार की निर्णय लेने और उसे कार्यरूप में देने के कारण ही समाजशास्त्रियों ने उसे परोपकारी तनाशाह के रूप में पुकारा। परन्तु वर्तमान समय मे औद्योगिकरण, नगरीकरण, प्रवजन आदि कारणों से परिवार में अब निर्णय लेने की ज्येष्ठाधिकार जैसी परम्परा का विनाश हो गया। अर्थात् व्यक्तिगत सत्ता के स्थान पर अब सामूहिक सत्ता का प्रचलन बढ़ गया है।

3. **वैकल्पिक संस्थाओं का विकास :–** परिवार के महत्त्वपूर्ण कार्यो में भी परिर्वतन आ गया है। औद्योगिकरण, नगरीकरण आदि के कारण परिवार में पति और पत्नी दोनों के कार्यशील होने के कारण परिवार के बच्चों का पालन अब क्रेच, डेकेयर जैसी संस्थाओं के द्वारा किया जा रहा है।

वर्तमान समय में बुजुर्गो के देखभाल के लिए वृद्ध–आश्रम, जैसी संस्थाओं का प्रचलन बढ़ रहा है।

4. **तलाक :–** सामान्यतः तलाक का अर्थ वैवाहिक संबंधों का अन्त माना जाता है। परम्परागत हिन्दू सामाजिक संगठन में विवाह को जन्म–जन्मांतर का संबध माना जाता है। परन्तु वर्तमान समय में विवाह को जन्म–जन्मांतर का बंधन न मानकर बल्कि साथ रहने का एकमात्र साधन माना जा रहा है। आधुनिकरण, शिक्षा, व्यक्तिकगत महत्वांकाक्षा, आर्थिक स्वावलम्बन, नाभकीय परिवार आदि कारणों से भारतीय समाज में तलाक की दर में दिनों–दिन बढ़ोतरी दिख रही है। इस घटना के भारतीय समाज पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों तरह के प्रभाव परिलक्षित होते है। एक तरफ इसने तलाक में वृद्धि कर पारिवारिक विघटन एवं बच्चों के पालन–पोषण की समस्या को उत्पन्न किया है तो वही दूसरी ओर स्त्रियों को विवाह विच्छेद या तालक की स्वंतत्रता देकर उनकी प्रस्थिति में सुधार किया है।

5. **व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना :–** परिवार में पहले अहं को स्वीकार नही किया जाता था। अर्थात् परिवार में व्यक्ति की व्यक्तिगत हित के स्थान पर सामूहिक हित का ध्यान दिया जाता था। परन्तु वर्तमान समय में परिवार के सदस्यों के बीच सहयोग, सहानुभूति और परस्पर प्रेम की भावना के स्थान पर लोग ज्यादा स्वार्थी हो गये है। इसके कारण पारिवारिक तनाव में वृद्धि हो रही है। नोतदारी बंधन अब कमजोर होते जा रहे है। इस कारण वर्तमान समय में परिवार की सबसे बड़ी समस्या पारिवारिक विघटन के रूप में सामने आ रही है।

6. **विवाह संस्था का ह्रास :–** पहले विवाह को एक पवित्र संस्था के रूप में माना जाता था, वही वर्तमान समय में विवाह जैसी संस्था के मूल्यों में कमी आयी है। बढ़ती नगरीकरण, औद्योगीकरण, पारिवारिक विघटन, व्यक्तित्व विघटन आदि कारणों से व्यक्तियों के विवाह के प्रति रूचि के स्थान पर नगरों में सहजीवन, समलिंगी विवाह जैसी प्रचलन बढ़ रही है।

## 7.9 परिवार व्यवस्था का भविष्यः–

वैश्वीकरण के इस दौर में परिवार की संरचना व प्रकायों में बहुत तेजी से परिवर्तन हो रहे है। विकासशील देशो की अपेक्षा विकसीत देशो में विवाह पूर्व ही यौन इच्छाओं की पूर्ति और प्रजनन कार्य सम्पादित होने लगे है विवाह व परिवार का महत्व घटता जा रहा है। आधुनिकोत्तर (Post modern) समाज के अपनी अनेक परेशानियाँ है जहाँ व्यक्तिवाद को बढ़ावा मिलता है तो परिवारवाद को उपेक्षा। मार्क्स का मानना था कि परिवार पूजीवादी समाज की उपज है जो बच्चों व महिलाओं का आर्थिक शोषण करता है। यह व्यवस्था महिलाओं को सम्पत्ति के रूप में देखता है। जब सर्वहारा वर्ग पूजीवादी व्यवस्था को खत्म कर देगा तो परिवार भी समाप्त हो जायेगा।

दूसरी तरफ जेसी बर्नाड (Jessie Bernard) ने अपनी पूस्तक The Future of Marriage (1972) में परिवार पर बहुत ही साकारात्मक विचार प्रस्तुत किये और इसके अस्तित्व को आवश्यक माना है।

## 7.10 सारांश–

परिवार महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था हैं। व्यक्ति परिवार में जन्म लेकर परिवार द्वारा प्राप्त शिक्षा के माध्यम से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए अपने व्यक्तित्व का विकास करता है तथा विवाह संस्था की सहायता से अपने यौन–इच्छाओं की पूर्ति करता है तथा सन्तानोत्पत्ति करता है।

परिवार संस्था सर्वाभौमिक संस्थाँ हैं। यह संस्थाँ सभी समाजों में विद्यमान होती हैं। इन संस्थाओं के माध्यम में समाज में सामाजिक नियन्त्रण बना रहता है। सांस्कृति निरन्तरता बनी रहती है। समाज के मूल्य, परम्पराओं, मान्यताओं की सुरक्षा होती है तथा यह मूल्य परम्पराएँ तथा मान्यताएँ पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती हैं तथा इनकी समाज में निरन्तरता बनी रहती है।

## 7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ :–


1. सिंह, जे.पी., समाजशास्त्र, प्रिन्टीश हॉल ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली ।
2. कपाड़िया, के. एम., भारत में विवाह एवं परिवार, बनारसी दास पब्लिकेशन, वाराणसी।


## 7.12 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) दीर्घ उत्तरीय :–

1. परिवार की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए उसके प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिए।
2. परिवार में कार्यो में आधुनिक परिवर्तन की चर्चा कीजिए।
3. परिवार के संरचना में कौन कौन से परिवर्तन आ रहे है।
4. बदलती पारिवारिक संरचना से संबन्धित समस्याओं का वर्णन कीजिए।
5. बदलती पारिवारिक संरचना से संबन्धित समस्याओं को इंगित करते हुए पारिवारिक व्यवस्था के भविष्य के बारे में चर्चा कीजिए।

### (ब) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. परिवार के अर्थ का उल्लेख कीजिए।
2. परिवार के प्रमुख कार्यो का वर्णन कीजिए।
3. परिवार की प्रमुख विशेषताओ की चर्चा कीजिए।
4. परिवार के प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिए।
5. परिवार में आधुनिक परिवर्तन की चर्चा कीजिए।

**स. बहुवैकल्पिक प्रश्न :–**

1. परिवार समाज की इकाई या कोशिका है? किसने कहा।

   (अ) हरबर्ट स्पेसर (ब) अगस्त काम्ट

   (स) कार्ल मार्क्स (द) इमाइल दुर्खीम

2. परिवार निश्चित यौन संबधो द्वारा स्थापित समूह के रूप में किसने परिभाषित किया है।

   (अ) मरडॉक (ब) मार्गन

   (स) लूसी मेयर (द) मैकाइवर एंव पेज

3. परिवार में होने वाले कौन से परिवर्तन प्रमुख है।

   (अ) एकल परिवार का चलन (ब) सदस्यो में मानसिक दुराव

   (स) समप्रण एवं सेवाभाव का अभाव (द) उपरोक्त सभी

4. निम्न में से किसने परिवारिक व्यवस्था में परिवर्तन को आर्थिक व्यवस्था से जोड़कर देखने का प्रयास किया है।

   (अ) क्लेटन (ब) लूसी मेयर

   (स) मार्गन (द) किग्सले डेविस

5. बदलती पारिवारिक संरचना में सबन्धित कौन–कौन से समयाएं है?

   (अ) अस्थिरता (ब) परि0kkj d ef[k;k dh प्रमुखता में कमी

   (स) तलाक (द) उपरोक्त सभी

## 7.13 प्रश्नोत्तर

1. (ब) 2. (द) 3. (द) 4. (अ) 5. (द)

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

# DCESY-102
# भारत में सामाजिक समस्याएँ

## खण्ड – 3

## समाजिक रूपरेखा


**इकाई – 8** **95–108**
बेरोजगारी

**इकाई – 9** **109–120**
श्रम (औद्योगिक)

**इकाई – 10** **121–130**
श्रम (ग्रामीण)

**इकाई – 11** **131–138**
श्रम : महिला श्रमिक

**इकाई – 12** **139–144**
श्रम (बाल–श्रमिक)

**इकाई – 13** **145–152**
निर्धनता तथा उसके सामाजिक प्रभाव

# उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

## उत्तर प्रदेश प्रयागराज

### परामर्श समिति

| | | |
|---|---|---|
| कुलपति | – | प्रो० के० एन० सिंह |
| कुलसचिव | – | डॉ० ए० के० गुप्ता |

### सम्पादक

1. प्रो. सोहन राम यादव
   विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
   बी० एच० यू० वाराणसी। – 221005
2. प्रो. जगदीश नारायण सिंह
   प्रोफेसर, समाजशास्त्र
   बी० एच० यू० वाराणसी। – 221005

### पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | डॉ० एम० एन० सिंह | – | पूर्व निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ० प्र० रा० ट० मु० वि० वि०, प्रयागराज |
| 2. | डॉ० इति तिवारी | – | प्रभारी, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ० प्र० रा० ट० मु० वि० वि०, प्रयागराज |
| 3. | रमेश चन्द्र यादव | – | शैक्षणिक परामर्शदाता, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र०रा०ट०मु०वि०वि०, प्रयागराज |

### DCESY-102 – भारत में सामाजिक समस्यायें

**लेखक**

| | | |
|---|---|---|
| रमेश चन्द्र यादव | – | शैक्षणिक परामर्शदाता, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र०रा०ट०मु०वि०वि०, प्रयागराज |
| डॉ. इति तिवारी | – | एसो० प्रोफेसर, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज। |
| प्रो. मोहम्मद सलीम | – | प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| प्रो. ए.के. पाण्डेय | – | प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| डॉ. अखिलेश कुमार राय | – | एसों. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, वसंत कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी। |
| डॉ. अरूणा कुमारी | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। |
| डॉ. सुस्मिता सिंह | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| डॉ. दिनेश कुमार सिंह | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। |

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज – 2023

ISBN- 978-93-83328-42-0

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
नोट : पाठय सामग्री में मद्रित सामग्री के विचारों एवं आमडों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

# इकाई–08

# बेरोजगारी

इकाई की रूपरेखा


8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 बेरोजगारी के प्रकार

8.3 बेरोजगारी के कारण

8.4 बेरोजगारी के परिणाम

8.5 बेरोजगारी नियंत्रण के सरकारी उपाय

8.6 सारांश

8.7 संदर्भ ग्रन्थ

8.8 सम्बन्धित प्रश्न–

(अ) दीर्घ उत्तरीय

(ब) लघु उत्तरीय

(स) वस्तुनिष्ठ

8.9 प्रश्नोत्तर


## 8.0 उद्देश्य :–

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- भारत में बेरोजगारी की स्थिति से परिचित हो सकेंगें।
- बेरोजगारी के प्रकारों के विषय में जान सकेंगें।
- बेरोजगारी के कारणों की समीक्षा कर सकेंगें।
- बेरोजगारी के परिणामों से अवगत हो सकेंगें।
- बेरोजगारी नियंत्रण के सरकारी प्रयासों के विषय में ज्ञात कर सकेंगें।

## 8.1 प्रस्तावना :–

वर्तमान में विश्व के लगभग सभी देशों को बेरोजगारी की समस्या का सामना करना पड़ रहा हैं। यह समस्या न केवल औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए

देशों की हैं बल्कि विकसित देशों की भी हैं। विभिन्न देशों में बेकारी के कारण एक समान पूर्णरूप से नहीं होते हैं, जहाँ औद्योगीकरण, यातायात के विकसित साधनों, मुद्रा अर्थव्यवस्था, बैंक व्यवस्था, मशीनीकरण आदि ने मानव को अनेक सुविधाएँ प्रदान की हैं, वहाँ दूसरी तरफ इन्होंने आर्थिक मन्दी बेकारी तथा गरीबी को जन्म दिया हैं औद्योगीकरण से पूर्व बेकारी कृषि क्षेत्र तक ही सीमित थी और वह भी छिपी तथा अर्द्ध–बेकारी के रूप में थी, औद्योगीकरण के फलस्वरूप अब बेकारी कृषि के अतिरिक्त अनेक क्षेत्रों में पायी जाती हैं। औद्योगीकरण ने पूंजीवाद के विकास एवं सम्पत्ति के असमान वितरण में योग दिया तथा समाज में आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया जिसमें से बेकारी भी एक हैं। बेकारी न केवल आर्थिक समस्या हैं वरन् एक सामाजिक समस्या हैं। बेकारी व्यक्ति के जीवन को छिन्न–भिन्न कर देती हैं और उसके पारिवारिक सम्बन्धों पर कुप्रभाव डालती हैं। बेकारी व्यक्ति में निराशा एवं हीनता की भावना पैदा कर देती हैं और कई बार उससे ग्रसित व्यक्ति अपराध तक को करने के लिए बाध्य हो जाता हैं। व्यक्ति समाज और राष्ट्र के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से आवश्यक हैं कि बेकारी की समस्या को युद्ध स्तर पर हल किया जाए इसे दूर करने के लिए रोजगार उपलबध कराया जाय।

एक बेरोजगार व्यक्ति ''वह हैं जिसमें कमाने की अन्तनिर्हित क्षमता और इच्छा दोनों हैं, फिर भी उसे वैतनिक काम नहीं मिल पाता।'' समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से बेरोजगारी की परिभाषा इस प्रकार की गई हैं कि ''यह सामान्य कार्यरतबल के एक सदस्य (15–59 आयु वर्ग का) के सामान्य कार्य काल में सामान्य वेतन पर और उसकी इच्छा के विरूद्ध वैतनिक कार्य से अलग रखना हैं।''

जी.आर. मदान के अनुसार ''उस देश में बेकारी हैं जहाँ स्वस्थ शरीर वाले ऐसे व्यक्तियों को मजदूरी के सामान्य स्तर पर काम नहीं मिल पाता जो काम करना चाहते हैं।'' स्पष्ट हैं कि बेकारी वह दशा हैं जिसमें एक व्यक्ति को काम करने की इच्छा रखने एवं अर्थोपार्जन करने हेतु प्रयत्न करने पर भी पूर्ण रोजगार प्राप्त न हो। अन्य शब्दों में बेकारी वह अवस्था हैं जिसमें शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ एवं समर्थ व्यक्ति को जो कार्य करने की इच्छा रखता हैं, प्रचलित मजदूरी पर काम नहीं मिलता हैं।

बेरोजगारी के तीन तत्व हैं–

**(i)** व्यक्ति में काम करने की क्षमता होनी चाहिए।

**(ii)** व्यक्ति को काम ढूँढ़ने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

**(iii)** व्यक्ति में काम करने की इच्छा होनी चाहिए।

## 8.2 बेरोजगारी के प्रकार :–

### (i) मौसमी तथा आकस्मिक बेकारी :–

अनेक व्यवसाय ऐसे हैं जिनमें वर्ष में उतार–चढ़ाव आते रहते हैं, कभी उनमें श्रमिकों की अधिक आवश्यकता होती हैं तो कभी बिल्कुल आवश्यकता नहीं रहती। उदाहरण के लिए चीनी उद्योग नवम्बर से मई तक चलता हैं, ऊन उद्योग सर्दियों में एवं बर्फ के कारखाने गर्मियों में ही चलते हैं। कृषि में भी फसल काटते समय अधिक मजदूरों की आवश्यकता होती हैं।

### (ii) प्रौद्योगिकी बेकारी :–

उद्योगों में मशीनीकरण एवं अविष्कारों के फलस्वरूप मानव–शक्ति का प्रयोग घटा हैं। उत्पादन के अनेक कार्य स्वचालित क्षेत्रों के द्वारा होने लगा हैं, उनमें कार्यरत व्यक्तियों की संख्या दिनो–दिन कम होती जा रही हैं जिसके परिणाम स्वरूप बेकारी बढ़ती जा रही हैं।

### (iii) अस्थायी बेकारी :–

शिक्षा या प्रशिक्षण समाप्त करने के बाद जब तक व्यक्ति को कोई कार्य नहीं मिलता, उस समय तक वह बेकार रहता हैं, किन्तु ज्योंही उसे किसी व्यवसाय में काम मिल जाता हैं, वह रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की श्रेणी में आ जाता हैं।

### (iv) घर्षण बेकारी :–

इस प्रकार की बेकारी लोगों की रोजगार सम्बन्धी अवसरों की अनभिज्ञता, श्रमिकों में गतिशीलता का अभाव, मशीनों की टूट–फूट एवं उद्योगों में कच्चे माल की कमी, आदि कारणों से उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार की बेरोजगारी विकसित देशों में देखने को मिलती हैं।

### (v) चक्रीय बेकारी :–

इस प्रकार की बेरोजगारी का सम्बन्ध व्यापारिक चक्रों से हैं। व्यापार में उतार–चढ़ाव के चक्र आते हैं। जब किसी व्यवसाय में लाभ के अवसर अधिक होते हैं तो सभी लोग उसे अपनाने लगते हैं, किन्तु कुछ समय के बाद लाभ की मात्रा कम होने पर उसको छोड़ने लगते हैं। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था का पहले विकास होता हैं उसके बाद संकुचन होने लगता हैं।

### (vi) अर्द्ध बेकारी :–

जब व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार काम नहीं मिलता हैं जैसे– एक डॉक्टर को कम्पाउण्डर के पद पर और एक इन्जीनियर को ओवरसीयर के

पद पर कार्य करना पड़े और वेतन भी कम प्राप्त हो तो उसे हम अर्द्ध–बेकारी की श्रेणी के अन्तर्गत रखेंगे।

### (vii) ऐच्छिक बेकारी :–

जब व्यक्ति काम करने की क्षमता होते हुए भी आलस्य, कम मजदूरी या मजदूरी में कटौती आदि कारणों से काम नहीं करता हैं तो उसे ऐच्छिक बेकारी कहा जायेगा।

### (viii) छिपी बेकारी :–

इस प्रकार की बेकारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में देखी जा सकती हैं। भारत में लगभग सभी कृषक परिवार भूमि के छोटे–छोटे टुकड़ों पर कृषि करते हैं। संयुक्त परिवार प्रणाली के कारण भूमि पर दबाव बढ़ता हैं और नये जन्म लेने वाले सदस्य भी पहले वाले सदस्यों के साथ ही उसी भूमि पर कृषि कार्य में जुड़ते हैं। प्रकट रूप में तो ऐसा लगता हैं कि सभी परिवार के सदस्य रोजगार में लगे हुए हैं किन्तु उनके द्वारा उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होती हैं, यदि उनमें से कुछ को कृषि कार्य से हटाकर दूसरे व्यवसाय में लगा दिया जाये तो भी कृषि उत्पादन में कोई कमी नहीं आयेगी क्योंकि इस प्रकार वे अप्रकट रूप से बेरोजगार ही थे।

### (ix) शिक्षित बेकारी :–

शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद भी जब लोग बेकार हो तो उन्हैं हम शिक्षित बेरोजगार के श्रेणी में रखेंगे। भारत में एम.ए., बी.ए., डाक्टरी, इन्जीनियरिंग और अन्य तकनीकी शिक्षा प्राप्त कई व्यक्ति बेकार हैं।

### (x) संरचनात्मक बेकारी :–

इस प्रकार की बेरोजगारी का मूल कारण किसी देश की अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन हैं। उदाहरण के लिए भारत से विदेशों में निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के व्यवसाय में यदि लम्बे समय तक कमी आ जाती हैं या निर्यात की माँग घट जाती हैं तो उन व्यवसायों में बेकारी उत्पन्न हो जाती हैं। इस प्रकार की बेकारी को संरचनात्मक बेकारी कहा जाता हैं।

### (xi) खुली बेकारी :–

इस प्रकार की बेकारी में श्रमिक के पास कोई काम नहीं होता हैं इस प्रकार की बेकारी अधिकतर शहरों में देखने को मिलती हैं, जहाँ गाँवों से आने–वाले लोग काम के अभाव में बेकार पड़े रहते हैं, इस श्रेणी में शिक्षित बेकारी को भी सम्मिलित किया गया हैं।

## 8.3 बेरोजगारी के कारण :–

इलियट एवं मैरिल ने बेरोजगारी के कारणों को दो भागों में बांटा हैं–

### (1) व्यक्तिगत कारण

### (2) अवैयक्तिक कारण

#### 1. व्यक्तिगत कारण :–

जब व्यक्ति की बेरोजगारी के लिए उसकी शारीरिक–मानसिक अक्षमता उत्तरदायी हो तो उसे व्यक्तिगत कारणों से उत्पन्न बेकारी के अन्तर्गत रखते हैं। इससे सम्बन्धित कारण इस प्रकार हैं–

#### i. आयु :–

आयु की दृष्टि से हम व्यक्तियों का विभाजन बालकों, युवकों और वृद्धों के रूप में कर सकते हैं। बालकों एवं वृद्धों में बेरोजगारी की समस्या युवा लोगों की अपेक्षा गम्भीर हैं। युवा वर्ग के लोगों को अनुभव की कमी के कारण नये व्यवसायों में प्राथमिकता नहीं दी जाती हैं। मध्यम आयु के व्यक्ति जो 25 से 40 वर्ष के होते हैं बेकारी से कम ग्रसित होते हैं। 40 वर्ष के बाद और प्रमुख रूप से 50 और 60 वर्ष के लोगों में बेकारी अधिक होती हैं क्योंकि जब श्रम बाजार में युवा कार्यकर्त्ता मिलते हैं तो वृद्धों को कोई भी नौकरी नहीं देना चाहता। वृद्धों द्वारा युवा लोगों की तुलना में उत्पादन कम ही होता हैं। इनके दुर्घटना के अवसर अधिक होते हैं और वे अनुकूलन करने में कठिनाई महसूस करते हैं।

#### ii. व्यावसायिक योग्यता :–

कई बार व्यक्ति यह नहीं जानता कि उसे क्या काम करना चाहिए, उसकी क्या रूचि हैं और वह किस काम को अधिक योग्यता से कर सकता हैं। कई बार व्यक्ति किसी भी काम करने को तैयार हो जाता हैं। सेवायोजक या मालिक यह चाहते हैं कि उनके यहाँ ऐसे काम करें जो योग्य, सक्षम और प्रशिक्षित हो। किसी क्षेत्र में आवश्यकता से अधिक प्रशिक्षित और कुशल श्रमिक होने पर भी उन्हें बेरोजगारी का सामना करना पड़ता हैं।

#### iii. बीमारी और शारीरिक अयोग्यता :–

जो व्यक्ति स्थाई रूप से या कुछ समय के लिए बीमार होते हैं, उन्हें भी बेकारी का सामना करना पड़ता हैं। कारखाना प्रणाली में मशीनों के कारण होने वाली दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ता हैं। कारखाना प्रणाली में मशीनों के कारण होने वाली दुर्घटनाएँ बढ़ी हैं। मशीन पर काम करते समय थक जाने या नींद आ जाने पर अंग–भंग होने से अवसर रहते हैं और ऐसे व्यक्ति बेकार हो जाते हैं। जो व्यक्ति अन्धे, बहरे, लूले, लंगड़े आदि होते हैं, वे भी शारीरिक अक्षमता के कारण बेकार हो जाते हैं।

## 2. अवैयक्तिक कारण :–

### i. जनसंख्या में वृद्धि :–

भारत की जनसंख्या दिन दूनी रात चौगुनी जैसे बढ़ रही हैं। जिस अनुपात में हमारे देश में जनसंख्या वृद्धि हो रही हैं, उस अनुपात में आर्थिक विकास नहीं हो पा रहा हैं। हमारे यहाँ प्रतिवर्ष लगभग 2 करोड़ जनसंख्या बढ़ जाती हैं 1961 में भारत की जनसंख्या 43 करोड़ थी जो 2011 में 121 करोड़ से अधिक हो चुकी हैं। जनसंख्या बढ़ने के साथ–साथ काम की पूर्ति भी बढ़ती हैं। परन्तु जिस अनुपात में देश की जनसंख्या बढ़ रही हैं, उसी अनुपात में उद्योग व्यवसाय एवं रोजगार के अवसर नहीं बढ़ रहे हैं।

### ii. पिछड़ी कृषि व्यवस्था :–

बेरोजगारी का एक कारण भारत की पिछड़ी कृषि व्यवस्था हैं। किसान के पास न तो पर्याप्त पूँजी हैं न कृषि के वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपकरण न नवीन बीज एवं नवीन उर्वरक साधन हैं। अतः वे कृषि क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने में सफल नहीं हो पाते हैं।

### iii. सीमित पूँजी :–

जनसंख्या में तो वृद्धि हो किन्तु भूमि तो सीमित हैं। जनसंख्या के बढ़ने के कारण प्रति व्यक्ति कृषि–योग्य भूमि में कमी आती हैं।

### iv. मौसम एवं प्राकृतिक कारण :–

भारत में कृषि वर्षा पर निर्भर हैं। मानसून की अनिश्चितता एवं अनियमितता के कारण कई बार फसल बर्बाद हो जाती हैं। अतिवृद्धि, अनावृद्धि, महामारी, तूफान, चक्रवात, ओले, टिड्डियो और कीटाणुओं के आक्रमण आदि के कारण कृषि को हानि होती हैं और बेचारे किसानों को गरीबी व बेरोजगारी का सामना करना पड़ता हैं।

### v. आर्थिक विकास की मध्यम गति :–

भारत का अभी पूर्ण औद्योगिक विकास नहीं हुआ हैं तथा औद्योगिक विकास की गति भी यहाँ धीमी हैं। बढ़ती जनसंख्या के लिए उद्योगों में रोजगार के पर्याप्त अवसरों के अभाव के कारण भी बेकारी हैं। जब किसी देश में आर्थिक विकास यथेष्ट रूप में नहीं हो पाता हैं तो श्रम का भी

यथोचित उपयोग नहीं हो पाता हैं, परिणामतः बहुत लोग बेरोजगार रह जाते हैं।

### vi. कुटीर उद्योगों का पतन :–

औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप कुटीर उद्योगों हस्तकला एवं दस्तकारी आदि कुटीर उद्योगों का प्रायः सफाया सा हो गया हैं। बड़े–बड़े उद्योग स्थापित हुए तथा कुटीर उद्योग में लगे कई लोग बेरोजगार हो गये।

### vii. दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था :–

अंग्रेजों के समय देश में जमींदारी तालुकेदारी एवं रैयतवारी प्रथा प्रारम्भ हुई। एक तरफ ऐसे लोग हैं जिनके पास उपजाऊ एवं काफी अधिक भूमि हैं, दूसरी तरफ भूमिहीन कृषि मजदूर हैं जिनकी संख्या बड़े भूस्वामियों की तुलना में काफी ज्यादा हैं। भूस्वामी कृषि मजदूरों का शोषण करते हैं। जमींदारी उन्मूलन कानून एवं भूमि सुधारों के प्रयासों के बावजूद भी किसानों की वास्तविक स्थिति कोई उल्लेखनीय नहीं हैं।

### viii. औद्योगीकरण एवं अभिनवकरण :–

जब उत्पादन का कार्य मशीनों की सहायता से किया जाने लगा तो औद्योगीकरण की नींव पड़ी विशाल उद्योग स्थापित किये गये जिनमें बड़ी–बड़ी मशीनों से उत्पादन किया जाने लगा। उद्योगों में कम व्यक्तियों द्वारा तीव्र गति से बड़ी मात्रा में उत्पादन होता हैं। कुटीर उद्योगों में लगे व्यक्ति औद्योगीकरण के कारण बेकार हो गये। उद्योगों में अभिनवकरण ने भी बेकारी को जन्म दिया। अभिनवकरण से तात्पर्य हैं कि ऐसी मशीनों का प्रयोग जिनसे कम श्रम से अधिक उत्पादन किया जा सके, पूँजीपति अपने कारखाने का अभिनवकरण करवाता हैं तो श्रमिकों की कटौती होती हैं और वे बेरोजगार हो जाते हैं।

### ix. मौसमी उतार–चढ़ाव :–

कुछ व्यवसाय ऐसे हैं जिनका सीधा सम्बन्ध मौसम से हैं। बर्फ का व्यवसाय गर्मियों में एवं ऊन का व्यवसाय, सर्दियों में ही अधिक चलता हैं। गन्ना पकने पर ही गुड़ एवं शक्कर उद्योग कार्य प्रारम्भ करते हैं, कृषि के क्षेत्र में फसल बोने और काटने के समय अधिक श्रम की आवश्यकता होती हैं, शेष समय में इन क्षेत्रों में श्रम की मांग घट जाने से बेकारी पायी जाती हैं।

### x. व्यापार चक्र एवं मंदी :–

व्यापार में तेजी मन्दी का जो चक्र चलता रहता हैं, उसकी चपेट में भी हजारों व्यक्ति आते रहते हैं उसके कारण भी समय–समय पर लोगों की छटनी होती रहती हैं और बेकारी बढ़ती रहती हैं।

### xi. सरकारी नीति :–

प्रत्येक राजनीतिक दल की अपनी–अपनी उद्योग नीति होती हैं। किसी वस्तु का आयात व निर्यात कितना होगा यह सरकार की नीतियों पर निर्भर

करता हैं। यदि विदेशों से किसी वस्तु का आयात अधिक होता हैं तो हमारे यहाँ के उद्योग नहीं पनप पाते एवं लोगों का रोजगार उपलब्ध नहीं हो पाता। इसके विपरीत जब सरकर किसी व्यवसाय को प्रोत्साहन देती हैं वह उद्योग फलता–फूलता हैं, और रोजगार के अवसर बढ़ते हैं।

### xii. मजदूरों में प्रशिक्षण की कमी :–

भारतीय मजदूरों में शिक्षा एवं औद्योगिक प्रशिक्षण का अभाव पाया जाता हैं। अतः वे दक्ष किसान एवं श्रमिक नहीं बन पाते हैं। यही कारण हैं कि उन्हैं उद्योगों, खानों एवं कारखानों में उचित रोजगार प्राप्त नहीं हो पाता हैं और बेकारी का सामना करना पड़ता हैं।

### xiii. उद्योगों का केन्द्रीकरण :–

सामान्यतः उद्योगों का केन्द्रीकरण बड़े–बड़े नगरों में पाया जाता हैं इन उद्योगों में काम करने की आशा से ग्रामीण लोग शहरों में आते हैं। शहरों में श्रम की पूर्ति बढ़ जाती हैं किन्तु सभी इच्छुक व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध नहीं हो पाता हैं। उद्योगों का देश के विभिन्न भागों में विकेन्द्रीकरण न होने के कारण ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को रोजगार के अवसर उपलब्ध नहीं हो पाते।

### xiv. दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली :–

मैकाले ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली प्रारम्भ की जिसका उद्देश्य प्रशासन के लिए बाबू वर्ग तैयार करना था। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति शारीरिक श्रम से घृणा करता हैं। आज भी शिक्षा व्यक्ति को रोजी रोटी के लिए तैयार नहीं करती। आज प्रत्येक व्यक्ति नौकरी ही प्राप्त करना चाहता हैं और सभी को नौकरी देना किसी भी सरकार के लिए सम्भव नहीं हैं। अतः पढ़े–लिखे व्यक्तियों को बेकारी का सामना करना पड़ता हैं।

## 8.4 बेरोजगारी के परिणाम :–

### 1. वैयक्तिक विघटन :–

कहने की आवश्यकता नहीं कि बेरोजगारी किसी युवा व्यक्ति के लिए, रोजी–रोटी से आहत व्यक्तियों के लिए, पुराने व्यक्तियों के लिए अल्प रोजगार, आंशिक रोजगार में संलग्न व्यक्त्यिों के लिए और अल्पवैतनिक व्यक्तियों के लिए बहुत ही खतरनाक हैं। वह देर तक सोता हैं, शराब पीने लगता हैं और जुआ खेलने लगता हैं। थोर्स्टन शैलिन ने अपने अध्ययन में बताया हैं कि मन्दी के दिनों में सम्पत्ति सम्बन्धी अपराध बढ़ गये। बेकारी की दशा में भिक्षावृत्ति आवारागर्दी, गुण्डागर्दी आदि को बढ़ावा मिलता हैं

लोग उदास हो जाते हैं, विवाह की दर घटती हैं व अनैतिक सम्बन्ध बढ़ते हैं, व्यक्तित्व का विघटन होने लगता हैं।

## 2. पारिवारिक विघटन :–

बेरोजगारी से आहत व्यक्ति का वैयक्तिक विघटन तो होता ही हैं साथ ही यह पारिवारिक विघटन का भी उद्‌गम स्रोत हैं। पैसे की तंगी, पग–पग पर परेशानी, चिन्ता और कलह को जन्म देती हैं। परिवार के सदस्यों को जब भरपेट भोजन नहीं मिलता, तन ढँकने के लिए कपड़े नहीं प्राप्त होते, रहने के लिए घर नसीब नहीं होता और जीवन की अन्य सुविधाओं से वंचित होना पड़ता हैं तो ऐसे परिवार में कलह का होना स्वाभाविक जान पड़ता हैं। ऐसी स्थिति में परिवार की शान्ति भंग होती हैं, दाम्पत्य–क्लेश बढ़ता हैं तथा बालक बाल–अपराधों की दिशा में मुड़ते हैं। पति–पत्नी के सम्बन्ध विच्छेद व तनाव भी हो जाता हैं। परिवार बिखरने लगता हैं।

## 3. सामाजिक विघटन :–

बेरोजगारी के कारण होने वाली आर्थिक हानि को मापा जा सकता हैं किन्तु सामाजिक हानि का मूल्यांकन करना कठिन हैं। बेकार व्यक्ति की धारणाओं में कठोरता आने लगती हैं उनके मनोवृत्तियों में तीखापन आ जाता हैं, उनका सामाजिक जीवन रिक्त होने लगता हैं। लोगों में कार्य के प्रति आकर्षण घटने लगता हैं उनकी विशेष योग्यताओं का ह्रास होने लगता हैं। बेरोजगार व्यक्ति तनाव ग्रस्त रहता हैं, सामुदायिक जीवन से कटकर रहता हैं। उसमें समाज के उत्तरदायित्वों के प्रति कोई रूचि नहीं रहती हैं, वह अपराध की तरफ जाता हैं समाज में वेश्यावृत्ति, भिक्षावृत्ति, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, बेईमानी पनपती हैं। जो सामाजिक विघटन में सहायक होते हैं।

## 4. बेरोजगारी एवं आर्थिक प्रभाव :–

बेरोजगारी गरीबी एवं ऋण ग्रस्तता को जन्म देती हैं। बेकारी में लोगों की आय एवं जीवन–स्तर मिलता हैं, कार्य क्षमता प्रभावित होती हैं जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन घटता हैं। राष्ट्रीय आय घटने लगती हैं– उद्योगों को बन्द करना पड़ता हैं, अशांति एवं आर्थिक संकट पैदा हो जाता हैं, परिवार एवं व्यक्ति की आर्थिक दशा बिगाड़ जाती हैं।

## 5. बेरोजगारी एवं स्वास्थ्य :–

बेकारी के दिनों में व्यक्ति के स्वास्थ्य का भी ह्रास होता हैं। वे कुपोषण के शिकार हो जाते हैं, एवं संतुलित आहार के अभाव में कई रोगों से घिर जाते हैं इन सबका स्वयं एवं उनके परिवार के सदस्यों पर बुरा प्रभाव पड़ता हैं ऐसे व्यक्ति चिकित्सा की सुविधा जुटाने में असमर्थ होते हैं और शीघ्र ही काल के मुंह में चले जाते हैं।

## 6. बेरोजगारी एवं राजनीतिक प्रभाव :–

देशव्यापी बेरोजगारी राजनीतिक विद्रोह एवं क्रान्ति को जन्म देती हैं, बेकार लोग प्रदर्शन, हड़ताल, धरने आदि का आयोजन करते हैं सरकारे ठप्प हो जाते हैं, प्रजातंत्र की नींव हिलने लगती हैं, चारों ओर अराजकता फैलती

हैं, तोड़–फोड़, लूट–पाट एवं दंगे होने लगते हैं, और लोगों का जीवन खतरे में पड़ जाता हैं।

### 7. बेरोजगारी एवं मनोवैज्ञानिक प्रभाव :–

बेरोजगारी व्यक्ति में निराशा एवं हीन भावना को जन्म देती हैं, काम के प्रति उसकी रूचि समाप्त हो जाती हैं। वह मानसिक संघर्षों से लड़ता रहता हैं। उसका स्वभाव चिड़चिड़ा और आक्रामक हो जाता हैं। उसमें पराधीनता की भावना जन्म लेती हैं और अपने को असहाय एवं पराश्रित अनुभव करने के कारण उसकी व्यक्तिगत योग्यता एवं कार्यक्षमता घट जाती हैं। उसमें– पृथकता की भावना पनपती हैं, जिसके फलस्वरूप अपने मित्र मण्डली और यहाँ तक अपने परिवार के सदस्यों से भी कटा–कटा रहने लगता हैं।

## 8.5 बेरोजगारी निवारण सम्बन्धित सरकारी कार्यक्रम :–

देश में बेरोजगारी की विषय समस्या के निवारण हेतु सरकार द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से समय–समय पर अनेक कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने की घोषणाएँ की गयी हैं।

### नगरीय बेरोजगारी के लिए कार्यक्रम :–

### 1. नेहरू रोजगार योजना :–

इस योजना को नगरीय गरीब और बेरोजगार लोगों की सहायता के उद्देश्य से अक्टूबर 1989 में सम्मिलित किया गया। मार्च 1990 में इस योजना को पुर्नगठित किया गया।

### 2. प्रधानमंत्री का समन्वित शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम :–

यह कार्यक्रम सर्वप्रथम केरल के कोट्टापम जिले के चेंगनचेरी शहर से 18 नवम्बर 1995 को आरम्भ किया गया। इस कार्यक्रम के तहत पाँच वर्ष के लिए 6400 करोड़ की भारी राशि 11 जिलो के खण्डों में वितरित करने का प्रावधान था।

### 3. स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना :–

इसका आरम्भ 1 दिसम्बर 1997 को हुआ। यह कार्यक्रम पहले के शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम अर्थात् नेहरू रोजगार योजना शहरी मूल सेवाए अर्थात् नेहरू रोजगार योजना शहरी मूल सेवाएँ कार्यक्रम और प्रधानमंत्री का स्वीकृत शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम का उप–सारांश हैं।

## 4. शिक्षित बेरोजगारों के लिए कार्यक्रम :–

शिक्षित बेरोजगारो की सहायता करने के लिए 'स्वरोजगार योजना' के तहत केन्द्र सरकार उन्हैं आर्थिक सहायता देती हैं।

## 5. प्रधानमंत्री की रोजगार योजना :–

यह योजना शिक्षित बेरोजगार युवाओं के लिए रोजगार का अवसर तलाशने वाली योजना हैं। इस कार्यक्रम की शुरूआत 2 अक्टूबर 1993 को की गयी थी। वर्ष 1998–99 में इसके लिए 10 करोड़ रूपये की राशि उपलब्ध करायी गयी।

## ग्रामीण बेरोजगारों के लिए कार्यक्रम :–

ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या के निवारण हेतु भारत सरकार ने उनके कार्यक्रम को लागू किया हैं। नियोजन के प्रारम्भ से सरकार ने अलग से इस समस्या पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया था, किन्तु चौथी योजना के समय से इस पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा।

**चौथी योजना** के प्रमुख कार्यक्रम थे, लघु विकास एजेंसी (S.F.D-A) सीमांत किसान एवं कृषि श्रमिक एजेन्सी (M.F.L.A.) सूखा प्रवृत क्षेत्र कार्यक्रम (D.A.A.P) तथा ग्रामीण रोजगार के लिए पुरजोर स्कीम। **पाँचवी योजना** में काम के बदले अनाज, कार्यक्रम व न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम चलाये गये। अत्योदय कार्यक्रम वर्ष 1977–78 में प्रारम्भ किया गया। **छठी योजना** के दौरान 1980 में सरकार ने ग्रामीण श्रम–शक्ति कार्यक्रम पुरजोर योजना तथा काम के बदले अनाज योजना के स्थान पर राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम शुरू किया। सन् 1978–79 में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (I.R.D.P) शुरू किया गया। **सातवी योजना** के अन्त में सरकार ने 1989 को N.R.E.P. तथा R.L.E. G.P. कार्यक्रम को मिलाकर जवाहर रोजगार योजना जो अधिक विस्तृत थी प्रारम्भ किया। 1996 में ग्रामीण क्षेत्रों में एक नया स्वरोजगार कार्यक्रम शुरू किया गया जिसके तहत आठवीं कक्षा तक पढ़े हुए बेरोजगार युवाओं को स्वरोजगार हेतु 50 प्रतिशत अधिकतम (7.500 रूपये) सब्सिडी का प्रावधान हैं। **आठवीं एवं नौवी पंचवर्षीय योजना** में रोजगार सृजन एक मुख्य उद्देश्य रहा हैं।

## स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना :–

ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या के निवारण की दिशा में 'स्वर्ण जयन्ती' ग्राम स्वरोजगार योजना' एक नवीनतम एवं अत्यन्त व्यापक कार्यक्रम हैं, जिसकी शुरूआत अप्रैल 1999 में की गयी।

## समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम :–

जिसकी शुरूआत 1978–79 में की गयी थी, मूलतः गरीबी उन्मूलन के उद्देश्य से सम्बन्धित था। इन सबके अतिरिक्त 1999 में जवाहर ग्राम समृद्धि योजना 1980 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम 1993 में रोजगार आश्वासन योजना जैसे कार्यक्रम

चलाये गये। वर्तमान समय में सरकार द्वारा जो सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम चलाया जा रहा हैं वो हैं–

### महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा, 2009) :–

यह अधिनियम मूल रूप से राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम के रूप में 7 सितम्बर 2005 को अधिसूचित किया गया था। 2 अक्टूबर 2009 से यह अधिनियम मनरेगा के रूप में प्रकार्यरत हैं, इस अधिनियम का लक्ष्य हर वित्तीय वर्ष में प्रत्येक परिवार के ऐसे व्यक्तियों को कम से कम 100 दिन का रोजगार मुहैंया कराना हैं जो, सूखा, वनों की कटाई तथा के कारण लगातार पैदा होने वाली गरीबी की समस्या के निवारण में मददगार सिद्ध हो तथा लगातार रोजगार का सृजन जारी रहे।

यद्यपि CAG की रिपोर्ट के अनुसार मनरेगा में सर्वाधिक भ्रष्टाचार व्याप्त हैं परन्तु फिर भी यह कार्यक्रम अत्यधिक गरीब व्यक्तियों को सहारा देने योग्य हैं।

## 8.6 सारांश

भारत में बेरोजगारी की समस्या बहुत बड़ी मात्रा में व्याप्त हैं विशेषकर छिपी हुई तथा मौसमी बेरोजगारी की संख्या सर्वाधिक हैं।

1 जनवरी 2010 तक प्राप्त जानकारी के अनुसार जहाँ बेरोजगारी की संख्या 9.8 करोड़ थी वही यह संख्या 1 जनवरी 2012 तक बढ़कर 10.8 करोड़ हो गयी। ग्रामीण क्षेत्रों में पुरूष तथा महिलाओं दोनों के लिए बेरोजगारी की दर लगभग समान 2 प्रतिशत हैं। जब कि नगरीय क्षेत्रों में बेरोजगारी की दर महिलाओं के लिए 5 प्रतिशत तथा पुरूषों हेतु 2 प्रतिशत हैं।

यद्यपि वर्तमान समय में बेरोजगारी की समस्या को दूर करने हेतु सरकारों द्वारा कई महत्वपूर्ण कार्यक्रम चलाये जा रहेंहैं, परन्तु लगातार तीव्र जनसंख्या वृद्धि, अज्ञानता भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं के कारण इनका विशेष लाभ नहीं हो रहा हैं अतः आवश्यक हैं कि इन सभी सरकारी कार्यक्रमों का क्रियान्वन सही तरीके से हो ताकि देश को इस समस्या से मुक्ति मिल सके।

## 8.7 संदर्भ ग्रन्थ


1. आहूजा, राम, सामाजिक समस्यायें 1999
2. स्टेनले, सेल्वेन, सोशल प्राब्लमस् इन इण्डिया 2004
3. त्रिपाठी, आर. एन. इण्डियन सोशल प्राब्लमस 2011

## 8.8 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

1. बेरोजगारी की सामाजिक प्रभावों की विवेचना कीजिए।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी नियंत्रण के सरकारी प्रयासों की विवेचना कीजिए।

### (ब) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. बेरोजगारी क्या हैं? स्पष्ट कीजिए।
2. बेरोजगारी के प्रमुख भेद स्पष्ट कीजिए।
3. बेरोजगारी के प्रमुख कारण बताइये।

### (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न :–

1. निम्नांकित में से कौन सा तत्व बेरोजगारी का हैं?

   (अ) इच्छा (ब) प्रयत्न

   (स) योग्यतानुसार पूर्ण कार्य का अभाव (द) उपरोक्त सभी।

2. मौसम के आधार पर व्याप्त बेरोजगारी को कहते हैं :

   (अ) मौसमी बेरोजगारी (ब) चक्रीय बेरोजगारी

   (स) छिपी बेरोजगारी (द) प्रौद्योगिक बेरोजगारी

3. 'स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार' योजना का प्रारम्भ कब किया गया ?

   (अ) 1997 (ब) 1996

   (स) 1995 (द) 1999

4. 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम' कब अधिसूचित किया गया ?

   (अ) 1 सितम्बर 2005 (ब) 3 जनवरी 2005

   (स) 1 अप्रैल 2005 (द) 1 जुलाई 2005

5. 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम' को 'महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम' के रूप में कब पारित किया गया?

   (अ) 1 सितम्बर 2009 (ब) 2 अक्टूबर 2009

   (स) 3 जुलाई 2010 (द) 5 नवम्बर 2011

## 8.9 प्रश्नोत्तर :

**(1) द, (2) अ, (3) द, (4) अ, (5) ब**

# इकाई–09

# श्रम (औद्योगिक)

इकाई की रूपरेखा :–


9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 औद्योगिक श्रम की विशेषताऐ

9.3 औद्योगिक श्रम का महत्व

9.4 भारतीय औद्योगिक श्रमिक का सामाजिक गठन

9.5 श्रम समस्यायें

9.6 भारतीय श्रमिकों की समस्यायें

9.7 श्रम समस्याओं के कारण

9.8 भारत में श्रम कल्याण

9.9 सारांश

9.10 संदर्भ ग्रन्थ

9.11 सम्बन्धित प्रश्न

(अ) दीर्घ उत्तरीय

(ब) लघु उत्तरीय

(स) वस्तुनिष्ठ

9.12 प्रश्नोत्तर


## 9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- भारत में औद्योगिक श्रम की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगें।
- औद्योगिक श्रम का महत्व के विषय में जान सकेंगें।
- भारतीय औद्योगिक श्रमिक का सामाजिक गठन से परिचित हो सकेंगें।
- श्रम समस्यायें, भारतीय श्रमिकों की समस्यायें एवं श्रम समस्याओं के कारण की समीक्षा कर सकेंगें।
- भारत में श्रम कल्याण के विषय में ज्ञात कर सकेंगें।

## 9.1 प्रस्तावना :–

अर्थशास्त्र में श्रम का अर्थ उस शारीरिक तथा मानसिक प्रयत्न से हैं जो आर्थिक उद्देश्यों में किया जाए। श्रम को परिभाषित करते हुए मार्शल ने 'Principle of Economic' में लिखा हैं कि ''श्रम से हमारा तात्पर्य मनुष्य के उस मानसिक तथा शारीरिक प्रयास से हैं जो अंशतः या पूर्णतया कार्य से प्रत्यक्ष प्राप्त होने वाले आनन्द के अतिरिक्त किसी लाभ की दृष्टि से किया जाए।''

इस परिभाषा के अन्तर्गत श्रम की दो महत्वपूर्ण विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं–

1. मानवीय श्रम से शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार के प्रयत्न सम्मिलित हैं। तथा
2. केवल वे प्रयत्न ही श्रम के अन्तर्गत आते हैं जिनके उद्देश्य आर्थिक हों।

इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो मजदूर, प्रबन्धक, वकील, डॉक्टर आदि सभी के प्रयत्न श्रम के अन्तर्गत आते हैं।

प्रस्तुत अध्याय औद्योगिक श्रम पर आधारित हैं जिसके अन्तर्गत उद्योगों से सम्बन्धित श्रम को सम्मिलित किया गया हैं। जिसमें शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के श्रम करने वाले शामिल हैं।

## 9.2 औद्योगिक श्रम की विशेषताऐ :–

श्रम उत्पादन का एक महत्वपूर्ण साधन हैं तथा यह अन्य साधनों की तुलना में भिन्न हैं। इसकी कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं–

1. श्रम उत्पादन का सक्रिय साधन हैं।
2. श्रमिक श्रम बेचता हैं, परन्तु स्वयं का मालिक होता हैं।
3. श्रम पूँजी से कम उत्पादक होता हैं। श्रम को अधिक उत्पादन हैंतु पूँजी का सहारा लेना पड़ता हैं।
4. श्रम को श्रमिक से पृथक नहीं किया जा सकता।
5. श्रम नाशवान हैं तथा इसका संचय नहीं किया जा सकता हैं।
6. श्रम की पूर्ति में तुरन्त कमी संभव नहीं हैं।
7. श्रम में सौदा करने की शक्ति अत्यन्त दुर्बल होती हैं। इसके निम्न कारण हैं–

(क) श्रम नश्वर होने के कारण श्रमिक इसका संचय न करके तुरन्त बेचता हैं।

**(ख)** श्रमिकों में व्याप्त निर्धनता तथा दरिद्रता

**(ग)** श्रमिकों की अज्ञानता, अशिक्षा तथा दुर्बलता

**(घ)** श्रम संगठनों का अभाव तथा इनकी शिथिलता

**(ङ)** बेरोजगारी

इन्हीं कारणों से श्रमिकों को कम मजदूरी देकर पूँजीपति इनका शोषण करते हैं।

**8.** श्रम में गतिशीलता का तत्व भी पाया जात हैं। इसका तात्पर्य यह हैं कि श्रम का एक स्थान से दूसरे स्थान हस्तान्तरण किया जा सकता हैं।

**9.** श्रम मानवीय साधन हैं, इस कारण यह केवल आर्थिक पहलुओं से नहीं अपितु सामाजिक, राजनीतिक तथा नैतिक पहलुओं से भी प्रभावित होता हैं।

**10.** श्रम उत्पादन का साधन ही नहीं साध्य भी हैं, यह न केवल उत्पादन के साधन के रूप में प्रयुक्त होता हैं अपितु यह अन्तिम उत्पादित वस्तुओं का उपयोग भी करता हैं।

**11.** श्रम की कार्यकुशलता में वृद्धि की जा सकती हैं।

## 9.3 औद्योगिक श्रम का महत्व :–

बढ़ते औद्योगिकरण के युग में श्रम के महत्व में वृद्धि हुई हैं, श्रम के महत्व के साधन के गेलब्रैथ Productivity Spring Number में लिखते हैं कि ''आज कल हमें अपने औद्योगिक विकास की अधिकांश अधिक पूँजी विनियोग से नहीं बल्कि मानवीय प्रसाधन से उन्नति करने से अस्तब्ध होता हैं, इस प्रसाधन से हमें विनियोग की अपेक्षा कहीं अधिक प्रतिफल मिलता हैं।''

श्रम का पहला आर्थिक महत्व अधिक उत्पादन की माँग कहा जाा सकता हैं, औद्योगिक विकास के लिए उत्पादन वृद्धि आवश्यक हैं तथा औद्योगिक उत्पादकता को प्रभावित करने वाले तत्वों में कार्यकुशल श्रम बहुत महत्वपूर्ण हैं। श्रम तीव्र औद्योगिकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं।

श्रम द्वारा प्रबन्धन में श्रमिकों की भागीदारिता बढ़ती हैं तथा औद्योगिकरण प्रजातन्त्र सम्बन्धित विचार पनपते हैं। तन्त्र द्वारा श्रमिकों में राजनीतिक रूचि में भी वृद्धि होती हैं।

## 9.4 भारतीय औद्योगिक श्रमिक का सामाजिक गठन :–

औद्योगिक श्रम केवल आर्थिक चिन्तन का विषय नहीं हैं, अपितु सामाजिक तत्वों द्वारा श्रम प्रभावित होता हैं साथ ही सामाजिक परिस्थितियों को प्रभावित भी करता हैं। इस आधार पर भारतीय श्रमिकों के सामाजिक गठन में विभिन्न विशेषताएँ देखने को मिलती हैं :–

**1.** भारतीय उद्योगों में कार्यरत अधिकांश श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रों से आते हैं इसका कारण यह हैं कि गाँव में कृषि पर जनसंख्या का भार बढ़ने के कारण जीवन निर्वहन कठिन हो गया हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि तथा उद्योग

वहा की जनता को पर्याप्त रोजगार दे पाने में समर्थ नहीं हैं। अतः ग्रामीण जनता ने गाँवों से नगरों की ओर प्रवासिता निरन्तर बढ़ रही हैं।

2. पिछड़ी जाति के श्रमिकों की अधिकता भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के सामाजिक गठन की एक महत्वपूर्ण विशेषता हैं। ''डॉ0 राधाकमल मुखर्जी ने अपने अध्ययन में पाया कि उत्तर प्रदेश में 60 प्रतिशत महिला श्रमिक तथा 20 प्रतिशत पुरूष श्रमिक परिगणित तथा पिछड़ी जातियों से थे तथा अधिकांश कोली थे।''

3. भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के सामाजिक गठन की अन्य महत्वपूर्ण विशेषता विभिन्न जातियों का मिश्रण हैं, अथवा कहा जा सकता हैं औद्योगिकरण की प्रक्रिया ने जातिगत प्रतिबन्धों को ढीला किया हैं।

4. विभिन्न जातियों के अतिरिक्त भारतीय श्रमिकों के सामाजिक गठन में विभिन्न धर्मों का मिश्रण भी देखने को मिलता हैं।

5. भारतीय उद्योगों में श्रमिक के रूप में विभिन्न लिंग के व्यक्तियों का कार्य करना भी औद्योगिक सामाजिक गठन की प्रमुख विशेषता हैं। यद्यपि महिला श्रमिकों की अपेक्षा पुरूष श्रमिकों की संख्या कम हैं।

6. भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के सामाजिक संगठन की प्रमुख विशेषता पारिवारिक पृथकता भी हैं औद्योगिक नगरों में आवास की कठिनाई, नगरों की असुविधाएं गाँवों में कुछ सम्पत्ति का होना, गाँव से लगाव जैसे– कारणों से श्रमिक अपना परिवार साथ–साथ नहीं रखते इससे अधिकांश श्रमिकों के पारिवारिक जीवन में अभाव में असंतोष तथा द्रव्यवसन स्थान बना लेती हैं।

## 9.5 श्रम समस्यायें :–

श्रम तथा श्रमिक परस्पर अन्तः सम्बन्धित होते हैं तथा उन्हेएक–दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता इस कारण श्रम समस्याओं के अन्तर्गत श्रम श्रमिकों की समस्याओं को सम्मिलित किया गया हैं। श्रम समस्यायें अधिकांशत वृहत उद्योगों में पायी जाती हैं। चाहैंअर्थव्यवस्था का स्वरूप कुछ भी हो। एडक्स और समर ने लिखा हैं कि श्रम समस्याओं का क्षेत्र अत्यन्त विशाल हैं इसके अन्तर्गत श्रम संघवाद तथा औद्योगिक शक्ति से सम्बन्धित समस्याओं को सम्मिलित किया जाता हैं'' श्रम समस्या इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यह एक मानवीय तत्व हैं जिसके कारण इससे सम्बन्धित अनेक समस्याओं का जन्म होता हैं। आधुनिक औद्योगिक जीवन में श्रम समस्यायें बढ़ती जा रही हैं।

## 9.5 श्रम समस्यायें :–

1. भारतीय श्रमिकों की सबसे महत्वूपर्ण समस्या प्रवासिता हैं। प्रवासिता का अर्थ हैं कि भारतीय श्रमिक जहाँ काम करते हैं वहां के मूल निवासी नहीं होते अपितु उनका एक स्थान से दूसरे स्थान पर आना जाना बना रहता हैं। विशेषकर फसल तथा उत्सव के समय इस कारण उन्हेअपना कार्य छोड़ना पड़ता हैं। प्रवासिता के कारण कार्यकुशलता में कमी, खराब स्वास्थ्य, मस्तिष्क पर अत्यधिक दबाव, दुश्प्रवृत्तियों में वृद्धि मजदूरी में कमी, कार्य की अनिश्चितता तथा औद्योगिक संगठनों पर दुश्प्रभाव जैसे दुष्परिणाम सामने आते हैं।

2. **श्रमिक भर्ती की दोषपूर्ण पद्धति :–** श्रमिक भर्ती की दोषपूर्ण पद्धति भारतीय श्रमिकों की महत्वपूर्ण विशेषता हैं। इस समस्या से सम्बद्ध कुछ अन्य समस्यायें भी होती हैं– जैसे–

   **(क)** भारतीय श्रमिकों की भर्ती मध्यस्थों द्वारा भी की जाती हैं जिसके कारण श्रमिक तथा मालिकों में तनाव उत्पन्न होता हैं। श्रमिकों की भर्ती में कुशलता तथा अकुशलता को कोई महत्व न दिया जाना तथा भर्ती में मजदूरों से कमीशन लिया जाना जैसी समस्यायें।

   **(ख)** स्थानान्तरण में मजदूरों के साथ भेदभाव किया जाता हैं, जिससे उनमें अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म तथा विकास होता हैं।

   **(ग)** भर्ती के अतिरिक्त श्रमिको की पदोन्नति में भेदभाव भी मजदूरों में असंतोष उत्पन्न करता हैं।

3. **श्रमिकों के हेर–फेर की समस्या :–** अक्सर उद्योगों में कर्मचारियों तथा श्रमिकों की कार्यों की प्रकृति में हेर–फेर किया जाता हैं। जिससे उन पर निम्नलिखित कुप्रभाव पड़ता हैं–

   **(क)** श्रमिकों के संगठन में कमी आती हैं।

   **(ख)** श्रमिकों की कार्य कुशलता में कमी आती हैं।

   **(ग)** अनिश्चितता की स्थिति के कारण श्रमिक अपने भविष्य के सम्बन्ध में किसी प्रकार की योजना का निर्माण नहीं कर पाते।

   **(घ)** इसके परिणाम स्वरूप मानवीय और भौतिक संसाधनों के उपयोग में कठिनाई उत्पन्न होती हैं।

   **(ङ)** श्रमिकों की सेवाओं में स्थायित्व की कमी बनी रहती हैं।

   **(च)** श्रमिकों में हेर–फेर की प्रवृत्ति भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन देती हैं।

   **(छ)** इसके कारण श्रम संगठनों को भी अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं।

4. **अनुपस्थितता :–** अनुपस्थितिता से तात्पर्य निर्धारित समय पर कार्य पर उपस्थित न होना हैं। भारतीय श्रमिकों में अनुपस्थितिता एक महत्वपूर्ण समस्या हैं। जिससे श्रमिकों को कई हानियाँ होती हैं।

(क) उन्हें आर्थिक हानि होती हैं।

(ख) श्रमिकों में अनुशासन हीनता की प्रवृत्ति बढ़ती हैं जिससे उनकी उन्नति में बाधा पहुँचती हैं।

(ग) श्रमिकों तथा मालिकों के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती हैं।

(घ) परिवार को भी आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता हैं।

5. **निम्न जीवन स्तर :–** श्रमिकों के निम्न जीवन स्तर के परिणाम स्वरूप उन्हेकई समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं।

(क) अशिक्षा तथा अज्ञानता में वृद्धि

(ख) कार्यकुशलता में कमी

(ग) स्वास्थ्य सुविधायें का अभाव

(घ) असंतुलित तथा अपर्याप्त भोजन

(ङ) स्वस्थ्य मनोरंजन का अभाव तथा जनसंख्या में वृद्धि

(च) गन्दी बस्तियों का विकास

6. **ऋण ग्रस्तता :–** भारतीय श्रमिकों को एक महत्वपूर्ण समस्या ऋण ग्रस्तता हैं जो मजदूरों की कार्य क्षमता में कमी तथा निम्न जीवन स्तर का प्रधान कारण हैं। ऋण ग्रस्तता से श्रमिकों के जीवन पर निम्न कुप्रभाव पड़ता हैं।

(1) श्रमिकों की कार्य कुशलता में कमी

(2) नैतिक चरित्र का पतन

(3) वर्ग–संघर्ष की भावना का जन्म

(4) आत्म–सम्मान की भावना का लोप

(5) जीवन स्तर में गिरावट

(6) श्रम का मोल भाव करने की शक्ति में कमी

7. **कार्य करने की निम्न दशा :–** भारतीय मजदूरों को अत्यधिक निम्न दशाओं में कार्य करना पड़ता हैं। सामान्य कार्यस्थलों पर धुएँ व धूप आदि से सुरक्षा का अभाव, कार्य के अधिक घण्टे स्वच्छ वायु तथा प्रकाश की कमी एवं कल्याण कार्यों की कमी जैसी दशाएँ पायी जाती हैं, जिसके कारण श्रमिकों की कार्य क्षमता में कमी आती हैं। तथा स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता हैं।

8. **कार्य करने के अधिक घण्टे :–** कार्य करने के अधिक घण्टे भारतीय श्रमिकों की बहुत बड़ी समस्या हैं जिसके कारण उन्हेनिम्नांकित समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं–

(1) सामाजिक जीवन के कार्यो की उपेक्षा

(2) कार्य क्षमता में कमी

(3) स्वास्थ्य में गिरावट

9. **स्वास्थ्य समस्यायें :–** कार्यस्थल के दोषपूर्ण वातावरण, हानिकारक पदार्थों के प्रयोग, आवास की कमी, तथा चिकित्सा सुविधाओं के अभाव के कारण भारतीय श्रमिकों को स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं; जिससे उनकी कार्य क्षमता में उत्तरोत्तर कमी आती हैं। जो उनकी निर्धनता ऋण ग्रस्तता आदि समस्यायें को बढ़ाती हैं। उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त श्रमिकों को कुछ अन्य समस्याओं का भी सामना करना पड़ता हैं। जैसै :–

(1) भारतीय श्रमिकों में प्रशिक्षण का अभाव

(2) वर्ग–संघर्ष की समस्या

(3) मजदूरों की निर्धनता की समस्या

(4) मजदूरों की छुट्टी एवं अवैतनिक अवकाश की समस्या

(5) पुरानी मशीनों का उपयोग

(6) आवास की समस्या

(7) शिक्षा का अभाव तथा मजदूरों की अज्ञानता

(8) रूढ़िवादिता

(9) मलिन बस्तियों का विकास

(10) नैतिक पतन

(11) वर्ग–संघर्ष

## 9.7 श्रम समस्याओं के कारण :–

भारत में श्रम समस्याओं को जन्म देने तथा विकसित करने के कई महत्वपूर्ण कारक हैं–

### (1) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था :–

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था समाज को दो वर्गों में विभाजित कर देती हैं, पूँजीपति तथा श्रमिक। पूँजीपति लाभ का अधिकांश हिस्सा स्वयं प्राप्त करना चाहते हैं। यह प्रवृत्ति शोषण को जन्म देती हैं। जिस कारण श्रमिकों को निम्न जीवन स्तर, ऋण ग्रस्तता, निर्धनता जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं। अत्यधिक शोषण वर्ग–संघर्ष को बढ़ाता हैं जिससे

औद्योगिक संगठनों तथा उत्पादन पर भी कुप्रभाव पड़ता हैं, जिसके अनेक प्रकार की समस्याओं का विकास तथा जन्म होता हैं।

### (2) सामाजिक कारक :–

औद्योगिक अर्थव्यवस्था के अत्यधिक विकास के कारण कुटीर उद्योग का ह्रास होता हैं, जिससे पूँजी का केन्द्रीकरण हो जाता हैं, यह प्रवृत्ति समाज में असन्तुलन को बढ़ाती हैं, तथा श्रमिकों में अनेक समस्याओं का जन्म होता हैं।

### (3) राजनीतिक व्यवस्था :–

देश की राजनीतिक व्यवस्था भी श्रमिकों को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जब सरकारें श्रमिकों के लिए कल्याणकारी योजनाऐं बनाने में रूचि नहीं दिखाते अथवा योजनाओं का क्रियान्वयन सही तरीके से नहीं होता तो कई प्रकार की श्रम समस्याएँ जन्म लेती हैं।

## 9.8 भारत में श्रम कल्याण कार्य :–

भारत में श्रम कल्याण कार्य पर द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् कार्य होने लगा। निर्मित वस्तुओं की माँग में वृद्धि, कीमतों में निरन्तर वृद्धि, औद्योगिक क्षेत्रों में आवास की समस्या, औद्योगिक अशांति आदि तत्वों ने सरकार, मालिकों श्रमिकों तथा अन्य सामाजिक कार्यकर्ताओं का ध्यान आकर्षित किया।

भारत में श्रम कल्याण सम्बन्धी कार्य विभिन्न संस्थाओं द्वारा किये जाते हैं–

(1) केन्द्र सरकार द्वारा

(2) राज्य सरकारें

(3) श्रमिक संघ

(4) समाज सेवी संस्थायें

### (1) केन्द्र सरकार द्वारा किये गये श्रम कल्याण कार्य :–

भारत में द्वितीय–विश्व युद्ध तक श्रम कल्याण क्षेत्र में भारत सरकार द्वारा बहुत कम कार्य किया गया। 1922 में अखिल भारतीय कल्याण सम्मेलन में कल्याण समस्याओं पर विचार किया गया एवं देश में कल्याण कार्यों के समन्वय पर जोर दिया गया अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के प्रस्ताव के कारण 1926 में कल्याण कार्यों के सम्बन्ध में आंकड़े एकत्रित करने हैंतु प्रान्तीय सरकारों को आदेश दिये गये। कोयला तथा अभ्रक खानों में श्रम कल्याण कोषों की स्थापना एवं प्रमुख उद्योगों में प्रोविडन्ट फन्ड आदि के शुरू करने से इस क्षेत्र में कल्याणकारी कार्यों का प्रोत्साहन शुरू किया। भारत सरकार ने विभिन्न क्षेत्रों श्रमिकों की कार्य दशाओं के

नियमन एवं कल्याणकारी सेवाएं प्रदान करने के लिए कई अधिनियम भी पारित किए जिसमें प्रमुख हैं–

**(क)** मोटर परिवहन कर्मचारी अधिनियम, 1961

**(ख)** कोयला खान श्रम कल्याण निधि

**(ग)** लोहा खान श्रम कल्याण अधिनियम, 1961

**(घ)** अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि

**(ङ)** बागान श्रमिक अधिनियम, 1951

**(च)** श्रम कल्याण केन्द्र

**(छ)** लाइम स्टोन एवं डोलो माईट माइंस लेवर वेलफेयर एण्ड फण्ड 1976।

## (2) राज्य सरकारों द्वारा किये गये श्रम कल्याण कार्य :–

केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा भी कल्याणकारी कार्य किये जा रहा हैं। महाराष्ट्र, गुजरात, तथा राजस्थान में श्रम कल्याण केन्द्र चलाये जा रहा हैं। बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं पश्चिमी बंगाल आदि राज्य सरकारों द्वारा भी श्रम कल्याण केन्द्रों की स्थापना की गयी हैं।

## (3) श्रम संघों द्वारा श्रम कल्याण कार्य :–

भारतीय श्रम संघो द्वारा भी श्रमिकों के कल्याण के लिए कार्य किये जाते हैं। श्रम संघों की स्थापना भी श्रमिकों के कल्याण के उद्देश्य से की गयी हैं। भारत में श्रमिकों के कल्याण हैंतु कुछ श्रमिक संघों की स्थापना की गयी हैं जो निम्नलिखित हैं–

**(क)** अहमदाबाद टैक्सटाइल्स श्रम संघ

**(ख)** रेल कर्मचारी संघ एवं

**(ग)** कानपुर मजदूर संघ

अहमदाबाद सूती वस्त्र संघ ने कल्याण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं, इस संघ द्वारा अपनी आय का 75 प्रतिशत भाग कल्याण कार्यों का व्यय किया जाता हैं। इसके अन्तर्गत 25 केन्द्र चलते हैं, जहाँ पर सांस्कृतिक कार्यक्रम, वाचनालय, पुस्तकालय, आंतरिक एवं नादन्य खेलकूद तथा चिकित्सा जैसी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं। संघ द्वारा श्रमिकों के बच्चों की उच्च शिक्षा हैंतु छात्रवृत्तियाँ भी दी जाती हैं, इसके अतिरिक्त अन्य संघ भी मनोरंजन, प्रशिक्षण, चिकित्सा सुविधा जैसे– कल्याणकारी कार्य करते हैं।

## (4) स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा कल्याण कार्य :–

श्रम कल्याण के क्षेत्र में बहुत से समाज सेवी संस्थाओं ने अपना महत्वूर्ण योगदान दिया हैं, इन संस्थाओं, इन संस्थाओं में समाज सेवा लीग, मुम्बई प्रेसीडेन्सी महिला मण्डल, सवरू सेवा सदन समिति आदि प्रमुख हैं जो श्रमिको तथा उनके परिवार हेतु रात्रिकालीन शिक्षण व्यवस्था, पुस्तकालय वाचलनालय, मनोरंजन, स्वास्थ्य सेवाओं जैसे– कल्याणकारी कार्य करते हैं।

## 9.9 सारांश :–

भारत में बढ़ते औद्योगिकरण ने औद्योगिक श्रम के साथ–साथ श्रम समस्याओं में भी वृद्धि की, शोषण तथा संघर्ष की प्रवृत्ति में भी वृद्धि हुई। साथ इन समस्याओं के समाधान हैंतु राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कई कल्याणकारी कार्यों की भी व्यवस्था भी की गयी परन्तु राजनीतिक इच्छा शक्ति के अभाव, भ्रष्टाचार तथा भारतीय सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त कुरीतियों के कारण सरकारी तथा गैर सरकारी श्रम कल्याण कार्य उतने कारगर सिद्ध नहीं हैं, जितना उन्हेहोना चाहिए। भारत में आवश्यक हैं, अशिक्षा, अज्ञानता, भ्रष्टचार जैसी समस्याओं को दूर कर श्रम कल्याण कार्यों को बढ़ावा देने की, तभी भारतीय श्रमिकों का कल्याण सम्भव हैं।

## 9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची


1. बघेल डी0एस0, औद्योगिक समाजशास्त्र, 2009
2. अग्निहोत्री, बी0, इन्इस्ट्रीयल रिलेशन्स इन इण्डिया, 1970


## 9.11 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. श्रम की अवधारणा स्पष्ट कीजिए । तथा इनकी विशेषताएँ बताइये।
2. भारतीय औद्योगिक श्रमिकों की प्रमुख समस्याएँ क्या हैं? स्पष्ट कीजिए।
3. भारत में श्रम कल्याण कार्यों की विवेचना कीजिए।
4. भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के सामाजिक गठन की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

### (ब) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. श्रम की विशेषताएँ बताइए।
2. औद्योगिक श्रम के महत्व पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. श्रम समस्याओं के प्रमुख कारणों की विवेचना कीजिए।
4. श्रम कल्याण कार्यों में श्रम संघों की भूमिका की विवेचना कीजिए।

## (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न :–

1. ''इन्डस्ट्रियल रिलेशन'' नामक पुस्तक किसने लिखि?

   (अ) रॉबिन्सन (ब) आर.एन. मुखर्जी

   (स) वी0वी0 गिरि (द) फ्रेजर

2. ''श्रम से हमारा तात्पर्य मनुष्य के उस मानसिक एवं शारीरिक प्रयास से हैं, जो अंशतः या पूर्णता कार्य से प्रत्यक्ष प्राप्त होने वाले आनन्द के अतिरिक्त किसी लाभ की दृष्टि से जाय'' यह परिभाषा किसने दी हैं?

   (अ) मार्शल (ब) रॉबिन्सन

   (स) थॉमस (द) लिन्टन

3. फैक्टरी अधिनियम कब पारित हुआ?

   (अ) 1931 (ब) 1948

   (स) 1945 (द) 1955

4. बागान श्रमिक अधिनियम कब पारित हुआ?

   (अ) 1991 (ब) 1956

   (स) 1951 (द) 1931

## 9.12 प्रश्नोत्तर :–

**1. (स) 2. (अ) 3. (ब) 4. (स)**

# इकाई–10

# श्रम (ग्रामीण)

**इकाई की रूपरेखा :–**


**10.0 उद्देश्य**

**10.1 प्रस्तावना**

**10.2 ग्रामीण श्रम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि**

**10.3 अकृषि श्रमिकों की समस्यायें**

**10.4 ग्रामीण निर्धनता दूर करने हैंतु कल्याण कार्यक्रम**

**10.5 सारांश**

**10.6 संदर्भ ग्रन्थ**

**10.7 सम्बन्धित प्रश्न**

(अ) दीर्घ उत्तरीय

(ब) लघु उत्तरीय

(स) वस्तुनिष्ठ

**10.8 प्रश्नोत्तर**


## 10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- ब्रिटिश काल में ग्रामीणों श्रमिकों की स्थिति को जान सकेंगें।
- स्वतंत्रता से पूर्व तथा स्वतंत्रता के पश्चात् गैर कृषि श्रमिकों की समस्याओं की विवेचना कर सकेंगें।
- स्वतंत्र भारत में ग्रामीण निर्धनों की स्थिति सुधारने हुए बनाये गये कल्याण कार्यक्रमों की विवेचना कर सकेंगे।

## 10.1 प्रस्तावना :–

भारत गाँवों का देश हैं। इस देश की 74.3 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती हैं। जो अधिकांशतः कृषि के माध्यम से अपनी जीविका चलाती हैं। भारत में संक्रिय श्रम शक्ति का 70 प्रतिशत हिस्सा कृषि में लगा हुआ हैं। जिससे देश के राष्ट्रीय आय का 50 प्रतिशत भाग उत्पन्न किया जाता हैं। कृषि के अतिरिक्त भारतीय ग्रामीण समुदाय के अन्तर्गत अन्य श्रमिक वर्ग भी सम्मिलित हैं।

जिनमें स्वयं खेती न करने वाले भू–स्वामियों के अतिरिक्त काश्तकार, भूमिहीन श्रमिक, कुटीर उद्योगों में लगे लोग आते हैं।

भारतीय ग्रामीण श्रम संरचना तथा तथा ही उनको समस्याओं में समय के साथ परिवर्तन होता रहा हैं प्रस्तुत इकाई में इन्हीं समस्याओं का अध्ययन करने का प्रयास किया जाता हैं।

## 10.2 ग्रामीण श्रम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :–

### (i) अंग्रेजी शासन के पूर्व :–

परम्परागत रूप से हिन्दू समाज जाति समूहो में स्तरीकृत था। ग्रामीण व्यवसाय भी जाति के समूहों से सम्बन्धित थे। जहाँ अधिकांशतः उच्च जातियों का भूमि पर अधिकार था। गाँव की आर्थिक तथा राजनीतिक शक्तियों उच्च जातियों में निहीत था। परम्परागत ग्रामीण व्यवस्था में यद्यपि एक जाति से दूसरी जाति में सामान्य दूरी पायी जाती थी। फिर भी यह आर्थिक तथा व्यावसायिक आधार पर एक दूसरे से सम्बन्धित थी। जिसे जजमानी प्रथा के रूप में जाना जाता हैं। जजमानी प्रथा में वशांनुगत तौर पर एक जाति का सदस्य दूसरी जाति को अपनी सेवाएं परम्परागत आधार पर प्रदान करता था। ये सेवा सम्बन्ध जजमान कमीन सम्बन्ध कहलाते थे। यह व्यवस्था सेवा करने वाली जातियों को सुरक्षा प्रदान करती थी। इस प्रकार का श्रम सम्बन्ध कम उत्पादक तथा स्वनिर्भर आर्थिक व्यवस्था का द्योतक हैं।

### (ii) अंग्रेजी शासन काल :–

भारत में अंग्रेजी शासन काल के दौरान इस परम्परागत सम्बन्ध में तीव्र परिवर्तन आया। ब्रिटिश शासनकाल में भारत का कृषक समाज अत्यधिक स्तरीकृत हो गया। औपनिवेशिक भूमि नीति लागू होने के फलस्वरूप भारत में विभिन्न कृषि वर्गों का उदय हुआ जिनमें भूस्वामी, पट्टेदार, बटाईदार तथा कृषि श्रमिक सम्मिलित थे। ब्रिटिश शासन द्वारा भारत में मुख्य रूप से तीन प्रकार की भूमि पट्टेदारी व्यवस्थाएँ प्रारम्भ की गयी जमीदारी, रैयतवारी तथा महालवारी।

ब्रिटिश सरकार द्वारा ये सारी व्यवस्थाएँ मात्र अपने हितों की पूर्ति के लिए की गयी। इस कारण कृषक समाज अत्यधिक स्तरीकृत हो गया। अंग्रेजों की नीतियों ने भूमि को कुछ हाथों में कार्य करना आरम्भ कर दिया। इस

प्रकार स्वतंत्रता से पूर्व कृषि क्षेत्र में निर्धन किसानों तथा भूमिहीन श्रमिकों की संख्या सर्वाधिक थी।

### (iii) स्वातन्त्रोत्तर काल :–

औपनिवेशिक शासनकाल ग्रामीण श्रमिकों की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई तथा निर्धनता भी तेजी से बढ़ी। इन समस्याओं को दूर करने हैंतु भारत सरकार द्वारा भूमि सुधार जैसे कार्यक्रम चलाये गये।

## भूमि सुधार :–

1. प्रथम पंचवर्षीय योजनाओं में सरकारी बन्जर पर पहली बार भूमि सुधार नीति ने मूर्त रूप धारण किया। बाद की पंचवर्षीय योजनाओं में भी ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक विकास के साथ–साथ सामाजिक न्याय दिलाने के लिए भूमि सुधारों का उपयोग प्रभावी साधन के रूप में किया गया। भूमि सुधार के मुख्य उद्देश्य रहे–

   **(i)** बिचौलियों का उन्मूलन करना

   **(ii)** काश्तकारी सुधार

   **(iii)** जोत की उच्चतम निर्धारित सीमा को लागू करना

   **(iv)** प्राप्त अतिरिक्त भूमि का ग्रामीण निर्धनों के बीच वितरण

   **(v)** पट्टेदारी सुधार

   **(vi)** कृषि उत्पादन में वृद्धि

भूमि सुधार अधिनियम का प्रभाव उतना सकारात्मक नहीं रहा जैसी योजना थी। इस कार्यक्रम के प्रभाव स्वरूप निर्धन कृषकों की दशा में सुधार हुआ, सामन्तवादी व्यवस्था का अन्त हुआ, रोजगार तथा उत्पादन में भी वृद्धि हुई परन्तु इस कार्यक्रम की कमियों द्वारा भू–स्वामियों का प्रभुत्व कम नहीं हुआ। अपितु उनका स्वरूप बढ़ता गया। काश्तकारी व्यवस्था में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। इस आधार पर **आन्द्रे बिताई** ने भूमि सुधारों का मूल्याकंन करते हुए बताया कि भारत में भूमि सुधार कृषि सामाजिक संरचना में व्याप्त मौलिक असमानताओं को समाप्त करने या कम करने में असफल रहा हैं।

2. भूमि सुधार कार्यक्रमों के अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा कृषि क्षेत्र में प्रगति के लिए कई प्रयास किये गये हैं। यहाँ पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण पुनर्निमाण को प्रधानता दी गयी हैं। कृषि क्षेत्र में यन्त्रीकरण भी हुआ हैं।

3. बदलती व्यवस्था के साथ ग्रामीण श्रम व्यवस्था में भी अन्तर आया हैं। परन्तु फिर भी कृषि मजदूरों तथा बन्धुआ मजदूरों की दशा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया वे आज भी ग्रामीण निर्धनों की श्रेणी में आते हैं। तथा शोषण के शिकार होते हैं।

## 10.3 ग्रामीण अकृषि श्रमिकों की समस्यायें :–

परम्परागत भारतीय समाज में जजमानी प्रथा के रूप में अकृषि श्रमिकों तथा काश्तकारों की पर्याप्त सामाजिक सुरक्षा प्राप्त थी ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादन कम था परन्तु आत्मनिर्भर आर्थिक व्यवस्था थी। अंग्रेजों के भारत में शासन प्रारम्भ करने के उपरान्त स्थितियाँ परिवर्तित हो गयी। वर्ग–अन्तराल बढ़ गया तथा भूमिहीन कृषि श्रमिकों तथा अकृषि श्रमिकों की संख्या में अतिशय वृद्धि हुई। यह काल इनके अत्यधिक शोषण का काल था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इन समस्याओं को दूर करने हैंतु विभिन्न प्रयास किये गये तथा भूमि सुधार एवं हरित क्रान्ति जैसी योजनाओं का क्रियान्वयन किया गया परन्तु यह कार्यक्रम अपने उद्देश्य में पूर्णतया सफल नहीं हुए तथा इन श्रमिकों की समस्या आज भी यथावत बनी हुई हैं इन ग्रामीण श्रमिकों की प्रमुख समस्यायें निम्नांकित हैं–

### (1) बन्धुआ मजदूरी :–

बन्धुआ मजदूरी देश में दासता तथा शोषण का मूर्त रूप हैं। अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु निर्धन व्यक्ति सेठ–साहूकारों से इस शर्त पर ऋण लेते हैं कि जब तक वे उनका ऋण नहीं चुका देगें तब तक उनके परिवार का कार्य करते रहेगे तथा सेठ–साहूकार उनकी निरक्षरता तथा अज्ञानता का लाभ उठाकर जीवन पर्यन्त उन्हैं बधुआ मजदूर बनाकर उनका शोषण करते रहते हैं। यद्यपि सरकारी प्रयासों द्वारा इस व्यवस्था में कमी आई हैं। परन्तु अभी तक यह सामाजिक बुराई पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं।

### (2) रोजगार की समस्या :–

खेतिहार मजदूरों की एक समस्या यह हैं कि उन्हैं नियमित रूप से रोजगार नहीं मिल पाता और बेकारी एवं अल्प–रोजगार की स्थिति में रहना पड़ता हैं। इनका सारा जीवन बेकारी, गरीबी, शोषण, उत्पीड़न और अनिश्चितता से भरा हुआ हैं। कुछ स्थानों पर तो खेतिहर मजदूरों की दशा गुलामों जैसी हैं तथा भू–स्वामी इनसे बेगार लेते और बहुत ही कम मजदूरी देते हैं। ये अपने मालिक की नौकरी छोड़कर दूसरे मालिक की नौकरी करने के लिए स्वतंत्र नहीं होते हैं। रोजगार की दृष्टि से अस्थायी श्रमिकों की दशा तो और भी खराब हैं इन्हें वर्ष में 3 से 6 महीने बेकारी

की स्थिति में व्यतीत करने पड़ते हैं। फलस्वरूप इनमें बेरोजगारी और बढ़ जाती हैं। कृषि में मशीनीकरण से भी बेकारी में वृद्धि हुई हैं।

### (3) अल्प आय :–

खेतिहार मजदूरों को वर्ष के एक बहुत बड़े भाग में बेकार रहना पड़ता हैं और यहाँ तक की काम के दिनों में इन्हे मजदूरी भी बहुत कम मिलती हैं। इन्हे कुछ मजदूरी नगदी में व कुछ वस्तुओं के रूप में मिलती हैं यद्यपि इस संदर्भ में वर्तमान समय में सरकार ने इसके लिए न्यूनतम मजदूरी तय की हैं। फिर भी इसका पालन बहुत कम लोग ही कर रहेंहैं। देश में खेतिहर मजदूरों की औसत आय भी बहुत कम हैं।

### (4) कार्य की दशाएँ :–

कम मजदूरी के अतिरिक्त खेतिहर मजदूरों को बहुत कठिन परिस्थितियों जैसी कड़ी धूप या भारी वर्षा में कठोर परिश्रम करना होता हैं। इनके काम के घण्टे अनिश्चित और नियमित होते हैं तथा इन्हे छुट्टी व अन्य सुविधाएँ उपलब्ध नहीं होती। इनका प्रतिकूल प्रभाव इनके स्वास्थ्य, कार्यक्षमता और जीवन पर पड़ता हैं।

### (5) निम्न जीवन स्तर :–

इन लोगों का जीवन स्तर काफी निम्न हैं। कम आय के कारण ये लोग उपभोग पर बहुत कम खर्च कर पाते हैं और अपनी अनिवार्य आवश्यकताएँ भी सरलता से नहीं पूरी कर पाते हैं। ये अपनी आय का लगभग 77 प्रतिशत भाग खाद्य पदार्थों पर, 6 प्रतिशत वस्त्रों पर, 8 प्रतिशत ईंधन व रोशनी पर तथा 9 प्रतिशत सेवाओं व अन्य मदों पर खर्च करते हैं। सामान्यतः ये लोग मोटा अनाज, जैसे– ज्वार, बाजरा, एवं मक्का खाते हैं। पौष्टिक पदार्थ जैसे– मांस, मछली, दूध, फल, सब्जी आदि का प्रयोग तो ये नहीं के बराबर ही करते हैं। तन ढकने को पर्याय वस्त्र एवं रहने की पर्याप्त मकान भी इन्हे उपलब्ध नहीं होते। चिकित्सा व अन्य सुविधाओं का तो अत्यन्त अभाव हैं ही।

### (6) ऋणग्रस्तता :–

कम आय के कारण अधिकांश खेतिहर मजदूर ऋणग्रस्त होते हैं, यहाँ तक की अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी इन्हे ऋण लेना होता हैं। वह ऋण में ही मरते हैं। असम के चाय बगानों के मजदूरों के बारे में प्रो0 गाडगिल ने लिखा हैं, ''उनकी स्थिति गुलामों से बेहतर नहीं थी।''

### (7) दयनीय सामाजिक स्थिति :–

देश के अधिकांश खेतिहर मजदूर उपेक्षित व दलित जातियों के सदस्य हैं। जिनकी सामाजिक स्थिति बहुत नीची होती हैं। और विभिन्न प्रकार से

इनका शोषण होता था तथा इन्हे कई अधिकारों से वंचित कर दिया जाता हैं।

### (8) सहायक धन्धों का अभाव :–

गाँवों में सहायक धन्धों का अभाव हैं। यदि किसी प्रकार गाँवों में बाढ़, अकाल, सूखा आदि के कारण से फसल नहीं होती तो कृषि श्रमिकों को कोई अन्य जीवन निर्वाह का साधन नहीं मिल पाता हैं। जिसके परिणाम स्वरूप वे ग्रस्तता में और डूब जाते हैं।

### (9) संगठन का अभाव :–

कृषि श्रमिकों की एक समस्या उनमें किसी भी प्रकार के संगठन का अभाव हैं। वे अशिक्षित अज्ञानी एवं अनभिज्ञ हैं, साथ ही देश के दूर–दूर भागों में फैले हुए हैं। संगठन के अभाव में उनमें मोल भाव करने की क्षमता नहीं हैं, अतः वे अपनी मजदूरी बढ़वाने, कार्य के घण्टे, नियमित कराने, बेगार बन्द कराने आदि की आवाज तक नहीं उठा पातें।

### (10) हरित क्रान्ति :–

हरित क्रान्ति के अन्तर्गत कृषि में उत्पादन के परम्परागत साधनों एवं यन्त्रों के स्थान पर नवीन साधनों जैसे– ट्रैक्टर, हल आदि का प्रयोग किया जाता हैं, नवीन खादों, बीजों एवं कीटानाशक हवाओं का प्रयोग किया जाता हैं। इससे उत्पादन में वृद्धि होती हैं। हरित क्रान्ति का लाभ गावों के बड़े भूस्वामियों एवं किसानों को हुआ हैं। छोटे किसान एवं खेतिहर मजदूरों को इससे कोई लाभ नहीं मिलता हैं। हरित क्रान्ति ने गाँवों की आर्थिक असमानता को और बढ़ावा दिया हैं। इससे भी कृषक असंतोष बढ़ा हैं।

## 10.4 ग्रामीण निर्धनता दूर करने हैंतु कल्याण कार्यक्रम :–

भारत सरकार ने निर्धनता को समाप्त करने के लिए विशेष प्रयत्न किए हैं जिनमें से प्रमुख निम्नांलिखित हैं–

### (1) पंचवर्षीय योजनाएँ :–

देश में अब तक 11 पंचवर्षीय योजनाएं पूरी हो चुकी हैं। इन योजनाओं में मुद्रा–स्फीति को रोकने, खाद्य सामग्री के अभाव को दूर करने, जीवन स्तर को उन्नत करने, कृषि में सुधार करने, औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने, कुटीर एवं लघु उद्योगों को प्रोत्साहन देने एवं रोजगार के अवसर बढ़ाने से सम्बन्धित अनेक प्रयास किए गए हैं।

## (2) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम :–

गरीबी समाप्त करने के लिए सरकार ने काम के बदले अनाज योजना हाथ में ली। लेकिन अक्टूबर 1980 से काम के बदले अनाज योजना का स्थान राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम ने ले लिया हैं। बाद में इस योजना को जवाहर रोजगार योजना में सम्मिलित कर दिया गया। अब जवाहर रोजगार योजना के स्थान पर 1 अप्रैल 1999 से जवाहर ग्राम समृद्धि योजना चल रही हैं।

## (3) अन्त्योदय योजना :–

इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक गाँव में से पाँच निर्धनम परिवारों का चयन कर उन्हैं आत्मनिर्भर बनने एवं व्यवसाय करने के लिए ऋण, आदि की सहायता दी जाती हैं। इन योजना का प्रारम्भ 2 अक्टूबर, 1978 में राजस्थान, सरकार द्वारा किया गया। इसे उ0प्र0, बिहार, हिमाचल प्रदेश एवं अन्य राज्यों ने भी अपनाया।

## (4) कृषि का विकास :–

निर्धनता को दूर करने के लिए सरकार ने कृषि के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी हैं। इस संदर्भ में परती भूमि को जोतने व बंजर भूमि को उपजाऊ बनाने के प्रयास किए गए हैं। किसानों को उन्नत किस्म के बीज, खाद एवं कृषि यंत्र उपब्ध कराए गए हैं जिससे कि उत्पादन में वृद्धि हों।

## (5) परिवार नियोजन :–

परिवार नियोजन के विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा बढ़ती जनसंख्या पर रोग लगायी हैं ।

## (6) ग्रामीण विकास :–

ग्रामों के विकास के लिए यहा सामुदायिक विकास योजनाएं प्रारम्भ की गयी। जिनके अन्तर्गत भूमि–सुधार, सिंचाई की सुविधा, पशुपालन, मुर्गीपालन, रेगिस्तान का विकास, स्वास्थ्य शिक्षा, पीने का पानी, बिजली, सड़कों एवं आवास की सुविधा का प्रबन्ध किया गया हैं। देश में गरीबी रेखा के स्तर से नीचे के करीब 19 प्रतिशत लोगों में से अधिकांशतः लोग ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। अतः ग्रामीण क्षेत्रों का विकास गरीबी समाप्ति के लिए आवश्यक हैं। गाँवों में गरीबी और बेकारी को समाप्त करने के लिए एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) 1999 तक चला। छठी पंचवर्षीय योजना काल में इस पर 4,762.78 करोड़ रूपया खर्च किया गया। जिसमें 165.62 लाख परिवारों को लाभ पहुंचाया। सातवी पंचवर्षीय योजना में 8,688.35 करोड़ रूपया व्यय कर 181.77 लाख परिवारों को लाभ पहुंचाया गया। 1980 में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के प्रारम्भ से दिसम्बर 1993 तक कुल 15,699.2 करोड़ रूपया व्यय करके 468 लाख परिवारों की सहायता की गयी। 1996–97 में 1,131.53 करोड़ रूपये खर्च कर 18.96 लाख परिवारों को इस योजना के तहत लाभ पहुंचाया गया।

वर्तमान में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (I.R.D.P.) के स्थान पर स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना तथा जवाहर ग्राम समृद्धि योजना

चल रही हैं। गाँव में रहने वाले गरीबों के लिए स्वरोजगार का यह एक अकेला कार्यक्रम हैं जो 1 अप्रैल 1999 से शुरू हुआ। इस योजनाओं में पहले के स्वरोजगार तथा सम्बद्ध कार्यक्रमों यथा समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, स्वरोजार ग्रामीण क्षेत्र महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम, ग्रामीण दस्तकारों को उन्नत औजारों की किट की आपूर्ति का कार्यक्रम, गंगा कल्याण योजना तथा दस लाख कुआँ योजना को सम्मिलित कर दिया गया हैं और अब ये कार्यक्रम अलग से नहीं चल रहे।

## (7) बड़े उद्योगों का विकास :–

निर्धनता को समाप्त करने के लिए सरकार ने बड़े–बड़े उद्योगों की स्थापना की हैं। उनमें से प्रमुख हैं– सिन्दरी का खाद का कारखाना, राउरकेला, दुर्गापुर, बोकारों व भिलाई के इस्पात के कारखानें, चितरंजन में रेल इंजन व बनारस में डीलज इंजन बनाने व विशाखापट्टनम में जहाज बनाने, बंगलौर में एच0एम0 टी0 की घड़ियाँ व अन्य मशीने तथा औजार बनाने का कारखाना आदि।

## (8) कुटीर उद्योगों का विकास :–

निर्धनता समाप्त करने के लिए जहाँ सरकार ने एक तरफ बड़े–बड़े उद्योगों की स्थापना की हैं, वही दूसरी ओर कुटीर एवं ग्राम उद्योगों को भी प्रोत्साहन दिया हैं। इन उद्योगों से लाखों लोगों को रोजगार प्राप्त होता हैं।

## (9) बीस–सूत्रीय कार्यक्रम :–

श्रीमती गांधी ने निर्धनता का उन्मूलन करने के लिए 20 सूत्री कार्यक्रम का घोषणा की। इसके अन्तर्गत समग्र ग्रामीण विकास एवं राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम को मजबूत बनाना तथा विस्तार करना, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के विकास से सम्बन्धित कार्यक्रम में तेजी लाना, झुग्गी झोपड़ी बस्तियों के वातावरण में सुधार करना, कमजोर वर्ग के लिए आवास की व्यवस्था करना, बन्धुआ मजदूरी एवं बेगार की प्रथा को समाप्त करना, ग्रामीण ऋणग्रस्तता को समाप्त करना, कृषि मजदूरी की न्यनूतम सीमातय करना, सिंचाई की व्यवस्था करना, विद्युत उत्पादन को बढ़ाना, हथकरघों के उद्योगों का विकास करना, शिक्षित लोगों को प्रशिक्षण एवं रोजगार प्रदान करना, आर्थिक अपराधियों को कठोर दण्ड देना, आदि प्रमुख कार्यक्रम हैं।

## (10) शक्ति योजनाएँ :–

बिजली पैदा करने के लिए सरकार ने विभिन्न शक्ति योजनाएँ जैसे– नगंल बोकारों, मोपार, खापड़ खेड़ा, चम्बल योजना, दामोदर घाटी योजना,

मंचकुण्ड एवं पथरी, आदि योजनाएं निर्मित की हैं, ये सभी देश के आर्थिक विकास की मुख्य कड़ियाँ हैं।

### (11) पोषाहार कार्यक्रम :–

गरीब एवं पिछड़े वर्ग के लोग साधारणतः कुपोषण से ग्रस्त हैं। अतः उनमें कार्यक्षमता का अभाव पाया जाता हैं। इसे दूर करने के लिए सरकार ने पोषाहार कार्यक्रम प्रारम्भ किया हैं। इसके अन्तर्गत बच्चों एवं गर्भवती महिलाओं व स्तनपान कराने वाली माताओं को विटामिन एवं प्रोटीन युक्त भोजन दिया जाता हैं।

### (12) शिक्षा का विस्तार :–

निर्धनता को समाप्त करने हेतु साधारणतया तकनीकी शिक्षा की सुविधाओं को बढ़ाने का पिछले कुछ वर्षों में काफी प्रयत्न किया गया हैं। प्रतिवर्ष बजट में शिक्षा पर खर्च की राशि 7,443 करोड़ रूपये थी। वहाँ नौवी योजना से यह राशि बढ़कर 20,381.64 करोड़ रूपये कर दी गई। 2013–14 के बजट में शिक्षा हेतु 65,867 करोड आवंटित किये गये।

इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त सरकार ने भूमिहीन लोगों में आवासीय भूखण्ड एवं कृषि योग्य भूमि का वितरण किया हैं। नगरों में गन्दी बस्तियों की समस्याओं का समाधान करने व मकान बनाने की योजना बनायी हैं। बन्धुआ मजदूरी प्रथा समाप्त करने के लिए 1976 अधिनियम बनाया गया तथा लोगों को शिक्षा, शुद्ध पेयजल, आदि उपलब्ध कराने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में विशेष धनराशि रखी गयी। एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम, ग्रामीण युवा वर्ग को स्वरोजगार में प्रशिक्षण देने का कार्यक्रम, शिक्षित बेरोजगार युवकों के लिए, स्वरोजगार प्रदान करने का कार्यक्रम, राज्य सरकारों द्वारा चलाये गये विशेष रोजगार कार्यक्रम, आदि के द्वारा भी निर्धनता को समाप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा हैं।

## 10.5 सारांश :–

इस इकाई के अन्तर्गत श्रमिकों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि उनकी समस्याओं तथा निर्धनता दूर करने के लिए सरकारी प्रयासों की विवेचना करने का प्रयास किया गया हैं।

ग्रामीण समाज भारत का अभिन्न अंग हैं। भारतीय आबादी का लगभग 70 प्रतिशत भाग गाँवों में निवास करता हैं। ग्रामीण श्रम व्यवस्था देश की अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण भाग हैं। परन्तु विभिन्न सरकारी प्रयासों के उपरान्त भी ग्रामीण श्रमिकों को निर्धनता, ऋणग्रस्तता जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं।

## 10.6 संदर्भ ग्रन्थ :–


1. देसाई, ए0आर0, रूरल सोशियोलॉजी इन इण्डिया, 1978
2. थॉरनर, डी एवं थॉरनर, ए0, लैण्ड एण्ड लेनर इन इण्डिया, 1962

## 10.7 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. भूमि सुधार कार्यक्रमों का मूल्यांकन कीजिए।
2. ग्रामीण निर्धनता दूर करने हैंतु कल्याण कार्यक्रमों की विवेचना कीजिए।

### (ब) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. ब्रिटिश शासन काल में ग्रामीण श्रम की व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।
2. ग्रामीण श्रमिकों की प्रमुख समस्याओं की विवेचना कीजिए।
3. ग्रामीण निर्धनता को दूर करने हैंतु सरकार द्वारा कौन–कौन से कल्याण कार्यक्रम चलाए गये हैं, किन्ही दो का वर्णन कीजिए।

### (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न :–

1. भूमि सुधार कार्यक्रम लागू किया गया–

   (अ) प्रथम पंचवर्षीय योजना में, (ब) पंचम पंचवर्षीय योजना में,

   (स) द्वितीय पंचवर्षीय योजना में, (द) नवी पंचवर्षीय योजना में

2. भूमि सुधार कार्यक्रम के प्रमुख उद्देश्य थे–

   (अ) काश्तकारी सुधार (ब) बिचौलियों का उन्मूलन

   (स) चकबन्दी (द) उपरोक्त सभी

3. अन्त्योदय योजना का प्रारम्भ कब हुआ–

   (अ) 1978 (ब) 1980

   (स) 1949 (द) 1999

## 10.8 प्रश्नोत्तर

(1) अ, (2) द, (3) अ,

# इकाई–11

# श्रम : महिला श्रमिक

**इकाई की रूपरेखा :–**


**11.0 उद्देश्य**

**11.1 प्रस्तावना**

**11.2 महिला श्रम की प्रकृति तथा आकार**

**11.3 विभिन्न क्षेत्रों में महिला श्रम**

**11.4 महिला श्रमिकों की समस्यायें**

**11.5 महिलाओं हेतु बनाये गये श्रम कानून**

**11.6 सारांश**

**11.7 सम्बन्धित प्रश्न–**

**(अ) दीर्घ उत्तरीय**

**(ब) लघु उत्तरीय**

**(स) वस्तुनिष्ठ**

**11.8 प्रश्नोत्तर**


## 11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात :

- भारत में महिला श्रम की प्रकृति के विषय में जान सकेगें।
- विभिन्न क्षेत्रों में महिला श्रमिकों की स्थिति का अध्ययन कर सकेंगे।
- महिला श्रमिकों की समस्याओं की व्याख्या कर सकेंगे।
- महिला श्रमिकों के लिए निर्मित श्रम कानूनों की विवेचना कर सकेंगे।

## 11.1 प्रस्तावना :–

आर्थिक क्रियाओं में महिलाओं की भागीदारी कोई नई बात नहीं हैं। सांस्कृतिक विकास के प्रत्येक स्तर पर तथा प्रत्येक प्रकार की अर्थव्यवस्था में स्त्रियों की किसी न किसी रूप में अंशदान अवश्य रहा हैं। पूर्व में महिलाओं का कार्य कृषि, कुटीर उद्योग पशुपालन आदि तक सीमित था परन्तु औद्योगीकरण, नारी शिक्षा व बड़े पैमाने के उत्पादन के प्रारम्भ होने से अधिक से अधिक महिलाओं ने लाभप्रद रोजगार क्षेत्र में प्रवेश किया हैं परन्तु अभी भी कार्यशील क्षेत्रों में उनकी

संख्या कम हैं श्री बी0वी0 गिरि ने लिखा हैं कि ''यदि उद्योगों में काम करने वाली स्त्रियों की संख्या कम हैं तो इसका कारण यह नहीं हैं कि भारत की स्त्रियाँ उद्योगों में काम करना नहीं चाहती, बल्कि केवल इस कारण कि देश ने देश के औद्योगिकरण में अभी पर्याप्त प्रगति नहीं हो पायी हैं, और अब भी लाखों पुरूषों को रोजगार देना बाकी हैं। स्त्रियों में भी श्रम–शक्ति का विशाल भण्डार हैं, और उनमें भी कार्य करने की इच्छा और आग्रह दोनों ही विद्यमान हैं और जब तेजी से औद्योगिकरण आयेगा तो उनकी सेवाओं का भी उचित प्रयोग किया जा सकेगा।

## 11.2 महिला श्रम की प्रकृति तथा आकार :–

भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं तथा महिलाएँ ग्रामीण तथ नगरीय दोनों क्षेत्रों में विभिन्न आर्थिक कार्यों में लिप्त हैं, परन्तु महिला श्रम से सम्बन्धित आंकड़ों का सही आकलन कठिन हैं क्योंकि भारतीय सर्वेक्षण में श्रम की परिभाषा बहुत संकुचित हैं। जिस कारण महिलाओं द्वारा किए गये घरेलू कार्य श्रम के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं होते। प्रत्येक सर्वेक्षण में श्रमिकों की परिभाषा परिवर्तित होने के कारण तथा श्रमिकों की आयु, लिंग तथा शैक्षणिक योग्यता की मिथ्या परिभाषाओं के कारण भी आँकड़ों का यही आंकलन सम्भव नहीं हैं। फिर भी यदि उपरोक्त पक्षों को आधार न माना जाए तो महिलायें विभिन्न श्रम कार्यों में संलिप्त हैं।

यदि महिला श्रम की स्थिति पर प्रकाश डाला जाए तो अधिकांश महिला श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रों में तथा कृषि कार्यों में कार्यरत हैं। ग्रामीण महिला श्रमिकों में 87 प्रतिशत कृषि मजदूरों के रूप में कार्यरत हैं। नगरीय क्षेत्रों में 80 प्रतिशत महिला श्रमिक असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत हैं। महिला श्रमिकों की सबसे कम संख्या विद्युत, गैस तथा जल सम्बन्धित क्षेत्रों में हैं। सर्वेक्षण रिपोर्ट 2011 के अनुसार भारत में कल 25.5 प्रतिशत महिला श्रमिक हैं जिसमें 24ण्9 प्रतिशत कृषि में, 18.5 प्रतिशत कृषि मजदूर के रूप में, 2.9 प्रतिशत House hold industry में तथा 47.2 प्रतिशत अन्य कार्यों में संलिप्त हैं।

सामान्यतः महिलाओं का एक बड़ा समूह घरेलू कार्यों से जुड़ा हुआ हैं, जिसे अनार्थिक होने के कारण श्रम के अन्तर्गत नहीं रखा जाता। कार्य के आधार पर महिला श्रमिको को तीन प्रमुख भागों में बांटा जा सकता हैं–

### स्व–रोजगार प्राप्त महिलायें :–

जिनमें घर तथा बाहर दोनों से जुड़े रोजगार सम्मिलित हैं। नेशनल सैम्पल सर्वे आर्गनाइजेशन (NSSO) के रोजगार तथा बेरोजगारी अध्ययन के अनुसार श्रम बाजार में महिलाओं का झुकाव पुरूषों की अपेक्षा कम होता हैं। महिला श्रम की प्रमुख श्रेणियों में घरेलू महिला श्रमिकों की संख्या अधिक हैं, इसमें मुख्य रूप से बीड़ी बनाना, मसाले तैयार करना, वस्त्र बनाना, अगरबत्ती बनाना, पशुपालन खिलौने बनाना, कढ़ाई बुनाई आदि कार्य सम्मिलित हैं।

### दिहाड़ी मजदूर :–

इसमें कृषि श्रम, निर्माण उद्योगों में श्रम, फैक्ट्री श्रमिक आदि सम्मिलित हैं। सामान्यतः दिहाड़ी मजदूरों के रूप में महिलाओं को वेतन पुरूषों की अपेक्षा कम होता हैं तथा उन्हे दैनिक मजदूरी कम मिलती है तथा तीसरे प्रकार की महिला श्रमिक अवैतनिक घरेलू महिलायें हैं जो परिवार में 8 से 10 घण्टे का समय देती हैं परन्तु उन्हें श्रम के आंकड़ों में सम्मिलित नहीं किया जाता हैं।

## 11.3 विभिन्न क्षेत्रों में महिला श्रम :–

लगभग 90 प्रतिशत महिलाएं प्राथमिक क्षेत्रों में कार्यरत हैं जिनमें 87 प्रतिशत कृषि में तथा 1.8 प्रतिशत पशुपालन, मत्स्य पालन आदि में संलिप्त हैं। भारतीय महिला श्रमिकों की कार्य सहभागिता असंगठित तथा संगठित दोनों क्षेत्रों में हैं परन्तु संगठित क्षेत्रों में इनकी सहभागिता अपेक्षाकृत बहुत हैं। इस आधार पर महिलाओं के श्रम में भागीदारी को विभिन्न क्षेत्रों में बांटा जा सकता हैं।

### असंगठित क्षेत्रों में :–

भारत में लगभग 87 प्रतिशत महिला श्रमिक असंगठित क्षेंत्रों में कार्यरत हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 87 प्रतिशत महिला श्रमिक कृषि मजदूरों के रूप में कार्यरत हैं। नगरीय क्षेत्रों में महिला श्रमिकों की अधिकांश संख्या पान, बीड़ी, फल, सब्जियाँ, लकड़ी के समान बेचने का कार्य करती हैं। घरेलू नौकरानियों के रूप में कार्य करने वाली महिलाओं की संख्या भी बहुत अधिक हैं। असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं को मुख्य रूप से वेतन की कमी, नौकरी की अनिश्चितता, कार्य के अधिक घण्टे जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं।

### संगठित क्षेत्रों में :–

सरकारी तथा निजी दोनों संगठित क्षेत्रों में मिलाकर महिलाओं की संख्या मात्र 13 प्रतिशत हैं जो पुरूषों की अपेक्षा बहुत कम हैं। इस आधार पर स्पष्ट होता हैं कि महिला श्रमिक अधिकांशतः कम उत्पादकता तथा कम वैतनिक व्यवसायों में संलिप्त हैं। अनुमान हैं कि लगभग 89 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएं तथा 69.4 प्रतिशत नगरीय क्षेत्र की महिलाएं Unskilled श्रमिक हैं।

## 11.4 महिला श्रमिकों की समस्यायें :–

यद्यपि संगठित तथा असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं की समस्यायें भिन्न–भिन्न हैं किन्तु कुछ समस्याओं का सामना सभी महिला श्रमिकों को करना पड़ता हैं।

### (1) मजदूरी की समस्या :–

महिला श्रमिकों की सबसे महत्वपूर्ण समस्या यह हैं कि उन्हें पुरूष श्रमिकों की अपेक्षा बहुत कम मजदूरी दी जाती हैं। भारतीय संविधान की धारा 39 के अनुसार समान मूल्य के कार्यों के लिए स्त्रियों तथा पुरूषों को समान मजदूरी दी जानी चाहिए। परन्तु व्यवहार में पुरूषों की अपेक्षा कम वेतन मिलता हैं। प्रायः महिलाओं की उत्पादकता कम होती हैं तथा उन्हें मातृत्व व अन्य लाभ देने पड़ते हैं इसलिए उद्योगपति महिलाओं को कम मजदूरी देते हैं। साथ ही उद्योगपति अपनी स्वार्थ्य हेतु महिलाओं की अज्ञानता का

लाभ उठाकर कम से कम मजदूरी पर उन्हें अधिक से अधिक कार्य कराते हैं।

### (2) पुरूषों की भाँति कठोर कार्य :–

महिलाओं तथा पुरूषों की शारीरिक क्षमता तथा संरचना में बहुत भिन्नता होती हैं परन्तु फिर भी उद्योगों में उन्हे पुरूषों के समान अधिक कठोर कार्यों में लगाया जाता हैं जिसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर पड़ता हैं।

### (3) पारिवारिक उत्तरदायित्व :–

भारतीय परम्परागत दृष्टिकोण के अनुसार पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन मात्र स्त्रियों का कार्य हैं। यह विचार समाज में अभी भी पूर्व की भाँति ही दृढ़ता से जीवित हैं। इस कारण महिला श्रमिकों को परिवार तथा कार्यस्थल दोनों का दोहरा भार झेलना पड़ता हैं, जिससे उनके शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता हैं, इससे पति–पत्नी के सम्बन्धों तथा बच्चों पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता हैं।

### (4) मातृत्वकाल की समस्या :–

मातृत्व सुख सम्भवतः किसी स्त्री तथा उसके परिवार के लिए सबसे बड़ा सुख होता हैं परन्तु भारत में गर्भावस्था में पर्याप्त अवकाश चिकित्सा तथा आर्थिक सहायता के अभाव के कारण मातृत्वकाल महिला श्रमिकों के लिए बड़ी समस्या बन जाती हैं। इस कारण उनको स्वास्थ्य हानि होती हैं तथा संतानें भी दुर्बल तथा बीमार होती हैं।

### (5) दुर्व्यवहार :–

भारत में कार्यस्थलों पर महिलाओं से दुर्व्यवहार तथा व्याभिचार की घटनाओं में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही हैं, जिसने महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य को हानि पहुंचायी हैं।

### (6) प्रतिकूल वातावरण में कार्य करना :–

भारत में कार्य स्थलों पर वातावरण प्रतिकूल होता हैं, विशेषकर स्त्रियों तथा बच्चों को ऐसे वातावरण में कार्य कर लगाया जाता हैं जिससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता हैं तथा उसकी कार्यक्षमता में उत्तरोत्तर कमी होती हैं।

### (7) अनुपस्थिति तथा श्रम परिवर्तन :–

महिलाओं में पारिवारिक उत्तरदायित्व, बीमारी तथा प्रसव के कारण अनुपस्थिति तथा श्रम परिवर्तन की दर पुरूषों की अपेक्षा अधिक होती हैं, इस कारण इनकी कार्यक्षमता प्रभावित होती हैं तथा औद्योगिक संगठनों को भी नुकसान होता हैं।

## 11.5 महिलाओं हेतु बनाये गये श्रम कानून :–

भारत में महिला श्रमिकों के हित के लिए कई अधिनियम बनाये गये हैं जिनमें किये गये प्रावधन निम्नलिखित हैं–

### (1) कार्य के घण्टे :–

कारखाना अधिनियम 1948, खान अधिनियम 1952 तथा बागान श्रम अधिनियम 1957 के अनुसार महिला श्रमिकों को सांय 7 बजे से प्रातः काल 6 बजे तक काम कर नहीं लगाया जा सकता। कारखानों में अधिकतम कार्य की सीमा 48 घण्टे प्रति सप्ताह और बगानों में 55 घण्टे प्रति सप्ताह रखी गयी हैं।

### (2) स्वास्थ्य और सुरक्षा :–

बोझा उठाने के लिए देश के सभी राज्यों में इस प्रकार की सीमा निर्धारित कर दी गयी हैं– प्रौढ़ स्त्रियों के लिए 65 पौंड, वयस्क स्त्रियों के लिए 45 पौंड तथा बालिकाओं के लिए 30 पौंडै।

### (3) शिशु गृह की व्यवस्था :–

कारखाना अधिनियम 1948 के अनुसार जहाँ 500 से अधिक महिलायें कार्य करती हैं वहाँ शिशु गृह का होना आवश्यक हैं खानों में भी शिशु गृह का होना अनिवार्य हैं।

### (4) सुरक्षा व दंड :–

श्रम अधिनियमों के अन्तर्गत यह भी व्यवस्था की गयी हैं कि किसी भी महिला श्रमिक के प्रसव काल में नौकरी से निकाला नहीं जा सकता। प्रसव काल में मिले अवकाश में काम लेना भी दंडनीय अपराध हैं।

### (5) समान मजदूरी कानून :–

इस अधिनियम के अन्तर्गत समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था की गयी हैं। अन्य शब्दों में एक जैसे कार्यों के लिए महिला श्रमिकों को पुरूष श्रमिकों के समान मजदूरी को आवश्यक बना दिया गया। यह अधिनियम संगठित क्षेत्रों में लागू किया गया परन्तु असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं को पुरूषों से कम मजदूरी की समस्या बनी हुई हैं, फिर भी संगठित क्षेत्रों में इस एक्ट का पर्याप्त प्रभाव रहा हैं।

### (6) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम :–

यह एक्ट मुख्य रूप से असंगठित क्षेत्रों के श्रमिकों हेतु बनाया गया जिसके अन्तर्गत असंगठित क्षेत्रों में न्यूनतम मजदूरी की दर निर्धारित कर दी गयी जिससे मजदूरों की आवश्यक आवश्यकताएँ पूरी हो सके।

### (7) मातृत्व लाभ एक्ट :–

इस अधिनियम के अन्तर्गत गर्भावस्था के दौरान 24 सप्ताह की वैतनिक अवकाश की व्यवस्था की गयी हैं। सामान्यतः महिला श्रमिकों को

सन्तानोत्पत्ति के 4 सप्ताह पूर्व तथा सन्तानोत्पत्ति के 8 सप्ताह पश्चात् के अवकाश की आज्ञा हैं।

## 11.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् स्पष्ट होता हैं कि भारत में यद्यपि महिला श्रमिकों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही हैं परन्तु साथ ही उनकी समस्यायें भी बढ़ रही हैं।इन समस्याओं को दूर करने हेतु कई प्रकार के सरकारी प्रावधान किए गये हैं परन्तु महिलाओं में अज्ञानता, क्रय–शक्ति के अभाव तथा व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण उन्हें इन प्रावधानों का कोई लाभ प्राप्त नहीं हो पाता। विशेषकर असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं की समस्या अधिक विकट हैं। इन समस्याओं को दूर करने हेतु सरकारी प्रयासों को व्यवहार में लाने की आवश्यकता हैं।

## 11.7 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. भारत में महिला श्रमिकों की प्रमुख समस्याओं की व्याख्या कीजिए।
2. विभिन्न क्षेत्रों में महिला श्रम की विवेचना कीजिए।
3. महिला श्रमिकों हेतु बनाये गये श्रम कानूनों की व्याख्या कीजिए।

### (ब) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. समान मजदूरी अधिनियम के विषय में लिखिए।
2. मातृत्व लाभ अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।
3. असंगठित क्षेत्रों में महिला श्रमिकों द्वारा किए जाने वाले महत्वपूर्ण कार्यो की विवेचना कीजिए।
4. भारतीय महिला श्रमिकों को मुख्य रूप से कितने भागों में बांटा जा सकता हैं, स्पष्ट कीजिए।

### (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न :–

1. मातृत्व बीमा योजना महिला श्रमिकों को उपलब्ध कराती हैं–
   (अ) गर्भावस्था के दौरान 12 हफ्तों की छुट्टी पूर्ण वेतन के साथ
   (ब) गर्भावस्था के दौरान 12 हफ्तों की छुट्टी बिना वेतन के
   (स) 12 दिनों की छुट्टी पूर्ण वेतन के साथ
   (द) 12 महिनों की छुट्टी पूर्ण वेतन के साथ

2. नगरीय क्षेत्रों में महिला श्रमिक किस क्षेत्र में अधिक कार्यरत हैं :

(अ) गैर सरकारी क्षेत्र (ब) सरकारी क्षेत्र में

(स) संगठित क्षेत्र में (द) असंगठित क्षेत्र में

3. कारखाना अधिनियम कब पारित हुआ?

(अ) 1950 (ब) 1948

(स) 1945 (द) 1955

## 11.8 प्रश्नोत्तर :–

**(1) अ, (2) द, (3) ब**

# इकाई–12

# श्रम (बाल–श्रमिक)

इकाई की रूपरेखा :–

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 भारत में बाल श्रम का आकार

12.3 भारत में बाल श्रम के कारण तथा परिणाम

12.4 संवैधानिक प्रबन्ध तथा सरकारी नीतियाँ

12.5 सारांश

12.6 संदर्भ ग्रन्थ

12.7 सम्बन्धित प्रश्न

(अ) दीर्घ उत्तरीय

(ब) लघु उत्तरीय

(स) वस्तुनिष्ठ

12.8 प्रश्नोत्तर

## 12.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः–

- बाल श्रम की अवधारणा को जान सकेंगें।
- भारत में बाल श्रम की प्रकृति तथा आकार का अध्ययन कर सकेंगें।
- बाल श्रम के कारण तथा परिणामों की विवेचना कर सकेगें।
- बाल श्रम से सम्बन्धित संवैधानिक उपबन्धों तथा सरकारी प्रयासों की व्याख्या कर सकेंगें।

## 12.1 प्रस्तावना :–

भारत में आज भी विभिन्न उद्योगों में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों से कार्य लिए जाता हैं जबकि सरकार द्वारा इसे दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया हैं। फिर भी यह समस्या घटने के बजाए बढ़ती जा रही हैं सरकारी आँकड़ा

यद्यपि इनकी संख्या लगभग 2 करोड़ बताता हैं परन्तु अनुमानतः इस समय भारत में 12 करोड़ बाल श्रमिक हैं जिनका अधिकांश भाग खतरनाक उद्योगों में लगा हुआ हैं।

बाल श्रमिकों का सर्वाधिक शोषण होता हैं, वे रोजगार की खतरनाक परिस्थितियों में जोखिम वाले कार्य करते हैं। जिनका उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता हैं। कार्यस्थल पर बाल श्रमिकों से 15 से 18 घण्टे काम लिया जाता हैं तथा इतने घण्टे काम करने के बाद भी उन्हें बहुत कम वेतन दिया जाता हैं। विभिन्न स्थानों जैसे– बस अड्डो, ढाबों, होटलो आदि पर इन बालकों को कार्य करते हुए देखा जा सकता हैं। श्रम कर परिवार हैंतु धन कमाने वाले बच्चे कभी नहीं जान पाते कि बचपन क्या होता हैं।

## 12.2 भारत में बाल श्रम का आकार :–

भारत में बाल श्रम के आकार में उत्तरोतर वृद्धि हो रही हैं भारत में सकल राष्ट्रीय उत्पादन में श्रमिक वर्ग का लगभग 20 प्रतिशत योगदान हैं जिसमें 7 प्रतिशत योगदान बाल श्रमिकों का हैं। Census के अनुसार भारत में बाल श्रमिकों की संख्या 1991 में 11.28 मिलियन थी जो 2001 में बढ़कर 12.66 मिलियन हो गयी Census 2011 बाल श्रमिकों की संख्या 43.53 मिलियन हो गयी ।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार विश्व के एक तिहाई बाल श्रमिक भारत में हैं। जिनमें अधिकांश बाल श्रमिक असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत हैं, तथा पारिवारिक कुटीर उद्योगों तथा व्यवसायों से जुड़े हैं। जो मुख्य व्यवसाय जिनसे बाल श्रमिक जुड़े रहते हैं वे हैं पान, बीड़ी तथा सिगरेट (21 प्रतिशत), निर्माण कार्य (17 प्रतिशत), घरेलू नौकर (15 प्रतिशत) तथा बुनाई (11 प्रतिशत) आदि ।

2001 से 2011 के मध्य उत्तर प्रदेश, राजस्थान, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, बिहार, पं0 बंगाल, हरियाणा, उत्तरांचल जैसे राज्यों में बाल श्रम में उत्तरोत्तर वृद्धि देखी गयी हैं। विभिन्न अध्ययन से ज्ञात होता हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में 4.1 प्रतिशत बालक तथा 2.2 प्रतिशत बालिकों श्रमिक तथा नगरीय क्षेत्रों में 7 प्रतिशत तथा 2.5 प्रतिशत बालिका श्रमिक निरक्षर हैं।

## 12.3 भारत में बाल श्रम के कारण तथा परिणाम :–

भारत में बाल श्रम के कई कारण व्याप्त हैं।

### (1) निर्धनता :–

निर्धनता बाल श्रम का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण हैं अधिकांशतः गरीब परिवारों के बच्चों द्वारा कमाये गये वेतन से परिवार का भरण–पोषण करने के लिए मजदूर होना पड़ता हैं।

### (2) जनसंख्या वृद्धि :–

भारत की लगातार बढ़ती जनसंख्या ने निर्धनता में अतिशय वृद्धि की हैं जिस कारण बाल श्रम की समस्या में भी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई हैं।

### (3) श्रम का सरल साधन :–

होटल, ढाबों आदि में मालिको द्वारा बाल–श्रमिकों को रखना अधिक पसंद किया जाता हैं, क्योंकि इन्हैं कार्य का बहुत कम वेतन प्राप्त होता हैं, साथ ही, वे शोषण के विरूद्ध आवाज भी नहीं उठा पाते।

### (4) कानूनों का सही क्रियान्वयन न होना :–

यद्यपि बाल श्रम रोकने हैंतु भारत में कई अधिनियम बनाये गये हैं परन्तु सही क्रियान्वयन न होने के कारण यह नीतियाँ कारगर सिद्ध नहीं होती हैं।

### (5) सरकारी इच्छाशक्ति का अभाव :–

सरकारी इच्छा शक्ति के अभाव के कारण सरकारी योजनाओं का पालन नहीं होता हैं, और बाल श्रम की दर उत्तरोत्तर बढ़ रही हैं।

## बाल श्रम के परिणाम :–

### (1) शारीरिक तथा मानसिक विकास में बाधा :–

सामान्यतः बाल श्रमिकों को इतनी विकट तथा अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में कार्य करना पड़ता हैं कि उनका शारीरिक तथा मानसिक विकास अवरूद्ध हो जाता हैं। उनके साथ होने वाले दुर्व्यवहार उनमें कुण्ठा का भाव भर देता हैं।

### (2) विचलनकारी प्रवृत्तियों में वृद्धि :–

शिक्षा के अभाव तथा कार्य की अस्वस्थ्य दशाओं के कारण बाल–श्रमिकों में विघटनकारी व्यवहार बढ़ता हैं। नशाखोरी इसका सबसे बड़ा उदाहरण हैं।

### (3) शारीरिक स्वास्थ्य का पतन :–

बाल श्रमिकों को सामान्यतः इतनी खतरनाक परिस्थितियों में कार्य करना होता हैं कि उनमें तपेदिक, आँखों की बिमारियाँ, एनीमिया, टी0वी0, अस्थमा जैसी बिमारिया होने की सम्भावना बढ़ जाती हैं। इसके अतिरिक्त 15 से 18 घण्टे कार्य करने के कारण भी उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता हैं।

### (4) औसत आयु का घटना :–

बाल श्रमिकों में सामान्यतः संतुलित भोजन का अभाव होता हैं, साथ ही कार्य की अवस्थ्य दशाऐं उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव डालती हैं, जिस कारण उनकी औसत–आयु धीरे–धीरे कम हो रही हैं।

## 2.4 संवैधानिक प्रबन्ध तथा सरकारी नीतियाँ :–

स्वतंत्रता के पश्चात भारत सरकार द्वारा बच्चों के विकास तथा उनकी समस्याओं से सम्बन्धित कई संस्थागत उपाय किये गये। पिछले कुछ दशकों में

बाल श्रत के निरोध तथा नियमन पर विशेष ध्यान दिया गया हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों द्वारा फैक्ट्रीयों, खदानों तथा किसी भी खतरनाक रोजगार में संलिप्त नहीं होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 39(e) तथा (f) में राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अन्तर्गत राज्यों द्वारा आवश्यक हैं कि श्रमिकों, पुरूषों, महिलाओं तथा कम आयु के बच्चों के स्वास्थ्य तथा शक्ति का ध्यान रखा जाए तथा बच्चों को स्वास्थ्य पर्यावरण तथा शोषण से मुक्ति की व्यवस्थ की जाए। इसके अतिरिक्त संविधान में राज्यों के लिए यह आवश्यक किया गया हैं कि 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क अनिवार्य तथा प्रारम्भिक शिक्षा उपलब्ध करायी जाए।

### बाल श्रम हेतु निर्मित कमेटी :–

राष्ट्रीय श्रम कमीशन (1969) तथा बाल श्रम कमेटी (1981) के अन्तर्गत भारत में बाल श्रम के कारण तथा परिणामों का अध्ययन किया गया हैं। बाल श्रम कमेटी (1981) के प्रतिवेदन के आधार पर सरकार द्वारा श्रम के अन्तर्गत बाल श्रम हेतु विशेष केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड की स्थापना की गयी। इस बोर्ड का कार्य विभिन्न अधिनियमों के क्रियान्वयन का अवलोकन तथा अन्य कल्याण कार्यक्रमों का सुझाव प्रदान करना हैं।

### बाल श्रम से सम्बन्धित उपबन्ध :–

सर्वप्रथम भारत फैक्ट्री अधिनियम 1881 के अन्तर्गत सात वर्ष की आयु को कारखानों में कार्य करने की न्यूनतम आयु मानी गयी साथ ही प्रावधान किया गया कि उनके कार्य करने के घण्टे 9 से अधिक न हो 1891 में उनकी न्यूनतम आयु बढ़कर 9 वर्ष तथा कार्य के घण्टे 7 घण्टे कर दिया गया हैं।

वे फैक्ट्री अधिनियम ने 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों के रोजगार पर रोग लगा दी गयी। 1986 का बाल श्रम (निरोधक तथा नियमन) अधिनियम संभवतः प्रथम अधिनियम या जिसके अन्तर्गत 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को रोजगार पर रोक लगा दी गयी। साथ ही साथ 15 वर्ष से कम आयु के बच्चों के संगठित उद्योगों तथा कुछ खतरनाक उद्योगों जैसे– बीड़ी तथा कालीन बनाना, वस्त्रों की रंगाई तथा बुनाई, माचिस बनाना, विस्फोटक तथा अग्नि सम्बन्धी कार्यों, साबुन बनाना, चमड़ा उद्योग तथा निर्माण उद्योग में कार्य करने पर रोक लगा दी गयी।

## 12.5 सारांश

बाल श्रम देश की बहुत बड़ी समस्या हैं जिस कारण न सिर्फ बच्चों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता हैं, अपितु देश के भविष्य को भी नुकसान हो रहा हैं। यद्यपि इस समस्या को दूर करने हेतु सरकार द्वारा विभिन्न प्रयास किये गये हैं। परन्तु अधिनियम की कमियों तथा सही क्रियान्वयन के अभाव में यह अधिनियम अधिक प्रभावी सिद्ध नहीं हो सका हैं।

इस आधार पर हम कह सकते हैं कि यदि बाल श्रम की समस्या को जड़ से समाप्त करना हैं तो उसके कारणों पर ध्यान केन्द्रित करना होगा साथ ही मुक्त कराये गये बाल श्रमिकों के पुर्नवास तथा शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी।

## 12.6 संदर्भ ग्रन्थ :–


1. आहूजा, सामाजिक समस्यायें 1992
2. मुखर्जी, राधाकमल, सोशल डिसआर्गनाइजेशन इन इण्डिया, 2011
3. शर्मा, उषा,चाइल्ड लेबर इन इण्डिया 2006
4. Census of India 2011


## 12.7 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. बाल श्रम से सम्बन्धित संवैधानिक प्रबन्धों तथा सरकारी नीतियों की व्याख्या कीजिए।
2. बाल श्रम के परिणामों को स्पष्ट कीजिए।

### (ब) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. बाल श्रम के सम्बन्धित कमेटियों की विवेचना कीजिए।
2. भारत में बाल श्रम के आधार पर व्याख्या कीजिए।
3. भारत में बाल श्रम के कारणों की विवेचना कीजिए।

### (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. 2001 में भारत में बाल श्रमिकों की संख्या थी।

   (अ) 11.28 मिलियन (ब) 15.59 मिलियन

   (स) 12.66 मिलियन (द) 8.59 मिलियन

2. बाल श्रम कमेटी की स्थापना हुई–

   (अ) 1981 (ब) 1969

   (स) 1945 (द) 1939

3. बाल श्रम के अन्तर्गत कितनी आयु से कम आयु के श्रमिकों को बाल श्रम के अन्तर्गत रखा गया हैं–

   (अ) 18 वर्ष (ब) 14 वर्ष

   (स) 10 वर्ष (द) 5 वर्ष

4. बाल श्रम (निरोधक तथा नियमन) अधिनियम कब पारित हुआ।

(अ) 1986 (ब) 1978

(स) 1891 (द) 1881

## 12.8 प्रश्नोत्तरी :–

1. (स), 2. (अ), 3. (ब), (4). अ

# इकाई–13

# निर्धनता तथा उसके सामाजिक प्रभाव

## इकाई की रूप रेखा


13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 निर्धनता समस्या के रूप में

13.3 निर्धनता की परिभाषा

13.4 निर्धनता के कारण

13.5 निर्धनता के परिणाम

13.6 निर्धनता दूर करने के उपाय

13.7 भारत में निर्धनता

13.8 गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम

13.9 सारांश

13.10 संदर्भ ग्रन्थ

13.11 सम्बन्धित प्रश्न

(अ) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

13.12 प्रश्नोत्तर


## 13.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- निर्धनता को एक सामाजिक समस्या के रूप में जान सकेंगे।
- निर्धनता की परिभाषा को समझेंगे।
- निर्धनता के कारणों से अवगत होंगे।
- समाज पर निर्धनता के प्रभावों को समझ सकेंगे।
- निर्धनता के परिणामों की विवेचना कर सकेंगे।

- निर्धनता दूर करने के कार्यक्रमों से परिचित होंगे।

## 13.1 प्रस्तावना

निर्धनता वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपर्याप्त आय अथवा अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ होता है। निर्धनता अमीरी का सापेक्ष है। वंचना की मनोवृत्ति निर्धनता की समस्या को मुख्य बना देती है। आदिम लोग अधिक संकटमय जीवन व्यतीत करते थे, परन्तु वे अपनी असुविधा को प्राकृतिक स्थिति समझते थे न कि सामाजिक। लोग निर्धन है, इसलिए नहीं कि उनके कष्टों में वृद्धि हुई है अपितु इस भावना के कारण कि जो दूसरों के पास है वह उनके पास नहीं है। समाज में आर्थिक व्यवस्था का एक वर्ग के पास केन्द्रित होना इसका एक मुख्य कारण है। आय का असमान वितरण, एक वर्ग को सामाजिक स्तर पर निम्न बना देना निर्धनता के लिए उत्तरदायी है।

## 13.2 निर्धनता समस्या के रूप में

वर्तमान समय में निर्धनता को एक सामाजिक समस्या के रूप में स्वीकृति मिली है। स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में निर्धनता के शिकार लोगों की आमदनी को बढ़ाने की दिशा में कुछ प्रयास किए गये है। 1960 में दाण्डेकर तथा रथ (1971) ने निर्धनता की रेखा की अवधारणा को बल दिया। चौथी पंचवर्षीय योजना में निर्धनता दूर करने के लिए विशेष कार्यक्रम चालू किए गये। प्रत्येक समाज में, चाहे वह कितना ही सम्पन्न क्यों न हो, निर्धन लोग अवश्य होते है। अमेरिकी समाज में भी ढ़ाई करोड़ से भी अधिक व्यक्ति गरीबी में जी रहे है। गरीबी का मापदण्ड प्रत्येक देश में उसकी स्थिति के अनुसार रहता है। भारत में गरीबी रेखा को उपभोग के स्तर पर मापा जाता है।

## 13.3 निर्धनता की परिभाषा

सामान्यतया निर्धनता की परिभाषा के लिए आर्थिक दृष्टिकोण को अपनाया जाता है, जिसमें आय, सम्पत्ति, रहन–सहन का ढ़ंग शामिल है। निर्धन उन लोगों को कहा जाता है, जो अपनी आय के द्वारा मूलभूत आवश्यकताओं जैसे रोटी, कपड़ा और मकान को भी नहीं पूरा कर पाते हैं। निर्धनता समाज के सामाजिक–आर्थिक ढ़ाँचे से जुड़ी है। इसे दो दृष्टिकोण के आधार पर विभाजित किया जाता है पहला पोषाहार दृष्टिकोण और द्वितीय तुलनात्मक वंचन। पहले में न्यूनतम खाद्य आवश्यकताओं के आधार पर आकलन किया जाता है, दूसरे में समाज के विकसित वर्ग की तुलना में किसी वर्ग के वंचन को गरीबी का मानदंड माना जाता है।

## 13.4 निर्धनता के कारण

निर्धनता एक ऐसी जटिल सामाजिक घटना हैं जिसे किसी एक विशेष कारण के आधार पर नहीं समझाया जा सकता। विशेष रूप में भारतवर्ष में निर्धनता के लिए उत्तरदायी कारण निम्नलिखित हैं–

**(क) सामाजिक कारण –** संयुक्त परिवार प्रणाली निर्धनता के लिए काफी कुछ उत्तरदायी है। भारतीय जाति प्रथा देश की आर्थिक प्रगति के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है। इस प्रथा ने देश के लोगों को अनेक छोटे–छोटे भागों में बाँट दिया है।

**(ख) व्यक्तिगत कारण –** बिमारी, मानसिक रोग, बुरी आदतें, दुर्घनाएँ आदि कारण भी निर्धनता की उपयोगी कारण हैं।

**(ग) आर्थिक कारण –** खेती की पिछड़ी दशा, बुनियादी उद्योगों की पिछड़ी दशा, कम पूंजी, परिवहन व संचार के उन्नत साधनों की कमी, श्रमिकों की कार्य क्षमता की कमी, समुचित बैंकों की सुविधाओं में कमी, युद्ध, जनसंख्या की बढ़ोत्तरी आदि। अतः कहा जा सकता है कि उपरोक्त सभी कारक निर्धनता के मुख्य कारक हैं।

## 13.5 निर्धनता के परिणाम

निर्धनता के उत्पन्न होने वाले प्रमुख सामाजिक परिणाम निम्नलिखित हैं : (1) निर्धनता बाल अपराध एवं अपराध को बढ़ावा देती है। (2) निर्धनता के कारण व्यक्ति आत्महत्या भी कर सकता है। (3) निर्धनता का एक प्रत्यक्ष परिणाम विवाह विच्छेद भी है। (4) बेकारी भी निर्धनता का एक परिणाम है। निर्धनता के कारण व्यक्ति अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता। (5) निर्धनता का एक सामाजिक दुष्परिणाम भिक्षावृत्ति भी है। (6) निर्धनता के कारण जब आधारभूत आर्थिक आवश्यकताओं तक की पूर्ति नहीं हो पाती है तो अनेक स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति को अपनाने के लिए विवश हो जाती हैं। अतः इसका एक कटु सामाजिक दुष्परिणाम वेश्यावृत्ति भी है।

## 13.6 निर्धनता दूर करने के उपाय

भारत में निर्धनता दूर करने के लिए निम्नलिखित उपायों को अपनाना आवश्यक होगा– अशिक्षा दूर करना, कृषि की स्थिति का सुधारना, बचत की आदत बढ़ना, स्वास्थ्य स्तर उन्नत करना, समुचित बैंकिंग एवं साख सुविधाएं, उद्योग धन्धों का विकास, सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन, इसके अतिरिक्त बेकारी, बीमा योजना, लागू करना, प्राकृतिक साधनों का उचित तथा पर्याप्त उपयोग करना तथा संचार के साधनों में उन्नति करना, श्रम कल्याण कार्यों को अधिकाधिक विस्तृत करना आदि निर्धनता को दूर करने के अन्य उपाय हैं।

## 13.7 भारत में निर्धनता

सुरेश तेंदुलकर समिति द्वारा सुझाए गए फार्मूले के तहत निर्धनता रेखा का निर्धारण प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय के आधार पर किया जाता है। 2011–12 में अखिल भारतीय स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों में व्यय 816 रु0 प्रति व्यक्ति प्रति माह जहाँ

स्वीकार किया गया है, वहीं शहरी क्षेत्र के लिए यह 1000 रू0 प्रति व्यक्ति प्रतिमाह माना गया है। इसका अर्थ यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिदिन रू0 27.20 व शहरी क्षेत्रों में प्रतिदिन रू0 33.33 से कम खर्च करने वाले व्यक्तियों को अखिल भारतीय स्तर पर निर्धनता रेखा से नीचे माना गया है।

देश में निर्धनता अनुपात व निर्धनों की संख्या के सम्बन्ध में योजना आयोग द्वारा जारी किये गये आंकड़ों के अनुसार 2011–12 में देश में 21.9 प्रतिशत जनसंख्या निर्धनता रेखा से नीचे है जबकि 1993–94 में यह अनुपात 45.3 प्रतिशत, 2004–05 में 37.2 प्रतिशत तथा 2009–10 में यह अनुपात 29.8 प्रतिशत थी। 2011–12 में ग्रामीण क्षेत्रों में 25.7 प्रतिशत व शहरी क्षेत्रों में 13.7 प्रतिशत जनसंख्या निर्धनता रेखा से नीचे बताई गई है। राज्यों के स्तर पर सबसे अधिक निर्धनता प्रतिशत छत्तीसगढ़ का रहा है। वही सबसे कम निर्धनता प्रतिशत गोवा का था।

भारत में निर्धनता अनुपात में लगातार कमी के दावों के बावजूद देश में निर्धनता की स्थिति चिन्ताजनक है। निर्धनता की जांच के लिए संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) के अनुसार भारत के आठ राज्यों में ही निर्धनों की जनसंख्या अफ्रीका के 26 देशों में निर्धनों की जनसंख्या से अधिक है।

## 13.8 गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम

समावेशी विकास की प्राप्ति के लिए, भारत सरकार अनेक गरीबी–उन्मूलन तथा रोजगार सृजन के कार्यक्रम कार्यान्वित कर रही है। कुछ महत्वपूर्ण कार्यक्रम निम्नलिखित हैं–

1. महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना (MNREGA)
2. स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY)
3. स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना (SJSRY)
4. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM)
5. आम आदमी बीमा योजना (AABY)
6. जन श्री बीमा योजना (JBY)
7. इन्दिरा आवास योजना (IAY)

मनरेगा के तहत ग्रामीण परिवार के सक्षम और इच्छुक व्यक्ति को साल में न्यूनतम 100 दिनों का काम दिया जाता है। योजना के तहत गाँवों में स्थायी परिसम्पत्ति या बुनियादी संरचना का निर्माण किया जाता है, जो बाद में गांव के लोगों के जीविकोपार्जन में मदद कर सके।

स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना गाँवों में रहने वाले गरीबों के लिए स्वरोजगार की एक योजना 1 अप्रैल 1999 को प्रारम्भ की गई थी। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में भारी संख्या में सूक्ष्म उद्योगों की स्थापना करना है।

स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना के तहत शहरी निर्धनों को स्वरोजगार उपक्रम स्थापित करने हेतु वित्तीय सहायता करना तथा सवेतन रोजगार सृजन हेतु उत्पादक परिसम्पत्तियों का निर्माण करना है।

जनश्री बीमा योजना में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले शहरी व ग्रामीण व्यक्तियों को जीवन बीमा सुरक्षा प्रदान करना है।

## 13.9 सारांश

भारत की सामाजिक समस्याओं में सर्वाधिक विकराल सामाजिक समस्या निर्धनता है क्योंकि इससे अनेक अन्य सामाजिक समस्याएँ प्रादुर्भूत होती हैं। ''नहि दरिद्र सम दुःख जग माहि'' की बात शत–प्रतिशत सही है। इसलिए किसी ने कहा है कि निर्धनता क्या–क्या नहीं करा देती ''बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्।'' वैयक्तिक विघटन, सामाजिक विघटन, पारिवारिक विघटन, सामुदायिक विघटन, आपराधिक कृत्यों में वृद्धि, बाल एवं किशोर अपराधों का बाहुल्य, वेश्यावृत्ति, दुर्व्यसनों की वृद्धि मद्यपान, मादक द्रव्य व्यसन, भिक्षावृत्ति– ऋणग्रस्तता, बेकारी, नैराश्य, हीन भावना, आत्महत्या, क्रान्ति आदि की घटनाएँ निर्धनता के परिणामस्वरूप ही घटित होती हैं। भारत में निर्धनता की समस्या दिन–प्रतिदिन गम्भीर होती जा रही है। चरित्र, गन्दगी, बिमारी, अनावश्यक मृत्यु और सबसे बढ़कर निराशा की स्थिति, नीची आय, असन्तोषजनक आवास, समय से पहले मृत्यु, बेरोजगारी आदि सभी बातें निर्धनता के दुष्प्रभाव को प्रकट करते हैं।

## 13.10 संदर्भ ग्रन्थ


1. मरिकस एस0जे0 – पॉवर्टी इन इण्डिया, जेबियर बोर्ड ; त्रिवेन्द्रम, 1988
2. विद्याभूषण, सचदेवा, डी0आर0–समाजशास्त्र के सिद्धान्त, किताब महल, 22ए, सरोजनी नायडू, मार्ग; इलाहाबाद, 2004
3. गुलाटी, ए0– फ्रॉम प्रापेरिटो टू रिट्रोगेशन : इण्डिया कल्टीवेटर्स ड्यूरिंग द 1970
4. आहूजा राम, सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन्स जयपुर, 2013


## 13.11 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. निर्धनता की परिभाषा क्या है?
2. भारत में निर्धनता मापने का क्या पैमाना है?
3. भारत की जनसंख्या में निर्धनता के क्या कारण है?
4. निर्धनता के दुष्परिणाम क्या–क्या होते है?

5. निर्धनता को दूर करने के लिए सरकारी योजनाओं के नाम लिखिए।

## (ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. निर्धनता को स्पष्ट करते हुए समाज पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या कीजिए।
2. भारत में निर्धनता के कारण एवं उसके परिणाम क्या है?
3. भारत में निर्धनता उन्मूलन की सरकारी योजनाओं का विवरण दीजिए।

## (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारत में निर्धनता मापने का पैमाना क्या है?

   (अ) उपभोग (ब) आय

   (स) वेतन (द) खर्च

2. भारत में निर्धनता का प्रतिशत कितना है?

   (अ) 20.1 (ब) 31.7

   (स) 21.9 (द) 29.0

3. भारत में सबसे अधिक निर्धनता प्रतिशत किस राज्य का है?

   (अ) बिहार (ब) छत्तीसगढ़

   (स) मध्य प्रदेश (द) उत्तर प्रदेश

4. सबसे कम निर्धनता प्रतिशत कहाँ है?

   (अ) गोवा (ब) केरल

   (स) पंजाब (द) हरियाणा

5. कौन सी योजना निर्धनता से सम्बन्धित है?

   (अ) महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना (MNREGA)

   (ब) स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना (SJSRY)

   (स) जन बीमा योजना (JBY)

   (द) सभी

6. शहरी निर्धनता प्रतिशत कितना है?

   (अ) 15.8 (ब) 20.0

   (स) 13.7 (द) 12.0

7. ग्रामीण परिवार में प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह कितने रु0 निर्धनता रेखा के लिए निर्धारित है?

(अ) 816रू0 (ब) 522 रू0

(स) 917 रू0 (द) 312 रू0

8. ग्रामीण निर्धनता प्रतिशत कितना है?

(अ) 22.7 (ब) 25.7

(स) 30.1 (द) 37.7

9. SJSRY का पूरा नाम क्या है?

(अ) स्वर्ण जयन्ती शहरी कार्यक्रम योजना

(ब) स्वर्ण जयन्ती ग्रामीण रोजगार योजना

(स) राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन

(द) स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना

## 13.12 प्रश्नोत्तर

1. (अ) 2. (स) 3. (ब) 4. (अ) 5. (द)
6. (स) 7. (अ) 8. (ब) 9. (द)

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

# DCESY-102
# भारत में सामाजिक समस्याएँ

## खण्ड – 4

## वंचन तथा परायापन के स्वरूप

**इकाई – 14** **155–166**
अपराध और अपचार

**इकाई – 15** **167–174**
नशीले पदार्थो का व्यसन तथा मद्यपान

**इकाई – 16** **175–180**
हिंसा और आतंकवाद

# उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

## उत्तर प्रदेश प्रयागराज

### परामर्श समिति

| | | |
|---|---|---|
| कुलपति | – | प्रो० के० एन० सिंह |
| कुलसचिव | – | डॉ० ए० के० गुप्ता |

### सम्पादक

1. प्रो. सोहन राम यादव
   विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
   बी० एच० यू० वाराणसी। – 221005
2. प्रो. जगदीश नारायण सिंह
   प्रोफेसर, समाजशास्त्र
   बी० एच० यू० वाराणसी। – 221005

### पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | डॉ० एम० एन० सिंह | – | पूर्व निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ० प्र० रा० ट० मु० वि० वि०, प्रयागराज |
| 2. | डॉ० इति तिवारी | – | प्रभारी, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ० प्र० रा० ट० मु० वि० वि०, प्रयागराज |
| 3. | रमेश चन्द्र यादव | – | शैक्षणिक परामर्शदाता, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र०रा०ट०मु०वि०वि०, प्रयागराज |

### DCESY-102 – भारत में सामाजिक समस्यायें

**लेखक**

| | | |
|---|---|---|
| रमेश चन्द्र यादव | – | शैक्षणिक परामर्शदाता, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र०रा०ट०मु०वि०वि०, प्रयागराज |
| डॉ. इति तिवारी | – | एसो० प्रोफेसर, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज। |
| प्रो. मोहम्मद सलीम | – | प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| प्रो. ए.के. पाण्डेय | – | प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| डॉ. अखिलेश कुमार राय | – | एसों. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, वसंत कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी। |
| डॉ. अरूणा कुमारी | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। |
| डॉ. सुस्मिता सिंह | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| डॉ. दिनेश कुमार सिंह | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। |

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज –2023

ISBN- 978-93-83328-42-0

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

# इकाई–14

# अपराध और अपचार

इकाई की रूपरेखा –


14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 अपराध और सामाजिक सम्पर्क

14.3 अपराध और अपचार के जानकारी में नहीं आने वाले मामले

14.4 सहज और परिवेश सम्बन्धी कारक

14.5 परिवार में परिवेश जन्य कारक

14.6 परिवार का सामाजिक वातावरण

14.7 अपराध और अपचार नियंत्राण की नीति

14.8 सारांश

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

14.10 बोध–प्रश्न

(अ) दीर्घ उत्तरीय

(ब) लघु उत्तरीय

(स) वस्तुनिष्ठ

14.11 प्रश्नोत्तर


## 14.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमने अपराध और अपचार विषय को स्पष्ट करने का प्रयास किया है जिससे कि आपको

निम्न बिन्दुओं पर ज्ञानार्जन हो सके –

- अपराध और बाल अपचार की चर्चा
- अपराध और अपचार की श्रेणी में न आने वाले मामले
- अपराध और अपचार के सहजात और परिवेश जन्य कारकों को समझना
- वातावरण से जुड़े विभिन्न पहलू

- अपराध और अपचार से सम्बन्धित पारिवारिक और सामाजिक वातावरण का महत्व

## 14.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम अपराध और बाल अपचार के विषय में चर्चा करेंगे। भारत में अपराध शास्त्रा का शिक्षण लखनऊ के जेल अधिकारी प्रशिक्षण महाविद्यालय में 1940 में प्रारम्भ हुआ। आगामी वर्षों में अपराधशास्त्रा एक विषय के रूप में कुछ विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाने लगा। इस इकाई में हम अपराध शास्त्रा के अन्तर्गत आने वाले अपराधों और उससे सम्बन्धित क्रियाओं की चर्चा करेंगे। इसके पश्चात् हम बाल अपराध तथा सभी अपराधों और विभिन्न अपचारों के विषय में बतायेंगे। हम अपराधों के ऐसे विषयों पर भी चर्चा करेंगे जिनकी हमें सार्वजनिक जानकारी नहीं मिल पाती। फिर हम पारिवारिक परिवेश से सम्बन्धित कारकों की चर्चा करेंगे। इसके पश्चात् परिवार से जुड़े सामाजिक वातावरण के कारण उत्पन्न अपराधिक परिस्थितियों तथा उनके नियंत्राण की नीतियों पर विचार किया जाएगा।

## 14.2 अपराध और सामाजिक सम्पर्क –

प्रत्येक समाज में आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तथा व्यवहार के निर्धारण के लिए एक निश्चित सीमा तय की जाती है, कुछ नियम बनाये जाते हैं और समाज का प्रत्येक व्यक्ति उन नियमों का पालन करता है। परन्तु, समाज में कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो इस समाज द्वारा निर्धारित किए गए नियमों और कानूनों को नहीं मानते हैं और नियमों के विरुद्ध कार्य करते हैं। अतः प्रत्येक समाज में जो निश्चित नियम, कानून, मूल्य, मान्यताएँ तथा मापदण्ड होते हैं तथा इन निर्धारित नियमों का पालन न करना और इनके अनुकूल व्यवहार न करना ही अपराध है। इन अपराधों पर दण्ड की व्यवस्था भी की गई है।

प्रत्येक समाज या राज्य में जो व्यक्ति गलत कार्य करने का दोषी या अपराध में लिप्त या नियमों को तोड़ने का दोषी पाया जाता है उसे दण्ड के रूप में कष्ट या पीड़ा दी जाती है। दण्डस्वरूप अपराधी को जुर्माना, कैद, मृत्युदण्ड आदि दी जाती है।

समाज विरोध कुछ ऐसे भी आचरण हैं जिस पर कानून ने कोई भी सजा निर्धारित नहीं की है, ऐसे व्यवहारों को समाज नियंत्रित करता है अर्थात् अनैतिक आचरण और अपराध इन दोनों में काफी अन्तर है। कई देशों में जिन कार्यों को अपराध घोषित किया गया है, उन्हीं कार्यों को कुछ अन्य देशों में अनैतिक आचरण माना जाता है। जैसे, माता–पिता का सम्मान न करना, उन्हें बुढ़ापे में घर से निकाल देना अनैतिक आचरण है, जिसे समाज चाहे तो सजा दे सकता है या सुधार सकता है, परन्तु कानूनन यह कोई अपराध नहीं है और इसके लिए कोई सजा निर्धारित नहीं है।

## 14.2.1 बाल अपचार –

जिस अपराध को कम आयु वालों के द्वारा किया जाता है उसे किशोर अपचार या बाल अपचार कहते हैं। अतः अपराधियों की आयुसीमा निर्धारित की गई है, परन्तु यह आयु सीमा विश्वभर में एक समान नहीं है। 'किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) संशोधन अधिनियम 2006 के अनुसार जो बालक उम्र का अट्ठारहवाँ वर्ष पूरा नहीं किया है, बाल अपराधी कहलाता है। कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो यदि बड़े करें तो वे अपराध की श्रेणी में नहीं आते हैं और यदि बच्चे करें तो वे अपराध कहलाते हैं और कानून में उनके लिए सजा भी निर्धारित की गयी है। उदाहरणस्वरूप, यदि कोई बच्चा या किशोर, माता–पिता की बात न माने, आवारागर्दी करे, स्कूल न जाए, व्यय की निर्धारित सीमा से ज्यादा खर्च करे, ऐसा व्यवहार करे जिससे उसका चरित्रा गिरता प्रतीत हो, ऐसी स्थिति में बच्चों या किशोर द्वारा जो अपराध होते हैं, कानून में उनके लिए सजा निर्धारित की गयी है।

## 14.2.2 अपराध और अपचार –

प्रत्येक समाज, अपने विकास के साथ ही साथ आचरणों के मूल्यों और आदर्शों का विकास करता है। इन्हीं में से कुछ आदर्शों को बाद में नियमों के रूप में संहिताबद्ध कर लिया जाता है। अतः प्रत्येक समाज के सुचारु रूप से तैयार होने और आचार–संहिता बनते ही उसका उल्लंघन करने वाले व्यक्ति उपस्थित रहते हैं। प्रत्येक युग में कभी बच्चों ने, कभी किशोरों ने तथा कभी बड़ों ने इन नियमों का उल्लंघन किया है। ऐसे गैर–कानूनी आचरणों की संख्या तीव्रता से बढ़ती जा रही है। भारत में इसकी स्थिति सामान्य है, परन्तु अन्य देशों में गैर–कानूनी व्यवहार की स्थिति अत्यधिक सोचनीय है।

भारत में 2011 में भारतीय दण्ड संहिता और अन्य कानूनों के तहत लगभग 23 लाख मामले सामने आए हैं। 2001 से 2011 में जनसंख्या में 17.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई है एवं अपराध में 12.3 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। यदि देखा जाए तो आजकल देश में लगभग प्रत्येक 20 मिनट में एक लड़की का बलात्कार किया जाता है, प्रत्येक दिन लगभग 372 लोग आत्महत्या कर रहे हैं, प्रत्येक दिन 452 लोग सड़क या रेल दुघटना से मरते हैं। मध्य प्रदेश में सबसे अधिक बलात्कार की घटना दर्ज की गयी है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो–अपराध–2005 के अनुसार, देश में प्रत्येक 16 मिनट में एक हत्या, प्रत्येक 23 मिनट में एक अपहरण, प्रत्येक 2 घण्टे में एक डकैती, प्रत्येक 9 मिनट में एक दंगा, प्रत्येक 15 मिनट में एक छेड़छाड़ की घटना हो रही है।

हत्या, बलात्कार, अपहरण, दंगा, डकैती, सेंध लगाना, चोरी, ये सभी भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत आने वाले अपराध हैं। भारतीय दण्ड संहिता के तहत कुल संज्ञेय अपराधों के अन्तर्गत लगभग 31 लाख लोगों को गिरफ्तार किया गया है। इसके अतिरिक्त 'भारत में अपराध, 2011' के अनुसार स्थानीय विशिष्ट कानून जिसके अन्तर्गत मद्य–निषेध कानून, जुआ निषेध कानून, आबकारी कानून, भारतीय रेलवे कानून, अनैतिक व्यापार निषेध कानून, मादक पदार्थ निषेध कानून, दहेज प्रतिषेध अधिनियम, अनिवार्य वस्तु अधिनियम, अनुसूचित जाति/जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के अन्तर्गत लगभग 24 लाख व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया है। इन गिरफ्तारियों में बच्चों की संख्या 30,766 है, जिनमें लड़कों की संख्या 29,234 और लड़कियों की संख्या 1,532 है।

## 14.3 अपराध और अपचार की जानकारी में नहीं आने वाले मामले –

'भारत में अपराध, 2011' के अनुसार सभी आयु वर्गों में अपराध के कारण 74,58,258 लोग गिरफ्तार किए गए जिनमें 4.47 प्रतिशत महिलाएँ हैं एवं 95.53 प्रतिशत पुरुष हैं। इनमें से 46 प्रतिशत पुरुष 18 से 30 आयु वर्ग वाले एवं 37 प्रतिशत पुरुष 30 से 45 आयु वर्ग वाले हैं। इसी प्रकार 34 प्रतिशत महिलाएँ 18 से 30 आयु वर्ग वाले एवं 42 प्रतिशत महिलाएँ 30 से 45 आयु वर्ग वाले हैं। इन अपराधियों में लगभग 46 प्रतिशत लोग 18 से 30 आयु वर्ग वाले हैं।

अपराधों का मुख्य कारण निरक्षरता भी है क्योंकि गिरफ्तार किए गए लोगों में अधिकतर अपराधी पढ़े–लिखे नहीं होते हैं। इन अपराधियों में लगभग 38 प्रतिशत बाल अपराधी प्राथमिक स्तर तक ही शिक्षित हैं एवं लगभग 31 प्रतिशत बाल अपराधी प्राथमिक से हाई स्कूल तक की शिक्षा वाले हैं। इन बाल अपराधियों में से लगभग 57 प्रतिशत बाल अपराधी ऐसे हैं जिनकी वाखषक आय 25,000 रुपये तक है एवं एवं 27 प्रतिशत बाल अपराधी ऐसे हैं जिनकी वाखषक आय 25000 से 50000 रुपये है।

इन सभी आँकड़ों को हम रिपोर्ट में देख सकते हैं लेकिन समाज में रोज इतने गैर–कानूनी अपराध होते हैं जिन्हें कोई भी निश्चित रूप से नहीं बता सकता है। इन अपराधिक घटनाओं को नियंत्रित करने वाली पुलिस के पास जो रिकार्ड उपलब्ध है उसमें लगभग 50 प्रतिशत अपराधी ही हैं परन्तु ऐसे अपराधिक आचरण दुनिया में बहुत अधिक हैं जिनकी जानकारी हमें नहीं मिल पाली और सामान्य नागरिकों द्वारा जो रिपोर्ट पुलिस के पास लिखवायी जाती है, उन्हीं मामलों से हमें अपराध की जानकारी प्राप्त होती है।

### 14.3.1 पुलिस रिपोर्ट –

पुलिस अत्यन्त कार्यकुशलता के साथ अपराधियों को पकड़ लेती है, परन्तु आज भी लोगों का यही मानना है कि पुलिस से जितना दूर रहा जाए उतना ही अच्छा है, और इसीलिए लोग पुलिस के पास प्राथमिकी दर्ज कराने नहीं जाते हैं। इसके मुख्य कारण हैं, यदि अपराध बहुत साधारण हो अथवा पुलिस थाना घर से काफी दूरी पर हो, कभी–कभी अपराधियों द्वारा परेशान किए जाने का भय, सेक्स सम्बन्धी अपराध में अपराधी का इस विषय पर बात न करना, कभी–कभी माँ–बाप ही अपने पुत्राों के अपराधों को छुपा लेते हैं और सबसे महत्वपूर्ण कारण है लोगों का कानून तथा पुलिस पर विश्वास न होना।

साधारणतः देखा जाए तो यह काफी हद तक परिवार के सामाजिक–आखथक स्तर पर निर्भर करता है, उदाहरणस्वरूप, परिवार को कोई किशोर यदि कोई अपराध करता है तो उसे परिवार के व्यस्क लोग यह समझाकर

कि "पुलिस तुम्हें गिरफ्तार कर लेगी और तुम्हें सजा हो जाएगी" उचित मार्ग पर ले जाते हैं।

अच्छे परिवारों के बच्चे भी चोरी करते हैं, दुकानों से सामान उठा लेते हैं, दोस्तों से लड़ाई–झगड़ा करते हैं, दूसरों के बगीचों से फूल चुराते हैं, चलते गाड़ियों पर पत्थर फेंकते हैं, इस प्रकार के गलत कार्यों की रिपोर्ट पुलिस को नहीं की जाती है।

## 14.3.2 अपराध के कारण –

अपराध के असंख्य कारण हो सकते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि जो बच्चा अपराधी प्रवृत्ति का हो, वह बड़ा होकर भी अपराधिक आचरण से लिप्त हो। यहाँ अपराध के कारणों की एक तालिका दी जा रही है–

अपूर्ण मनोरंजन सुविधायें,

शारीरिक हीनता,

भावनात्मक असन्तुलन,

अस्थायी पागलपन,

शिक्षा की कमी,

व्यक्तिवादी अराजकता,

सामाजिक अपूर्णता,

धन, आय का असमान वितरण,

माता–पिता के नियन्त्राण में कमी,

दोषपूर्ण नैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियाँ

ऐसे ही कुछ कारणों से व्यक्ति अपराधिक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होता है और अपराधिक आचरण में लिप्त रहता है। इसके अतिरिक्त अवैध ढंग से धनोपार्जन, मद्यपान तथा नशीली दवाइयों का सेवन और विघटित परिवार में प्रेम का अभाव, ये सभी महत्वपूर्ण कारण माने जाते हैं।

## 14.4 सहज और परिवेश सम्बन्धी कारक –

अपराध होने का कारण प्रत्येक दृष्टि से अलग–अलग व्यक्तियों तथा अलग–अलग स्थितियों में भिन्न होते हैं। यह सामान्य धारणा है कि अपराध व्यक्तिगत और पर्यावरणीय कारकों से होता है। व्यक्तिगत कारकों में शारीरिक अपंगता, व्यक्तित्व संघर्ष, भय, मानसिक असमानताएँ व रोग प्रमुख माने गए हैं। इन सभी सेहीन भावना की उत्पत्ति होती है और व्यक्ति अपराध के रास्ते पर अग्रसर हो जाता है। अधिकतर मंद बुद्धि और मानसिक रोगी के मन में शोषण, विवशता और सामाजिक अस्वीकृति तथा सेक्स व्यवहार जैसी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। लम्बे समय तक समाज द्वारा उपेक्षित किए जाने वाले व्यक्ति भी उग्र और हिंसक व्यवहार करने लगते हैं।

एक सामान्य व्यक्ति अपनी भावनाओं, विचारों, बुद्धि, इच्छाशक्ति और आदतों को नियंत्रित करना जानताहै। अनेक विद्वान यह मानते हैं कि अपचार और अपराधिक आचरण भावनात्मक असन्तुलन या व्यक्तित्व में विरोधी भावों में टकराव से उत्पन्न होता है। ऐसे लोगों के व्यवहार सामाजिक नियमों से नहीं मिलते हैं और वे अपनों को ही हानि पहुँचाते हैं और सामाजिक परिवेश से अपने को अलग समझते हैं।

## 14.4.1 वास्तविकता बनाम कल्पना संसार –

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के प्रत्येक क्षण के विषय में कुछ कल्पनाएँ गढ़ता है। जिस काल्पनिक जगत में वह सदैव खुश रहना चाहता है, उसमें रहकर वह अतृप्त आकांक्षाओं को पूरा करता है, परन्तु वास्तविक जगत इससे भिन्न है। यहाँ कठिन परिश्रम करते हुए उसे जीवन की सभी भूमिकाएँ निभानी होती हैं। दूसरी तरफ देखें तो भावनात्मक परेशानियों से घिरे लोग वास्तविक जगत का सामना करने से डरते हैं। इससे उनके अन्दर मानसिक द्वन्द उत्पन्न हो जाता है, जिससे उनके लिए अपनी जिम्मेदारियों को निभाना मुश्किल हो जाता है और जीवन के कठिन परिस्थितियों में वे अपने कार्यक्षेत्रा में असफल हो जाते हैं। वे जीवन की सच्चाई से दूर हट जाते हैं और करनून के विपरीत आचरण करने लगते हैं।

शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्ति भी समाज की दृष्टि में उपेक्षित होता है। इन व्यक्तियों में समाज के प्रति गुस्सा भरा रहता है और हीन भावना से ग्रसित ये व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को नुकसान पहुँचाते हैं।

## 14.4.2 स्वास्थ्य और रोग –

जब कोई व्यक्ति रोग से ग्रस्त होता है, तो उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, वह लोगों पर चिल्लाने लगते हैं और अपना व्यवहार नियंत्रित नहीं कर पाते हैं। साधारणतः ऐसे लोग अपराध और अपचार के कुचक्र में फँस जाते हैं क्योंकि उनका विवेक शून्य हो जाता है और वे शान्तचित्त होकर संतोषजनक फैसला नहीं कर पाते हैं। संयमपूर्वक अच्छे–बुरे की समझ करने में वे सक्षम नहीं होते हैं। इसी कारण, वे बड़े–बड़े अपराध करने लगते हैं। चोरी, हत्या जैसे कार्य करते हैं और वे समाज के लिए खतरनाक हो जाते हैं।

## 14.5 परिवार में परिवेशजन्य कारक –

अब तक हमने व्यक्तिगत कारकों के विषय में जाना जो अपराध और अपचार करने के लिए प्रेरित करते हैं, जिसके वशीभूत व्यक्ति कानून तोड़ता रहता है। परन्तु अपराध और अपचार करने में परिवेशजन्य कारकों का भी महत्वपूर्ण योगदान है। इसमें व्यक्ति को उसके आस–पास, घर, पारिवारिक जीवन, स्कूल,

कार्यस्थल, ये सभी प्रभावित करते हैं। सामान्यतः यह परिवेश पर निर्भर करता है कि व्यक्ति का आचरण कैसा होगा? अच्छे परिवेश में व्यक्ति की मनःस्थिति अच्छी होती है और उसका मन शान्त रहता है और बुरे परिवेश में इसके विपरीत होता है जिस कारण व्यक्ति अपराध और अपचार करता है।

## 14.5.1 परिवार –

व्यक्ति के जीवन में परिवार का प्रभाव बहुत अधिक होता है। परिवार ही व्यक्ति के आवश्यक और अनावश्यक इच्छाओं की पूख्रत करता है। प्रत्येक व्यक्ति की पारिवारिक स्थिति एक समान नहीं होती है। परिवार के सम्बन्ध में हम दो प्रकार के परिवेशों का अध्ययन कर सकते हैं, परिवार के अन्दर के परिवेश और परिवार के बाहर के परिवेश।

एक बच्चे का बचपन परिवार के मध्य ही व्यतीत होता है। बालक के जन्म के पश्चात् कोई भी यह नहीं कह सकता है कि यह अच्छा व्यक्ति बनेगा या अपराधी। परिवार में ही व्यक्ति का विकास होता है, परिवार के माध्यम से ही व्यक्ति को अच्छे–बुरे की समझ होती है और परिवार में ही ऐसी शक्ति होती है जो एक बच्चे को समाज विरोधी व्यवहार करने के लिए उत्तेजित करता है या रोक सकता है। उदाहरणस्वरूप, यदि एक बच्चे को परिवार में स्नेह मिले, उचित शिक्षा मिले, तो व्यक्ति उचित रास्ते पर अग्रसर होता है और जब परिवार में प्रेम न हो और सभी एक–दूसरे से रूखा व्यवहार करें, उनका व्यवहार अपमानित करने वाला हो, तो बच्चे के हृदय में भी दूसरों के प्रति ईर्ष्या और द्वेष की भावना उत्पन्न हो जाती है।

परिवार में यदि माता–पिता के बीच लड़ाई हो या तलाक हो जाए या दोनों अलग–अलग रहने लगें तो परिवार बिखर जाता है। माता–पिता, परिवार की गाड़ी के दो पहिए हैं, एक पहिया निकल जाए तो गाड़ी गिर जाती है और ऐसे परिवार के बच्चे जब परिवार से बाहर निकलते हैं तो उन्हें बाहरी समाज में शख्रमन्दा होना पड़ता है। ऐसे बच्चे भी अपराधिक आचरण करने लगते हैं।

## 14.5.2 परिवार के स्वरूप में बिखराव –

परिवार के टूटने का मुख्य कारण माता–पिता में से किसी एक की मृत्यु, तलाक, परित्याग, कारावास, आदि है। इनके अनुपस्थिति के परिणामस्वरूप स्नेह की कमी, नियंत्राण और देख–रेख की कमी, बुरी आदतों का विकास जैसे, धूम्रपान, मद्यपान, जुआ और कुसंगति आदि होती है। बच्चों के सही पालन–पोषण में माता–पिता की अयोग्यता ही अपराध और अपचार का मुख्य कारण सुना गया है। ग्लूक के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि अपराधी लड़कों के माता–पिता ने अपने बच्चों को अनुशासित करने के लिए अनुपयुक्त विधियों, जैसे–अति कठोर या त्रुटिपूर्ण तरीकों को अपनाया। वे अपनी बच्चों के प्रति उदासीन या आक्रामक या शारीरिक दण्ड भी देते पाए गए हैं। अपने बाद के 1962 के अध्ययन में उन्होंने यह भी पाया

कि आक्रामकता के बदले में बच्चों ने भी अपने माँ–बाप के प्रति उदासीन और आक्रामक रवैया अपना लिया।

## 14.5.3 बच्चों की देखभाल और अपचार –

माता–पिता के निर्देशन में कमी के कई कारण हो सकते हैं, जैसे, बड़ा परिवार, घर से बाहर नौकरी के कारण माँ की अधिक व्यस्तता, इत्यादि। बच्चों का उचित शारीरिक व भावनात्मक विकास माँ के द्वारा ही सम्भव है। एक बच्चे की अच्छी परवरिश उसके माँ के द्वारा सिखाए संस्कारों से ही झलकता है और जहाँ एक महिला दिन–भर बाहर काम करती है तो घर आते–आते स्वाभाविक है कि वह पूर्णतः थक जाएगी और बच्चे पर कम ध्यान दे पाएगी। किशोरावस्था में बच्चों पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक होता है। उस अवस्था में यदि माँ बाहर काम करने जाएगी तो उसके लिए अपने बच्चे को समय देना सम्भव नहीं हो सकेगा और देखरेख के अभाव में भी बच्चे बुरी आदतों के शिकार हो जाते हैं। परन्तु, मात्रा माँ के कामकाजी होना ही बच्चों के अपराध और अपचार का कारण नहीं है, बल्कि बच्चों पर उचित ध्यान न देना, उनका बुरी आदतों की ओर जाना मुख्य कारण है। माँ ही नहीं, अपितु परिवार का प्रत्येक सदस्य यदि उचित शिक्षा दे और उसकी खुशी का ख्याल रखे तो बच्चे को सही एवं गलत को समझने में आसानी होगी।

## 14.5.4 परिवार में गरीबी –

गरीब परिवार अपने सदस्यों को आख़थक सुरक्षा देने में समर्थ नहीं होता। वह अपने सदस्यों की आवश्यकताओं की पूख़त करने में तो असफल होता ही है साथ ही जीवन के आपात क्षणों में जैसे– दुर्घटना, बीमारी, आदि के समय सुरक्षा देने में भी असफल रहता है। कभी–कभी निर्धनता, आपराधिक क्रियाओं को उत्पन्न करने का कार्य करती हैं। एक निर्धन व्यक्ति अपनी बेटी की शादी में दहेज देने में अपने को असमर्थ पाता है जिसकी पूख़त हेतु वह रिश्वत ले सकता है या गबन करता है। इसी प्रकार एक बच्चा, माता–पिता से जेब खर्च न प्राप्त होने की दशा में घर से पैसा चोरी करता है। गरीब परिवार का बच्चा, चिन्ता, माँ–बाप के झगड़े, हताशा, चिड़चिड़ापन से बचने के लिए घर से भाग जाता है और उसका अपराधी गिरोह में शामिल होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

## 14.5.5 गिरफ्तारी और सजा –

अधिकतर निम्न आय वर्ग के लोग ही गिरफ्तार होते हैं और सजा भुगतते हैं। परन्तु, ऐसा नहीं है कि मात्रा निम्न आय वर्ग वाले लोग ही अपराध करते हैं। बल्कि, गरीबों की तुलना में अमीर लोग, पुलिस और कानून व्यवस्था पर पैसे व शोहरत के बल पर काबू पा लेते हैं, जबकि गरीबों को बचाने वाला कोई भी नहीं होता और उन्हें कठोर दण्ड भुगतना पड़ता है।

उच्च आय वर्ग के बच्चों की सभी माँगों की पूख़त होती है, परन्तु निम्न आय वर्ग के बच्चे अपने मन में इच्छाओं को दबाए रखते हैं और उन अतृप्त इच्छाओं की पूख़त के लिए वे चोरी, डकैती, आदि करने लगते हैं और पकड़े जाने पर पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिए जाते हैं। कानून व्यवस्था में ऐसे लोगों के लिए कठोर दण्ड का प्रावधान है जिसके आधार पर उन्हें सजा सुनाई जाती है। अतः ऐसी स्थिति में कोई भी व्यक्ति जो अपराध या अपचार के मार्ग पर अग्रसर हो जाता है और कानून का पालन नहीं करता, दण्ड का भागी बन जाता है।

## 14.6 परिवार का सामाजिक परिवेश –

प्रत्येक व्यक्ति अपने आस–पास के लोगों को देखकर उनके जैसा ही व्यवहार करता है। एक बच्चे के आस–पास का परिवेश यदि साफ–सुथरा हो तो उस बच्चे में अच्छी आदतों का विकास होता है, परन्तु यदि आस–पास का परिवेश अच्छा न हो तो बच्चे का आचरण सही नहीं हो पाता है। यहाँ पर हम तीन प्रमुख कारकों की चर्चा करेंगे –

### 14.6.1 तंग बस्तियाँ (स्लम) –

शहरों में हर तरह की सुविधायें मिलने के कारण तथा रोजगार के लिए गाँवों से शहरों की ओर पलायन के कारण शहरों में आवासीय समस्या अत्यधिक है। रोजगार से कम आय वाले लोग शहरों में झुग्गी–झोंपड़ियों में रहने लगे एवं कम आमदनी होने के कारण वे अपने मूलभूत आवश्यकताओं की पूख़त नहीं कर पाते हैं। ये लोग भी शहरी व्यक्तियों की तरह भोग–विलास की वस्तुओं को प्राप्त करना चाहते हैं। इन्हें ऐसा लगता है कि कम पढ़े–लिखे होने के कारण इन वस्तुओं को अख़जत नहीं कर पाते हैं। ये लोग आनन्दपूर्वक जीवन यापन करने हेतु भोग–विलास के वस्तुओं को पाने के लिए कानून को तोड़कर गलत मार्ग पर निकल पड़ते हैं। इस प्रकार देखा जाए तो गन्दी बस्तियों से अपराध और अपचार का गहरा सम्बन्ध है, परन्तु ऐसा नहीं है कि वहाँ रहने वाले सभी लोग गलत मार्ग पर चलकर धनोपार्जन करते हैं।

### 14.6.2 कमाना और स्कूल जाना –

जिस प्रकार भोजन करना एक बच्चे के लिए आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार बच्चे का स्कूल जाना भी अत्यन्त आवश्यक है। विद्या के माध्यम से ही व्यक्तित्व का विकास होता है और रोजी–रोटी कमाने के माध्यमों की भी जानकारी प्राप्त होती है। शिक्षा के माध्यम से बच्चों में काफी परिवर्तन आते हैं, वह अपने पूर्वजों की तरह अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरित होते हैं। साधारणतया मध्यमवर्गीय परिवार के लोग अपने बच्चों को शिक्षा के दौरान कड़े संघर्ष और वर्तमान समय में आराम छोड़कर भविष्य को सुनहरा बनाने की प्रेरणा देते हैं परन्तु गरीब परिवार को ऐसी शिक्षा प्राप्त नहीं हो पाती, माता–पिता उन्हें स्कूल से निकाल लेते हैं एवं उन्हें अन्य कार्यों में लगाते हैं जिससे वे कुछ रोजगार कर सकें और उनका घर चल

सके। स्कूल छोड़ देने पर रोजगार हेतु कार्य करने के बाद जो शेष समय बचता है उसका वह सही उपयोग नहीं करते हैं एवं कुछ लोग गलत संगत में पड़ जाते हैं क्योंकि उन्हें सही एवं गलत की जानकारी देने वाला नहीं होता है।

## 14.6.3 जनसंचार माध्यमों का प्रभाव –

जनसंचार के माध्यम हमें शिक्षित करते हैं, कई प्रकार की जानकारी देकर हमें जागरूक बनाते हैं, परन्तु वर्तमान समय में इन माध्यमों से अच्छी चीजों को ग्रहण न कर, गलत चीजों को अपना रहे हैं। उदाहरणस्वरूप, समाचार पत्राों में ऐसे अनेकों मामलों के रिपोर्ट प्रकाशित हुए हैं जहाँ युवकों ने अपराध करने में उन्हीं तरीकों का प्रयोग किया है जिसे उसने किसी फिल्म में देखा है।

आजकल बच्चों और किशोरों का मन बुरी चीजों की ओर अधिक प्रभावित होता है। समाचारपत्राों/न्यूज चैनलों में जो सनसनीखेज खबरें होती हैं, उनमें अपराध करने के तरीकों का भी जिक्र होता है या दिखाया जाता है जिसे पढ़कर/देखकर बच्चों के मस्तिष्क पर भी कहीं न कहीं इसका प्रभाव हो रहा है। लडकियाँ भी गलत संगत में पड़कर, गलत लड़कों से दोस्ती कर लेती हैं जिससे उनके साथ कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती हैं जिससे उनके परिवार को शर्मशार होना पड़ता है। हमें जनसंचार माध्यमों से गलत चीजों को सीखने से बचना चाहिए बल्कि उसमें जो अच्छी बातें बतायी जाती हैं हमें उन्हें ग्रहण करना चाहिए।

## 14.7 अपराध और अपचार नियंत्राण की नीति –

अपराध और अपचार हमेशा से होते रहे हैं, यहाँ कानून और सामाजिक प्रथाओं का उल्लंघन होता रहा है तथा सामाजिक कल्याण में बाधा उत्पन्न होती रही है। इस नुकसान से समाज की रक्षा के लिए आदिकाल से ही विचारक चिन्तित रहते हैं।

इन अपराधिक प्रवृत्तियों को रोकने के लिए परिवार और विद्यालय जैसी संस्थाओं का विशेष योगदान है। इन संस्थाओं के लोग यदि सही प्रकार से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करें तो ऐसी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न नहीं होंगी, परन्तु यदि एक बच्चे या किशोर पर सही प्रकार से अंकुश नहीं लगाया गया तो वे विकृत मानसिकता वाले बन जाते हैं और अपराधिक आचरण की ओर अग्रसर हो जाते हैं। मुख्यतः अपराध इसलिए होते हैं क्योंकि कर्तव्यनिष्ठा के साथ उसका पालन नहीं किया जाता है। कानूनों को प्रभावशाली ढंग से लागू करने पर अपराधों को रोका जा सकता है। हमें समय और परिस्थितियों के अनुसार कानूनको बदलते रहना चाहिए। यदि अपराध का तुरन्त पता चल जाए और कानून व्यवस्था के तहत अदालत भी तुरन्त कार्यवाही करे और अपराधी को उचित दण्ड मिले तो सम्भव है कि अपराध की मात्राा में कमी होगी।

बच्चों और किशोरों के साथ ही साथ अपराधियों को भी शिक्षा दी जानी चाहिए और उन्हें विभिन्न प्रकार के लघु उद्योगों के बारे में पूर्ण विस्तार से जानकारी दी जानी चाहिए। इसके लिए प्रशिक्षित लोगों की अत्यन्त आवश्यकता होगी।

## 14.8 सारांश –

इस इकाई में हमने अपराध और अपचार की संक्षिप्त चर्चा की है। यहाँ हमने अपराध के साथ सामाजिक सम्पर्क, किशोर अपचार तथा अन्य अपराधों का वर्णन किया है। अपराध और अपचार के अन्तर्गत नहीं आने वाले मामलों में पुलिस रिपोर्ट और अपराध के कारणों की चर्चा की गई है। इसके पश्चात्, अपराध से सम्बन्धित कारक तथा पारिवारिक परिवेश व सामाजिक वातावरण की भी चर्चा की गई है तथा अन्त में अपराध और अपचार के नियंत्राण की नीतियों का भी वर्णन किया गया है। इस प्रकार हमने यहाँ पर सम्पूर्ण विषय को स्पष्ट रूप से समझाने का प्रयत्न किया है।

## 14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ –


1. आहूजा, राम, सामाजिक समस्याएँ, रावत प., नई दिल्ली, 2013
2. आहूजा, राम एवं मुकेश गुप्त, अपराध शास्त्रा का विवेचनात्मक अध्ययन, रावत प., नई दिल्ली, 2003
3. दूबे, सरला, सामाजिक विघटन, सरस्वती सदन, दिल्ली, 1974
4. सिंह, एस.डी., सामाजिक समस्याओं का समाजशास्त्रा, मिश्रा ट्रेडिंग, वाराणसी, 2003


## 14.10 बोध प्रश्न –

### (अ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

1. बाल अपराध क्या है? कानून व्यवस्था में इसकी क्या सजा दी गयी है?
2. पारिवारिक परिवेश किस प्रकार अपराधिक प्रवृत्ति को कम करने में सहायक है?
3. अपराध और अपचार को परिवार में बिखराव कैसे प्रभावित करता है?

### (ब) लघु उत्तरीय प्रश्न –

1. जनसंचार के माध्यम अपराध पर क्या प्रभाव डालते हैं?
2. भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत आने वाले अपराध क्या हैं?
3. 'माता–पिता के नियंत्राण में कमी अपराध को बढ़ावा देते हैं।' स्पष्ट कीजिए।
4. अपराध और अपचार नियंत्राण हेतु सुझाव दीजिए।

## (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. एक अपराधी को सामान्य सभ्य नागरिक बनाने के प्रयास को कहा जाता है –

   (क) पुनर्समाजीकरण (ख) विसमाजीकरण

   (ग) पूर्वाभ्यासी समाजीकरण (घ) निरर्थक प्रयास

2. एक बच्चे का विद्यालय से भाग जाना कहलाता है –

   (क) बाल अपराध (ख) पलायनशीलता

   (ग) अनुपस्थितता (घ) आवारागर्दी

3. 'प्रिंसिपल्स ऑफ क्रिमिनोलाजी' पुस्तक के लेखक हैं –

   (क) माउरर (ख) सदरलैण्ड

   (ग) कैरिस (घ) टैफ्ट

4. बोर्स्टन स्कूल किसके सुधार के लिए हैं –

   (क) किशोर अपचारी (ख) बंदी

   (ग) महिला अपराधी (घ) कोई नहीं

## 14.11 प्रश्नोत्तर –

**1. (क) 2. (ग) 3. (ख) 4. (क)**

# इकाई–15

# नशीले पदार्थों का व्यसन तथा मद्यपान

## इकाई की रूप रेखा


15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 व्यसन एवं मद्यपान की परिभाषा

15.3 एल्कोहल से सम्बन्धित तथ्य

15.4 नशीली दवाओं से सम्बन्धित तथ्य

15.5 आदत लगने की प्रक्रिया

15.6 आदत के कारण

15.7 शीली दवाएँ, अपराध और राजनीति

15.8 उपचार, पुनर्वास और रोकथाम

15.9 सारांश

15.10 संदर्भ ग्रन्थ

15.11 सम्बन्धित प्रश्न

(अ) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

15.12 प्रश्नोत्तर


## 15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- व्यसन और मद्यपान की परिभाषा को जान सकेंगे।
- नशीली दवाएँ क्या है? और व्यसन लगने की प्रक्रिया कैसे चलती है? इसे समझा सकेंगे।
- व्यसन के कारणों की व्याख्या कर सकेंगे।
- नशीली दवाओं के सेवन और अपराध के बीच संबन्ध को जान सकेंगे।
- उपचार एवं पुनर्वास कार्यक्रमों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

- शराब तथा नशीली दवाओं के दुरुपयोग की रोकथाम के महत्व को समझेंगे।

## 15.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम नशीली दवाओं और शराब के व्यसन के बारे में चर्चा करेंगे। नशीली दवा और शराब की लत दोनों गुमराह करने वाले कार्य हैं। इनका लत लगने पर व्यक्ति खुद पर नियंत्रण नहीं रख पाता है। विश्व की स्थिति से सम्बन्धित आंकड़ों की जाँच की जाय तो ज्ञात होता है कि शराब, चरस, अफीम आदि ऐसी कुछ मुख्य दवाएँ है, जिनका गलत इस्तेमाल किया जाता है। महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों पर इनके अधिक व्यसनी है। पिछले कुछ वर्षों से खासकर हिरोइन की लत लोगों में बहुत तेजी से बढ़ रही है। अधिकांश देशों में नशीली दवाओं का उपयोग होता है परन्तु मादक द्रव्यों का प्रयोग एशिया में विशेषकर चीन में अधिक किया जाता है। योरोप आदि देशों में केवल दवा के रूप में इसका थोड़ा बहुत प्रयोग होता है कुछ देशों में तो मादक द्रव्यों के सेवन को उत्साहित किया जाता है। उदाहरण के लिए दक्षिणी अमेरिका में मजदूरों के बीच कोकीन के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाता है जिससे उनका अधिक से अधिक शोषण किया जा सके।

## 15.2 व्यसन एवं मद्यपान की परिभाषा

व्यसन शब्द का तात्पर्य है मादक पदार्थों पर शारीरिक निर्भरता। शारीरिक निर्भरता से तात्पर्य है कि मादक पदार्थों के निरन्तर प्रयोग से शरीर उन पदार्थों की उपस्थिति से अपना सामंजस्य कर लेता है और यदि इनका प्रयोग नहीं किया जाता है तो शरीर को दर्द, बेचैनी और रूग्णत महसूस होती है। दूसरे शब्दों में, मादक द्रव्य व्यसन वह दशा है जिसमें शरीर को कार्य करते रहने लिए व्यसन की आवश्यकता महसूस होती है। यदि व्यसन को बन्द कर दिया जाय तो संचालन में बाधा होती है।

इस प्रकार से मादक द्रव्य का अर्थ शरीर का मादक पदार्थों को विषैले प्रभावों पर आश्रित इतना हो जाना कि उसके बिना वह नहीं रह पाता है। अनेक कारकों द्वारा यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान में नशे के लिए केवल शराब का ही प्रयोग नहीं किया जाता है। नशे के लिए अन्य वस्तुएँ जैसे–अफीम, गांजा, चरस, भांग, कोकीन, मारफीन, ब्राउन शुगर आदि का सेवन किया जाता है। शराब का प्रयोग तो लोग विशेष अवसरों पर करते है, किन्तु मादक द्रव्यों का प्रयोग प्रतिदिन किया जाता है। जब एक बार किसी भी कारण से मादक द्रव्यों का सेवन आरम्भ कर दिया जाता है तो वह एक आदत का रूप ले लेता है उसे ही व्यसन कहा जाता है। इसी प्रकार शराब को जो व्यक्ति प्रतिदिन अधिक मात्रा में सेवन करता है उसे मद्यपान व्यसनी कहा जाता है। सामान्यतः मदिरा का सेवन करना ही ''मद्यपान'' और जो व्यक्ति मदिरा का सेवन करता वह 'मद्यसेवी' कहलाता है।

**इलियट व मैरिल का मत** है कि थोड़ी मात्रा में और कभी शराब पीना नहीं माना जाता है। एक समस्या के रूप में अत्यधिक मात्रा में शराब पीना ही मद्यपान है। **विश्व स्वास्थ्य संगठन** के अनुसार ''मद्यपान नशे की वह स्थिति है, जो किसी भी रूप में मादक पदार्थ के निरन्तर सेवन से उत्पन्न होती है, जिससे थोड़ी देर के लिए नशा चढ़ता है या मनुष्य सदा ही नशे में चूर रहता है और जो व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिए हानिकारक है।'' फेयर चाइल्ड के अनुसार ''शराब की असामान्य एवं बुरी आदत ही मद्यपान है।''

## 15.3 एल्कोहल से सम्बन्धित तथ्य

एल्कोहल का प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि एल्कोहल कितनी मात्रा में ली गयी है। इसका प्रभाव इस बात पर भी निर्भर करता है कि शराब पीने वाला व्यक्ति कितनी जल्दी या धीरे–धीरे पीता है। शराब से एल्कोहल का प्रतिशत और कुछ हद तक मनोवैज्ञानिक कारणों का भी प्रभाव पड़ता है। जैसे कि वह कौन सी शराब पीता है, वह किसके साथ शराब पी रहा है यह भी महत्वपूर्ण है। वह कितने समय से शराब पी रहा है और पीने के बारे में उसका रवैया क्या है। एल्कोहल का सीधे दिमाग पर असर होता है। इससे दिमाग की क्रिया शीलता मंद पड़ जाती है। वह अवसाद के रूप में कार्य करता है यानी इससे शरीर की अनुक्रियाएं मंद पड़ जाती है। इस सम्बन्ध में एक गलत धारणा यह भी है कि यह उत्तेजक का काम करता है क्योंकि इससे झिझक समाप्त हो जाती है और पीने वाला अधिक प्रसन्न चित्त हो जाता है।

## 15.4 नशीली दवाओं से संबंधित तथ्य

नशीली दवाऐं सोचने की शक्ति या व्यवहार को प्रभावित करता है। मस्तिष्क में रासायनिक प्रतिक्रिया के प्रभाव से ऐसा होता है। उद्दीपक दवाओं से उत्तेजना या उल्लास की अनुभूति होती है। इनका प्रयोग आमतौर पर विद्यार्थी या खिलाड़ी करते हैं। इनके प्रयोग से अस्थाई रूप से उत्तेजना आ जाती है। कुछ दवाऐं शामक और अवसाद वर्ग में आती है क्योंकि इनके सेवन से हल्कापन और शान्ति का अनुभव होता है। ये गोलियों के रूप में मिलती हैं जैसे–वेलियम, लिब्रियम आदि। व्यक्ति मनोवैज्ञानिक रूप से इन दवाओं पर निर्भर हो जाता है। इनके सेवन का सबसे बड़ा खतरा यह है कि इसको लेने के कुछ समय बाद और अधिक तेज या प्रभावकारी दवा लेने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है।

## 15.5 आदत लगने की प्रक्रिया

अत्यधिक शराब पीने को आदत या लत कहा जाता है। शराबी व्यक्ति थोड़ी–थोड़ी देर पर शराब का सेवन करता है। वह इस हद तक पीता है कि वह समुदाय के सामान्य व्यवहार और सामाजिक मूल्यों की सीमा लांघ जाता है उसके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। उसकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति प्रभावित होती है। उसे नई–नई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

प्रारम्भ में व्यक्ति नशे की लत की वजह से नहीं पीता। वह केवल खुशी या गम के मौके पर पीता है। धीरे–धीरे अधिक शराब की जरूरत महसूस होती है। पीने की चर्चा अपराध बोध के कारण वह सभी से नहीं करता है। अपने नशे के दौरान किये गये कार्यों को वह भूल जाता है। यह निश्चेतनता की स्थिति होती है।

धीरे–धीरे उसे केवल पीने की चिंता होती है। वह यही सोचता रहता है कि कैसे, कब और कहाँ उसे फिर शराब पीने का अवसर मिले। शराब की मात्रा, समय और स्थान पर उसका कोई नियन्त्रण नहीं रहता है। इससे सामाजिक संबंध खराब होते हैं। साथ ही परिवार, व्यवसाय और वित्तीय समस्याऐं बढ़ जाती हैं।

## 15.6 आदत के कारण

आदत लगने का कोई एक कारण नहीं होता। पहले यह माना जाता था कि विशिष्ट प्रकार के लोग ही लत के शिकार होते है लेकिन ऐसा कोई नियम नहीं है। बच्चों के माता–पिता दोनों को किसी चीज की लत हो, तो बच्चो में उस व्यसन को लगने की सम्भावनाऐं बढ़ जाती है। ऐसा भी नहीं है कि सभी व्यसनी माता–पिता के बच्चे व्यसनी ही होंगे। ऐसा विश्वास किया जाता है कि शराब की लत को विकसित करने में वातावरण के साथ ही कई अन्य शारीरिक एवं सामाजिक कारणों का योगदान हो सकता है, जैसे सामाजिक मूल्यों के कमजोर होने पर व्यक्ति नियन्त्रण से स्वतन्त्र महसूस करता है और अपनी मर्जी से शराब पीना शुरू कर देता है। धीरे–धीरे उसे इसकी लत लग जाती है।

नशीली दवाओं के व्यसनी व्यक्ति व्यक्तित्व की गंभीर समस्याओं, अपूर्णता की भावना, निर्भरता, अलगाव और स्वाभिमान की कमी से ग्रस्त होते हैं। पहली बार नशीली दवाओं के सेवन से उन्हें आनंद की अनुभूति होती है। उसे प्रतिफल समझकर वह दवाओं की मात्रा निरन्तर बढ़ाता जाता है जिससे उसे इसकी लत या आदत लग जाती है। युवकों में देखा जाता है कि वयस्कों के लिए निर्धारित मानदण्डों और मूल्यों के प्रति विद्रोह के कारण नशीली दवा लेने लगते हैं।

समाजविज्ञान सिद्धान्तवादी इसकी अन्य व्याख्याऐं भी करते हैं। जो लोग तनाव सिद्धांत को मानते हैं उनके विचार से लोगों का नशीली दवाओं और शराब की ओर झुकाव इसलिए होता है क्योंकि उनके आसपास के वातावरण की सामाजिक परिस्थितियां उन्हें सफलता के पर्याप्त अवसर प्रदान नहीं करती हैं। यह बात विशेष रूप से उन वर्गों पर लागू होती है जो सामाजिक दृष्टि से वंचित होते हैं तथा सामाजिक– आर्थिक दृष्टि से निचले वर्ग में आते हैं।

## 15.7 नशीली दवाऐं, अपराध और राजनीति

विश्व में कानून द्वारा नशीली दवाओं के उत्पादन, खपत और बिक्री को नियमित किया जाता है। कानून द्वारा दवाओं के उपयोग को नियन्त्रित किया जाता है या उसके लिए कठोर सजा की व्यवस्था होती है। फिर भी दवा के उत्पादन और बिक्री का अवैध व्यापार एक लाभदायक व्यवसाय है। आपराधिक संगठन इन दवाओं के अवैध व्यापार को संचालित करते हैं।

नशीली दवाओं के प्रयोग से न केवल स्वास्थ्य खराब होता है बल्कि कानून और व्यवस्था तथा राष्ट्रीय सुरक्षा को भी खतरा होता है। सरकार जब सख्त कानून

बनाती है, तो नशीली दवाओं के व्यापारी अस्थाई तौर पर छिप जाते हैं। छिप कर ही अपना व्यवसाय चलाते रहते हैं। दवा के सेवन के परिणामस्वरूप होने वाले छोटे–मोटे और गम्भीर अपराध आम बात है। नशीली दवा की एक खुराक के लिए व्यक्ति चोरी भी करता है। अपना सामान बेच देता है, यहाँ तक कि वह हत्या तक कर सकता है क्योंकि दवा के प्रयोग से उसके शरीर की रासायनिक स्थिति ऐसी हो जाती है कि उसे उग्र बना देती है।

1985 में संयुक्त राष्ट्र ने भी स्वीकार किया कि नशीली दवाओं का व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नशीली दवाओं के सुनिश्चित मार्ग हैं। कुछ देशों में उत्पादन तथा कुछ देशों में उनको बेचा जाता है। विश्व के अनेक देश मिलकर इस अवैध व्यापार को रोकने का प्रयास कर रहे हैं। इसके लिए वे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यनीति बनाने तथा नशीली दवाओं के उत्पादन को हटाने के लिए प्रयत्नशील हैं। अधिक सख्त दंड और रोकथाम के कार्यक्रम तैयार कर नशीली दवाओं के प्रति जन–जागरण को शिक्षित करने का भी प्रयास किया जा रहा है।

## 15.8 उपचार, पुनर्वास और रोकथाम

व्यसनी व्यक्ति को शारीरिक बीमारी की तरह उपचार के लिए दवा की जरूरत होती है। मूल रूप से इस उपचार का उद्देश्य शराब और दूसरी तरह की नशीली दवाओं के इस्तेमाल को उस समय तक छुड़ाना होता, जब तक पुनः एक बार उसकी दवा या शराब लेने की इच्छा समाप्त न हो जाय। इस दौरान रोगी की डाक्टरी देख–रेख की जाती है। रोगी और उसके परिवार को मनोवैज्ञानिक सलाह दी जाती है। रोगी की मनोवृत्ति को बदलने, उसके रहन–सहन की ढंग में सुधार लाने और समाज में उसको स्थान दिलाने का प्रयास किया जाता है।

नशे के शिकार लोगों को शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक दृष्टि से इन परिस्थितियों का मुकाबला करने में मदद करना ही पुनर्वास की प्रक्रिया है। रोजगार दिलाने या उसमें शामिल करने का काम इस प्रक्रिया का महत्वपूर्ण पहलू है। रोकथाम के लिए कठोर कानून बनाना तथा शराब की बिक्री को नियन्त्रित करना जरूरी है। जन–जागरण को शिक्षित करना भी बहुत ही महत्वपूर्ण होगा।

## 15.9 सारांश

सामाजिक स्तर पर नशे को एक बुराई माना जाता है। व्यक्ति इसको छुपकर इस्तेमाल करता है परन्तु इसकी लत सामाजिक व्यवस्था को हानि पहुँचानी है। शिक्षित समाज में दवाओं के प्रयोग का बढ़ता स्तर एक समस्या का रूप ले चुका है जिसको सरकारी स्तर पर कठोर नियम लाकर नियन्त्रित करना चाहिए। व्यसनी के उपचार, पुनर्वास और रोकथाम के लिए सरकारी और गैर सरकारी दोनों ही स्तरों पर कार्यक्रम चलाये जा रहे है।

## 15.10 सन्दर्भ ग्रंथ


1. सिंह, मुरमीत, ''एल्कोहलिज्म इन इंडिया'' भालानी बुक डिपो मुंबई–1984
2. विद्याभूषण, सचदेवा, डी0आर0 – 'समाजशास्त्र के सिद्धान्त', किताब महल, 22–ए, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।

3. सिंह, एस0डी0, 'सामाजिक समस्याओं का समाजशास्त्र', मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी, 2003

4. आहूजा, राम, 'सामाजिक समस्याएं', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2013

5. दुबे सरला, 'सामाजिक विघटन', सरस्वती सदन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975

## 15.11 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. व्यसन क्या है?
2. मद्यपान का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
3. मद्यपान की आदत कैसे लगती है?
4. व्यसन को रोकने के उपाय क्या हैं?
5. पुर्नवास क्या है?

### (ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. व्यसन एवं मद्यपान की परिभाषा देकर व्याख्या कीजिए।
2. मद्यपान का भारतीय समाज पर पड़ता प्रभाव स्पष्ट कीजिए।
3. नशीली दवाओं के बारे में क्या जानते हैं?
4. व्यसनी को मुक्त कराने के उपाय तथा रोकथाम के लिए क्या–क्या कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं?

### (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. व्यसन का अर्थ है :

   (अ) नशीली दवाऐं (ब) मद्यपान

   (स) पदार्थों पर शारीरिक निर्भरता (द) सामाजिक मान्यता

2. नशीली दवाऐं क्या प्रभाव डालती हैं?

   (अ) कमजोर करती है (ब) मस्तिष्क को शिथिल कर देती है।

   (स) उत्तेजना पैदा करती है (द) सभी

3. अत्यधिक शराब पीने को क्या कहा जाता है?

(अ) लत (आदत) (ब) बुरा व्यवहार

(स) हीनता (द) अलगाव

4. व्यसनी का उपचार किया जाता है :

(अ) शारीरिक बीमारी की तरह (ब) नहीं किया जा सकता

(स) गम्भीर बीमारी की तरह (द) समाज द्वारा

5. नशीली दवाओं के अवैध व्यापार को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कब माना गया?

(अ) 1980 (ब) 1986

(स) 1985 (द) 1991

## 15.12 प्रश्नोत्तर

1. (स) 2. (द) 3. (अ) 4. (अ) 5. (स)

# इकाई–16

# हिंसा और आतंकवाद

## इकाई की रूप रेखा


16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 हिंसा और आतंकवाद की अवधारणा

16.3 हिंसा और आतंकवाद के कारण

16.4 हिंसा और कानून

16.5 राज्य हिंसा और मानव अधिकार

16.6 हिंसा से निपटने के उपाय

16.7 आतंकवाद से निपटने के उपाय

16.8 सारांश

16.9 संदर्भ ग्रन्थ

16.10 सम्बन्धित प्रश्न

(अ) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

16.11 प्रश्नोत्तर


## 16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- हिंसा और आतंकवाद की समाजशास्त्रीय अवधारणा को समझेंगे।
- हिंसा और आतंकवाद के कारणों को जान सकेंगे।
- हिंसा को रोकने हेतु कानूनों की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- आतंकवाद से निपटने के लिए लाये गये कानूनों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- हिंसा के कारणों को बदलते स्वरूप को जान सकेंगे।

## 16.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम भारत में हिंसा के पनपने के कारणों की चर्चा करेंगे। हिंसा की मुख्य वजहें सामाजिक न्याय व समानता की कमी, समस्याओं की सरकारी स्तर पर उपेक्षा तथा हकों पर एक वर्ग का वर्चस्व होना है। आतंकवाद की समाजशास्त्रीय विवेचना तथा इसके स्वरूप और कारणों की चर्चा भी करेंगे। हिंसा के स्वरूप जैसे क्षेत्रवाद, जातिवाद, धार्मिकता तथा इससे निपटने के उपायों के बारे में भी चर्चा करेंगे। आतंकवाद का मुकाबला करने के उपायों का उल्लेख किया जायेगा।

## 16.2 हिंसा और आतंकवाद की अवधारणा

हिंसा दूसरों की आजादी का अतिक्रमण है। किसी व्यक्ति या समूह से किसी ऐसी वस्तु को जिसे वे अपनी इच्छा से नहीं देना चाहते है, उसे प्राप्त करने के लिए शक्ति का प्रयोग करना हिंसा कहलाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से, हिंसा को ''मानवीय घटना'' के रूप में जाना जाता है। हिंसा वह घटना है जो आजादी और खुशी की विरोधी है। मैकेंजी के अध्ययन के अनुसार हिंसा ''व्यक्तियों या सम्पत्ति को चोट पहुँचने अथवा हानि करवाने के लिए शारीरिक शक्ति के प्रयोग, इस श्रेणी के अंतर्गत आने वाले कार्य अथवा व्यवहार, शारीरिक क्षति पहुँचाने के लिए व्यवहार, व्यक्तिगत आजादी में जबरन हस्तक्षेप है।''

हिंसा निम्न प्रकार की होती है–

1. दंगे करना, राजनीतिक हड़तालें
2. षड़्यंत्र, राजनीतिक हत्याऐं
3. आन्तरिक युद्ध जैसे सुसंगठित राजनीतिक हिंसा
4. सापेक्ष वंचना के कारण हिंसा
5. सामाजिक परिवर्तन से उत्पन्न हिंसा
6. क्षेत्रीय विषमता के कारण हिंसा
7. जातिगत एवं धार्मिक कारणों से हिंसा

समाज में हिंसा आदिकाल से विद्यमान रही है फिर भी, हाल के वर्षों में आतंकवाद की समस्या के उभरने से यह एक ज्वलन्त मुद्दा बन गया है। पिछले तीन दशकों के दौरान आतंकवाद की समस्या कई गुना बढ़ी है। आतंकवाद को इस प्रकार परिभाषित किया गया है : 'हिंसा अथवा धमकी के वे कार्य जिनका लक्ष्य किसी राज्य अथवा संगठन के हितों की क्षति पहुँचाने अथवा उससे नियायत पाने की मंशा हो।'' दूसरे प्रकार से ''आतंकवाद हिंसा की धमकी, हिंसा के व्यक्तिगत कार्य मुख्य रूप से आतंकित करने के लिए हिंसात्मक अभियान है।'' लैटिन भाषा

का शब्द टेरेरे (ज्मततमतम) से बना टेरर का अर्थ आतंक या भय है। शुरूआती दौर में टेरर या टेररिज्म का अर्थ भय और आतंक के सहारे किसी समूह द्वारा लक्ष्य प्राप्त कर लेने के बाद उसे स्वतन्त्रता सेनानी मान लिया जाता था। ठीक इसके विपरीत असफलता की स्थिति में उसे आतंकवादी माना जाता था। फिर भी सामान्य रूप से राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की गयी नियमित हिंसा ही आतंकवाद है। इज़रायल के पूर्व प्रधानमन्त्री के अनुसार राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भय पैदा करने हेतु जान बूझकर क्रमबद्ध रूप से निर्देशों को धमकी देना, उनकी हत्या कर देना आतंकवाद कहलाता है। इस परिभाषा को 1978 में येरूशलम में आयेाजित एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में मान्यता प्रदान की गयी।

## 16.3 हिंसा और आतंकवाद के कारण

हिंसा की क्षमता प्रकृति प्रदत्त है। सामाजिक परिस्थितियाँ निर्धारित करती है कि हम उस क्षमता का प्रयोग कैसे करते हैं। विश्व में आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन बहुत तेजी से हो रहा है, सैनिक सत्ता परिवर्तन, बगावत, युद्ध और हत्याऐं आम बात है।

आतंकवाद किसी हताश व कमजोर अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा संचालित हो सकता है या फिर युद्धरत लोगों द्वारा युद्ध के विभिन्न चरणों में तरह–तरह से उत्तेजना और उन्माद पैदा करने की कार्रवाइयों के रूप में। क्षेत्रीय विषमता और छोटी–छोटी राष्ट्रीयताओं के आत्मनिर्णय के अधिकार ऐसे प्रश्न है, जिन्हें हमारे जैसे बहुलतावादी बहुसांस्कृतिक राष्ट्रों की लोकतांत्रिक व्यवस्था समुचित तरीके से सम्बंधित नहीं करती और ऐसे में उनके निर्विकल्प आतंकवादी रास्ते को सहज ही एक विचारधारात्मक आधार मिल जाता है। बंचना एवं असंतोष के कारण हिंसा और आतंकवाद पैदा होता है। हिंसा के फलस्वरूप हड़ताल, बंद, प्रदर्शन के रूप में सामने आता है। यदि ये तरीके राज्य या सरकार का ध्यान आकर्षित नहीं कर सके तो गैर परंपरागत तरीके अपनाऐं जाने की सम्भावना हो सकती है। कभी–कभी इन मांगों का राजनीतिकरण हो जाता है। इन अवसरों पर हत्या, बैंक, डकैती, व्यक्तिगत सम्पत्ति की लूटपाट, अपहरण आदि तरीकों से असन्तोष को प्रदर्शित करते हैं।

## 16.4 हिंसा और कानून

हिंसा अत्यंत भय करने वाली है और कभी–कभी निन्दात्मक भी, परन्तु तब कम निन्दात्मक होती है। जब वह किसी समुदाय में लम्बे समय तक प्रचलित रही हो। ऐसा तब होता है जब इसे सामाजिक संस्थाओं या विचारधाराओं द्वारा संरक्षण प्रदान किया जाता है।

सामाजिक परिवर्तन के परिणाम स्वरूप समाज के अधिकारों के वितरण में असन्तुलन हो सकता है, इसलिए समाज में कुछ लोगों पर इस परिवर्तन का प्रतिकूल प्रभाव हो सकता है। असमान समाज में असन्तुलित विकास का अभिप्राय सामाजिक सुविधाओं में असमान अवसर है, इस कारण से समूहों और वर्गों में संघर्ष को बढ़ावा मिला।

इस प्रकार के भेदभाव को रोकने के लिए नियमनकारी कानूनों और संविधान के उपबन्धों से अधिक लाभ नहीं पहुँचा है। कश्मीर में आतंकवादी

गतिविधियां आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड आदि राज्यों में नक्सलवादी समस्या असंतुलित विकास के विरूद्ध लोगों द्वारा हथियार उठाने के उदाहरण है।

## 16.5 राज्य हिंसा और मानव अधिकार

राज्य के द्वारा जो हिंसा की जाती है, उसे वैधता प्रदान की जाती है। समय, स्थान और कुछ परिस्थितियों में हिंसा के कुछ रूपों को अनुमति प्रदान की जाती है। निरंकुश राज्य हिंसा को अपनी प्रणाली के एक अंग के रूप में प्रयोग करते हैं। राज्यों में संकट के समय नियन्त्रण में लाने के एक साधन के रूप में काम करता है। संकट के दौरान लोकतंत्रात्मक राज्यों में भी मौलिक अधिकारों को निलम्बित कर दिया जाता है और मानव अधिकार के लिए कोई स्थान नहीं रहता। परिस्थिति का आकलन आमतौर पर राज्य द्वारा ही किया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित मानवाधिकारों के सम्बन्ध में प्रस्तावना के अतिरिक्त 30 अनुच्छेद हैं। इन अधिकारों को मूल रूप में दो श्रेणी में बांटा गया है– राजनीतिक नागरिक अधिकार एवं आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकार। प्रथम श्रेणी में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, घूमने–फिरने की आजादी आदि अधिकार आते हैं। दूसरी श्रेणी में रोजगार का अधिकार, शिक्षा, न्यूनतम जीवन स्तर पाने का अधिकार कपड़ा, मकान और भोजन का अधिकार आता है। साथ ही विषम परिस्थितियों जैसे बीमारी, वृद्धावस्था अथवा शारीरिक अक्षमता आदि की स्थिति में राज्य से सुरक्षा एवं संस्था प्राप्त करने का अधिकार भी इसमें शामिल है। इन सब अधिकारों की रक्षा तभी संभव है, जब देश में उपयुक्त राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियां हों।

भारत में केन्द्र सरकार द्वारा इस दिशा में कई ठोस उपाय पिछले कुछ दशकों में गए हैं। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना, शिक्षा का अधिकार अधिनियम, प्रस्तावित खाद्य सुरक्षा कानून आदि इस दिशा में कुछ ठोस कदम है।

## 16.6 हिंसा से निपटने के उपाय

हिंसा से निपटने के लिए विश्व भर में विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किये गये, जैसे आतंकवाद के निवारण और दंडव्यवस्था के लिए 1937 में, राजनयिकों सहित अन्तर्राष्ट्रीय रूप से संरक्षित व्यक्तियों के विरूद्ध अपराध के निवारण हेतु 1973, टोक्यो सम्मेलन 1969 तथा हेग सम्मेलन आदि।

## 16.7 आतंकवाद से निपटने के उपाय

संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 2 (4) के अनुसार किसी देश की क्षेत्रीय अखंडता या राजनीतिक स्वतंत्रता के खिलाफ बल प्रयोग सर्वथा निषिद्ध है, अनुच्छेद 2 (7) के अनुसार मानवता के आधार के अलावा अन्य किसी भी कारण से

किसी राष्ट्र के आंतरिक मामलों में दखल देना निषिद्ध है। 1970 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा पारित प्रस्ताव में अन्तर्राष्ट्रीय सीमा का उल्लंघन, आतंकवादी गतिविधियों को संगठित करना आदि को प्रतिबन्धित किया गया है। आतंकवाद को जड़ से उखाड़ फेकना आसान कार्य नहीं है। किन्तु ऐसा भी नहीं है कि इसको निर्मूल ही नहीं किया जा सकता इसको निर्मूल करने के लिए दो प्रकार के अतिवादी उपायों का उल्लेख किया जा सकता है। (1) हिंसात्मक उपाय (2) अहिंसात्मक उपाय। हिंसात्मक उपाय के अन्तर्गत आतंकवाद को समाप्त करने के लिए हिंसा और शक्ति का प्रयोग करना अपरिहार्य है क्योंकि आतंकवादी संगठन हिंसात्मक दर्शन में विश्वास करते हैं। इसलिए इनको जड़ से उखाड़ फेकने के लिए, उन्हें समाप्त करने के लिए प्रतिहिंसा का सहारा लिया जा सकता है। आतंकवादी संगठनों को पनाह देने वाले लोगों तथा राष्ट्रों को नष्ट करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। आतंकवादियों के प्रशिक्षण केन्द्रों को ध्वस्त करने में कोई दोष नहीं है। हिंसात्मक उपाय के ठीक विपरीत अहिंसात्मक उपाय है। इस उपाय के अन्तर्गत हिंसात्मक शब्दावली में बात ही नहीं की जाती। परन्तु अहिंसा सरल वस्तु नहीं है। सच्ची अहिंसा का काम सदैव ही मुश्किल होता हैं। अहिंसावादियों का मत है कि 'हिंसा हिंसा से नहीं जाती, हिंसा अहिंसा से ही जाती है।'

## 16.8 सारांश

रोजगार, निर्धनता को दूर करने का सबसे बड़ा हथियार है इसको ध्यान रखते हुए विकास के कदमों को आगे बढ़ाते हुए हिंसा प्रभावित क्षेत्रों में युवा पेशेवरों को रोजगार युक्त योजनाओं से जोड़ना आवश्यक है। आतंकवाद से निपटने के लिए सरकारी तौर पर तैयार रहने एवं जन–जागरण को जागरूक बनाने की भी आवश्यकता है। बदलते परिदृश्य में भारत–पाकिस्तान दोनों एक दूसरे के समीप लाकर, आतंकवाद को खत्म करने में आसानी हो सकती है।

## 16.9 संदर्भ ग्रन्थ


1. सिंह, नौनिहाल, ''द वर्ल्ड ऑफ टेरोरिज्म'', नई दिल्ली, साउथ एशियन पब्लिशर, 1989.
2. सक्सेना, एन0एस0, ''टेरोरिज्म हिस्ट्री एण्ड फेक्ट्स इन द वर्ल्ड एण्ड इन इण्डिया'', नई दिल्ली, अभिनव पब्लिकेशन्स, 1985.
3. आहूजा, राम, ''सामाजिक समस्याऐं'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2013
4. सिंह, एस0डी0, सामाजिक समस्याओं का समाजशास्त्र, पब्लिकेशन्स मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी–2003


## 16.10 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. हिंसा क्या है?
2. आतंकवाद की परिभाषा दीजिए।
3. हिंसा एवं आतंकवाद के क्या कारण हैं?

4. आतंकवाद से निपटने के उपाय बताइयें।

## (ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. हिंसा एवं आतंकवाद के कारणों पर विस्तृत चर्चा कीजिए।
2. भारत में हिंसा के स्वरूप की चर्चा कीजिए तथा प्रभावित क्षेत्रों का उदाहरण दीजिए।
3. विश्व स्तर पर आतंकवाद के स्वरूप की चर्चा कीजिए।
4. हिंसा एवं आतंकवाद से निपटने के लिए सरकारी तौर पर क्या उपाय किये गये हैं?
5. हिंसा व कानून को स्पष्ट कीजिए।

## (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. हिंसा होती है

   (अ) दंगा (ब) हड़ताल

   (स) आन्तरिक युद्ध (द) सभी

2. अमेरिका में आतंकवाद की घटना घटी थी

   (अ) 10/11 (ब) 9/11

   (स) 10/12 (द) 8/7

3. भारत में आतंकवाद की घटना मुम्बई में कब घटी?

   (अ) 2010 (ब) 2005

   (स) 2008 (द) 2009

4. टेरेटे (ज्मततमतम) शब्द किस भाषा का है?

   (अ) लैटिन (ब) फ्रेंच

   (स) पुर्तगाली (द) हिन्दी

## 16.10 प्रश्नोत्तर

**1. (द) 2. (ब) 3. (स) 4. (अ)**

# DCESY-102
# भारत में सामाजिक समस्याएँ

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

## खण्ड – 5

## पहचान, महत्व और सामाजिक–न्याय–I

**इकाई – 17** **185–190**
बाल वर्ग

**इकाई – 18** **191–196**
युवा वर्ग

# उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

## उत्तर प्रदेश प्रयागराज

### परामर्श समिति

| | | |
|---|---|---|
| कुलपति | – | प्रो० के० एन० सिंह |
| कुलसचिव | – | डॉ० ए० के० गुप्ता |

### सम्पादक

1. प्रो. सोहन राम यादव
   विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
   बी० एच० यू० वाराणसी। – 221005
2. प्रो. जगदीश नारायण सिंह
   प्रोफेसर, समाजशास्त्र
   बी० एच० यू० वाराणसी। – 221005

### पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | डॉ० एम० एन० सिंह | – | पूर्व निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ० प्र० रा० ट० मु० वि० वि०, प्रयागराज |
| 2. | डॉ० इति तिवारी | – | प्रभारी, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ० प्र० रा० ट० मु० वि० वि०, प्रयागराज |
| 3. | रमेश चन्द्र यादव | – | शैक्षणिक परामर्शदाता, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र०रा०ट०मु०वि०वि०, प्रयागराज |

### DCESY-102 – भारत में सामाजिक समस्यायें

**लेखक**

| | | |
|---|---|---|
| रमेश चन्द्र यादव | – | शैक्षणिक परामर्शदाता, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र०रा०ट०मु०वि०वि०, प्रयागराज |
| डॉ. इति तिवारी | – | एसो० प्रोफेसर, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज। |
| प्रो. मोहम्मद सलीम | – | प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| प्रो. ए.के. पाण्डेय | – | प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| डॉ. अखिलेश कुमार राय | – | एसों. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, वसंत कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी। |
| डॉ. अरूणा कुमारी | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। |
| डॉ. सुस्मिता सिंह | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| डॉ. दिनेश कुमार सिंह | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। |

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज – 2023
ISBN- 978-93-83328-42-0
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

# खण्ड–5 पहचान महत्व व सामाजिक न्याय

## खण्ड परिचय :–

प्रस्तुत खण्ड की इकाई 19 महिलाओं की पहचान, महत्व व सामाजिक न्याय से सम्बन्धित है। इस इकाई में महिलाओं की स्थिति का कालक्रम अनुसार वर्णन तथा उनकी प्रस्थिति में सुधार के लिए, बनाए गये कानून व योजनाओं का वर्णन किया गया है। इकाई के अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थ सूची, इकाई से सम्बन्धित लघु उत्तरीय, दीर्घ उत्तरीय व वस्तुनिष्ठ प्रश्न भी दिए गए हैं।

खण्ड 5 की इकाई 20 वृद्धों के पहचान, महत्व व सामाजिक न्याय से सम्बन्धित है। इस इकाई में भारत में वृद्धों की स्थिति, उनकी प्रमुख समस्याओं उनकी स्थिति तथा सुधार के प्रयासों का वर्णन तथा साथ ही उनकी प्रस्थिति में सुधार के लिए सुझाव भी दिये गये हैं। इकाई के अन्त में साराँश, सन्दर्भ ग्रन्थ सूची लघु उत्तरीय, दीर्घ उत्तरीय व वस्तुनिष्ठ प्रश्न भी दिए गए हैं।

# इकाई–17

# बाल वर्ग

## इकाई की रूप रेखा


17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 जनसांख्यिकीय स्वरूप

17.3 बाल मजदूर

17.4 बाल अपराध

17.5 बाल अधिकार

17.6 बाल कल्याण से संबन्धित संगठन

17.7 राष्ट्रीय बाल नीति

17.8 सारांश

17.9 संदर्भ ग्रन्थ

17.10 सम्बन्धित प्रश्न

(अ) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

17.11 प्रश्नोत्तर


## 17.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- बाल जनसंख्या की संरचना और उनकी उत्तरजीविता से सम्बन्धित मुद्दो को समझ सकेंगे।
- बाल मजदूरी की अवधारणा एवं भारत में बाल मजदूरी के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- बाल अपराध की अवधारणा एवं बाल अपराधियों के सुधार के लिए किये गये उपायों को समझ सकेंगे।
- बाल कल्याण से सम्बन्धि संगठनों को समझ सकेंगे।

- भारत में बच्चों के लिए राष्ट्रीय नीति के बारे मे जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

## 17.1 प्रस्तावना

कुछ दशको में सम्पूर्ण विश्व में बच्चों के प्रति अगाध संवेदना व चेतना का प्रस्फुटन हुआ है , जिसके चलते बच्चों को जन्म के साथ ही कुछ विशिष्ट अधिकारों को प्रदत्त किए जाने के सम्बन्ध में स्वीकृति प्रदान की गई है। पं0 जवाहर लाल नेहरू ने कहा था – ''मैं देश के हर बच्चे की आँख में आने वाले हिन्दुस्तान की तस्वीर देखता हूँ।'' इस इकाई में, समकालीन भारत में बच्चों की सामाजिक समस्याओं की पहचान एवं उनके समाधान के कानूनों के बारे में जानकारी दी गयी है। लड़के एवं लड़कियों की बीच बढ़ते लिंगानुपात की चर्चा की गयी है। बच्चों की एक बड़ी जनसंख्या विभिन्न कार्यों में लगी हुई है जो कि बाल अपराध की ओर अग्रसर होने के कारण के रूप में दिरवती है। अपराधी –वृत्ति को रोकने के विभिन्न उपायों व अपराधियों के पुनर्वास के बारे में भी हमने चर्चा की है। अलग–अलग समय पर लागू किये गये कानूनों की जानकारी दी गयी है। इसमें विरव में बाल श्रमिकों के बारे मे बढ़ती दिलचस्पी के बारे में बताने का प्रयास किया गया है। विश्व में संगठित स्वयं सेवी संगठनों के बारे में चर्चा की गयी है। अन्त में भारतीय राष्ट्रीय नीति के बारे में बताया गया है।

## 17.2 जनसांख्यिकीय स्वरूप

बाल शब्द का अर्थ शारीरिक और मानसिक अपरिपक्वता के संदर्भ में प्रयुक्त होता है परन्तु व्यावहारिक रूप में बाल शब्द का अर्थ कालक्रमिक आयु से होता है। 15 वर्ष की आयु से कम हर व्यक्ति बाल कहलाता है।

जनगणना 2011 के आकड़ों के अनुसार देश में (0–14 वर्षीय) बच्चों की संख्या बढ़ती जा रही है 1981 में भारत की जनसंख्या में बच्चों की जनसंख्या 272 मिलियन (27 करोड़ 20 लाख) थी जो 1991 में 297.7 मिलियन (29 करोड़ 77 लाख) तक पहुँच गयी । 2011 में भारत की जनसंख्या में बच्चों का प्रतिशत (0–14) 30.8% रहा है जिसमें बालक वर्ग की जनसंख्या 18.82 करोड़ तथा बालिका वर्ग की जनसंख्या 17.13 करोड़ रही है।

## 17.3 बाल मजदूर

भारत में बच्चों से जुड़ी सबसे भयावह व विकराल समस्या बाल मजदूर की है। यह बच्चों के शोषण की एक सामाजिक बुराई है। बाल श्रमिकों को खतरनाक उद्योगों में लगाया जाता है। पटाखा उद्योग, कांच उद्योग और कालीन उद्योग आदि में जहां बच्चों की खपत ज्यादा होती है वही उन्हें हानिप्रद स्थितियों में काम करना पड़ता है। वे तमाम तरह की बीमारियों चर्म रोग, श्वास रोग व कुपोषण के

शिकार हो जाते है। घरेलू कामों में लगे बच्चों को जो अपने माता–पिता की खेती बाड़ी या घर के बाहर कामों में मदद करते हैं, कोई मजदूरी नहीं मिलती, परन्तु उनके काम से उनकी बचपन की गतिविधियों जैसे शिक्षा और मनोरंजन में बाधा पड़ती है। अतः बाल मजदूर की परिभाषा करते समय, वेतन पाने वाले और न वेतन पाने वाले दोनों कामों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। बच्चे बंधुआ मजदूरों के रूप में काम करते हैं। वे माता–पिता द्वारा किसी ऋण के बदले तब तक बंधक रख दिये जाते हैं जब तक कि ब्याज सहित ऋण की वसूली न हो जाए। कभी–कभी बच्चे के माता–पिता और मालिक के बीच एक निश्चित समय के लिए काम करवाने का अनुबंध होता है। बंधुआ मजदूरी प्रथा ग्रामीण और शहरी दोनों असंगठित क्षेत्रों में प्रचलित है। कानूनी तौर पर बंधुआ मजदूरी प्रथा समाप्त किया जा चुका है, परन्तु अभी भी हमारे देश के कई भागों में यह प्रथा प्रचलित है।

## 17.5 बाल अपराध

बाल अपराध को परिभाषित करने के लिए आयु एक महत्त्वपूर्ण घटक है। भारतीय कानून में यह आयु 18 वर्ष निश्चित की गई है। भारतीय पेनल कोड के अनुसार 7 वर्ष की आयु से कम उम्र के बच्चे द्वारा किया गया काम अपराध की श्रेणी में नहीं आता है। 7 से 18 वर्ष के बालकों को किशोर की श्रेणी में रखा गया है। इनके द्वारा किया गया गलत कार्य अपराध की श्रेणी में आता है। बाल अपराधियों का उपचार वयस्क अपराधियों से भिन्न तरीके से किया जाता है। किशोरों के मामलों को अनौपचारिक व सरल वातावरण में सुलझाने के लिए किशोर अदालतों का गठन किया गया है। इन अदालतों का नेतृत्व पूर्वकालिक विशेष मजिस्ट्रेटों द्वारा किया जाता है। किशोरों के अदालत में हथकड़ी या बेड़ी डालकर नहीं लाया जाता है। उनके मामलों की पैरवी वकीलों द्वारा नहीं बल्कि विशेष अधिकारियों जिन्हें परिवीक्षा अधिकारी कहते है, द्वारा की जाती है। बाल अपराधियों को सुधार गृह अर्थात 'रिमांड होम' में रखा जाता है।

## 17.5 बाल अधिकार

सभी बच्चे चाहे जो हो पर बिना किसी अपवाद के या जाति, रंग, लिंग भाषा, धर्म, राजनीति आदि किसी भेदभाव या अपनी और अपने परिवार की दूसरी स्थितियों के विभेदीकरण के बिना बच्चे अधिकारों के लिए अधिकृत है। 20 नवम्बर 1959 को संयुक्तराष्ट्र द्वारा अंगीकृत बाल अधिकारों की घोषणा, यह इस बात का पुनः समर्थन करती है कि बच्चे अपनी भलाई व समाज की भलाई के लिए अपने अधिकारों का उपभोग करें। यह माता–पिता, स्वेच्छिक संगठनों, अधिकारोंसे इन अधिकारों की पहचान एवं विधायी व अन्य उपायों द्वारा इनके अनुपालन के लिए प्रयास करने के लिए आह्वाहन करे।

i. बच्चों को जन्म से एक नाम एवं एक राष्ट्रीयता पाने का अधिकार होना चाहिए।

ii. बच्चों को सामाजिक सुरक्षा और उन्हें एक स्वस्थ वातावरण में बढ़ने और विकसित होने का अधिकार मिलना चाहिए।

iii. बच्चों को पर्याप्त पोषण, रहने का प्रबन्ध मनोरंजन और स्वास्थ्य सेवाओं का अधिकार मिलना चाहिए।

## 17.6 बाल कल्याण से सम्बन्धित संगठन

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सर्वप्रथम 1924 में जेनेवा घोषणा पत्र के अंतर्गत बच्चों के अधिकार को मान्यता देते हुए पांच सूत्रीय कार्यक्रम की घोषणा की गई। 1990 में आयोजित विश्व बाल सम्मेलन में विश्व के बच्चों की सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक तथा सांस्कृतिक स्थिति पर चर्चा की गई। बाल अधिकारिता के संरक्षण पर किए गए विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों के क्रम में अक्टूबर 1997 में ओस्लो (नार्वे) में बालश्रम पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसी क्रम में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा 1992 में इण्टरनेशनल प्रोग्राम ऑन इलीमेशन ऑफ चाइल्ड लेबर (आई.पी.ई.सी.) नामक कार्यक्रम शुरू किया गया जो दिसम्बर 2005 तक 86 देशों में संचालित होते हुए आज बाल उन्मूलन की दिशा में विश्व का सबसे बड़ा कार्यक्रम बन चुका है। संयुक्त राष्ट्र बाल निधि (यूनाईटेड नेशन्स चिल्ड्रेन फन्ड) की स्थापना 1946 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा किया गया जो युद्ध के बाल पीड़ितों को सहायता देने तथा युद्ध से प्रभावित देशों के बच्चों के स्वास्थ्य में सुधार करने के लिए किया गया। सार्क देशों ने बालिका निम्न स्थिति के प्रति जागरूकता तथाा उनके प्रति भेदभाव समाप्त करने के लिए सुधारात्मक उपयों की कार्य योजना बनाया। वर्ष 1990 दशक को सार्क देशों ने ''बालिका वर्ष'' घोषित किया।

## 17.7 राष्ट्रीय बाल नीति

भारत सरकार ने संसाधनों की उपलब्धता तथा देश में बच्चों की समस्याओं के परिणाम के आधार पर परिस्थिति के अनुकूल कार्यक्रमों द्वारा इनके अधिकारी के प्रति पहली बार तीसरी पंचवर्षीय योजना में सामाजिक कल्याण क्षेत्र के अन्तर्गत बाल विकास पर एक कार्यक्रम प्रारम्भ किया। वर्ष 1967 में भारत सरकार ने इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए और समस्याओं पर विचार करने के लिए एक समिति नियुक्त की। समिति ने बाल विकास के लिए एक व्यापक राष्ट्रीय नीति बनाने की आवश्यकता महसूस की तथा देश के सामाजिक और आर्थिक विकास के परिप्रेक्ष्य में बच्चों की आवश्यकताओं का समेकित उद्देश्य प्राप्त करने के लिए एक उच्च स्तरीय समिति का गठन करने का सुझाव दिया।

भारत सरकार ने 22 अगस्त 1974 को राष्ट्रीय बाल नीति पर एक प्रस्ताव पारित किया। प्रस्ताव में बच्चों को सर्वोपरि महत्व की राष्ट्रीय संपत्ति माना गया। मानव संसाधनों के विकास के लिए हमारी राष्ट्रीय योजनाओं में बच्चों के कार्यक्रमों को एक महत्वपूर्ण स्थान मिला। बच्चों को उनके जन्म से पूर्व तथा जन्म के बाद और विकास काल में उनके शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक विकास को सुरक्षित करने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाऐं गये –

(1) सभी बच्चों को एक व्यापक स्वास्थ्य कार्यक्रम में शामिल किया जाय।

(2) पोषण से सम्बन्धित कमियों को दूर किया जाय।

(3) गर्भवती महिलाओं के लिए कार्यक्रम बनाया जाय।

(4) 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को मुफ्त तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाय।

(5) सबको समान अवसर प्रदान करने की दृष्टि से समाज के कमजोर वर्ग के सभी बच्चों को विशेष सहायता प्रदान किया जाय।

## 17.8 सारांश

भारत में बालकों से जुड़ी अनेक समस्याएं है। खासतौर पर बाल श्रम, बच्चों की तस्करी व उनका यौन शोषण जैसी बड़ी समस्याएं देश के माथे पर कलंक जैसी है। इन समस्याओं से निपटने के लिए सरकारी तौर पर जो नियम व कानून बनाये गये, उनका कार्यवयन ठीक ढंग से करना ही इस कलंक से मुक्त हुआ जा सकता है। सामाजिक स्तर पर भी समाज के सदस्यों को बाल वर्ग को उनकी अच्छी शिक्षा, स्वास्थ्य आदि पर ध्यान देना जरूरी है।

## 17.9 संदर्भ ग्रन्थ


(1) मंडल, बी0बी0– चाइल्ड एण्ड ऐक्सन प्लैन फॉर डेवलपमेंट, उप्पल प्रकाशन ; नई दिल्ली–1990

(2) जोशी, उमा, ''चाइल्ड एव्यूज : ए डिसग्रेस इन अवर सोसाइटी'' द हिन्दुस्तान टाइम्स, जून 25, 1986

(3) केवलरमनी, सी0एस0, चाइल्ड एव्यूज, रॉवत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1992

(4) काटू, के0के0, वर्किंग चिल्ड्रेन इन इण्डिया, आफरेशनल रिसर्च ग्रुप बड़ौदा 1983, इंडियन जनरल ऑफ कमन्यूटी मेडसीन, 2002

(5) आहूजा, राम, सामाजिक समस्याएं, रावत पब्लिकेशन्स जयपुर, 2013


## 17.10 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) लघु उत्तरी प्रश्न

1. बाल वर्ग को स्पष्ट कीजिए।
2. बाल वर्ग का भारत में जनसंख्या स्वरूप क्या है?
3. बाल मजदूर की परिभाषा दीजिए।
4. बाल अपराध क्या है?
5. बाल कल्याण से सम्बन्धित दो संगठनों के नाम लिखिए।

### (ब) दीर्घ उत्तरी प्रश्न

1. भारत में बाल वर्ग की जनसंख्या के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
2. बाल अपराध के कारणों की विवेचना कीजिए।

3. भारत में बाल अधिकारों से सम्बन्धित प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।

4. भारत में बाल राष्ट्रीय नीति क्या है?

## (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारतीय जनसंख्या में बाल वर्ग का प्रतिशत क्या है?

   (अ) 25% (ब) 20%

   (स) 30.8% (द) 29.2%

2. बाल वर्ग की जनसंख्या को किस आयु में रखा जाता है?

   (अ) 0–7 (ब) 0–10

   (स) 7–14 (द) 0–14

3. बाल अपराध की आयु कितनी मानी जाती है?

   (अ) 10 (ब) 12

   (स) 20 (द) 18

4. किस वर्ष संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा बाल अधिकार की घोषणा की गई?

   (अ) 1950 (ब) 1955

   (स) 1959 (द) 1975

5. सार्क देशों द्वाराकिस दशक को बालिका दशक घोषित किया गया?

   (अ) 1980 (ब) 1970

   (स) 1990 (द) 2000

## 17.11 प्रश्नोत्तर

1. (स) 2. (द) 3. (द) 4. (स) 5. (स)

# इकाई–18

# युवा वर्ग

## इकाई की रूप रेखा


18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 युवा एवं युवा संस्कृति की परिभाषा

18.3 भारतीय जनसंख्या में युवा वर्ग

18.4 युवा असंतोष

18.5 युवा असंतोष

18.6 युवा वर्ग से सम्बन्धित समस्याएँ

18.7 सारांश

18.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

18.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

18.10 सम्बन्धित प्रश्न

(अ) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

18.11 प्रश्नोत्तर


## 18.0 उद्देश्य

इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- युवा की परिभाषा को समझ सकेंगे।
- युवा संस्कृति की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- भारत में युवा जनसंख्या की स्थिति से परिचित होंगे।
- युवा वर्ग के परम्परागत और परिवर्तनशील मूल्यों को जान सकेंगे।
- युवा असन्तोष के कारणों को जान सकेंगे।
- युवाओं के लिए बनाए गए कार्यक्रमों के बारे में जान सकेंगे।

## 18.1 प्रस्तावना

भारत में युवा वर्ग से सम्बन्धित समाजशास्त्रीय अध्ययनों में कई आयामों को शामिल किया गया है। युवा वर्ग को परिणात्मक एवं गुणात्मक दोनों तरह से परिभाषित किया गया है। गुणात्मक विवरण का आशय सामाजिक–सांस्कृतिक लक्षणों से है, परिणात्मक विवरण का आशय जनसंख्या में युवा वर्ग के अनुपात से है। गुणात्मक में शिक्षा, व्यवसाय, आय, जीवन–स्तर, शहरी–ग्रामीण जैसे सामाजिक–सांस्कृतिक लक्षण तथा परिणात्मक विवरण में जनसंख्या प्रतिशत, लिंग, आयु आदि आते हैं। इस इकाई में परम्परागत मूल्य पद्धति, असन्तोष, पहचान संकट से युवा वर्ग मे मतभेदों का वर्णन किया गया है। युवाओं से सम्बन्धित समस्याओं के बारे में भी चर्चा की गयी है इनकी समस्याओं से सम्बन्धित योजनाओं का विवरण दिया गया है।

## 18.2 युवा एवं युवा संस्कृति की परिभाषा

युवा शब्द नियत जनसंख्या के 15–24 वर्ष के आयु–वर्ग के व्यक्तियों की विशेषताओं की श्रृंखला का वर्णन करता है। कुछ लोगों का विचार है कि युवा एक जैविक प्रकृति के तत्वों द्वारा विशिष्ट अवस्था होती है जो बचपन और प्रौढ़ता के बीच मोटे तौर पर 15 और 24 वर्ष की आयु वर्ग में होते हैं।

पश्चिम के समाजशास्त्रियों ने बहुधा युवा संस्कृति को उप– सामाजिक पद्धति माना है जैसे कि अश्वेत संस्कृति, अमेरिकन– मैक्सिकन संस्कृति। भारत देश में युवा सामाजिक व्यवस्था के तत्वों से बहुत निकटता से जुड़े हुए हैं। इसलिए विदेशी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत युवा संस्कृति की अवधारणा को भारतीय समाजशास्त्री अनिच्छा से स्वीकार करते हैं। भारत में युवा वर्ग से सम्बन्धित समाजशास्त्रीय अध्ययनों में कई आयाम को शामिल किया गया है जैसे– जनसांख्यिकीय पहलू , सामाजिक पहलू , सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलू , आदि।

## 18.3 भारतीय जनसंख्या में युवा वर्ग

भारत में युवा वर्ग को 15 से 24 वर्ष की आयु वर्ग को माना जाता है। भारत की जनसंख्या में 15 से 24 आयु वर्ग की जनसंख्या सन् 2011 में 231.9 मिलियन रही 2001 में यह 190 मिलियन थी। कुल जनसंख्या में युवा वर्ग का प्रतिशत सन् 2011 में 19.2 प्रतिशत रहा। 2001 में 18.5 प्रतिशत था।

## 18.4 युवा वर्ग की बदलती संस्कृति

भारतीय समाज परम्परागत हिन्दू पद्धति में जीवन को चार अवस्थाओं में परिभाषित करता है जिसमें युवा अवस्था में कोई सत्ता प्राप्त नहीं थी। दूसरी

अवस्था में जैसे गृहस्थ में कुछ दायित्व दिये गये थे। भारतीय समाज में वृद्धों को सम्मान दिया जाता था। हिन्दू समाज में शिक्षा कुछ निश्चित जातियों तक ही सीमित थी। इसलिए सामाजिक–आर्थिक एवं व्यवसायिक गतिशीलता भी लगभग संकुचित थी। वर्तमान समय में इन मूल्यों की घटती महत्ता देखी जा सकती है। विशेषकर स्वतन्त्रता के पश्चात् बदलाव में तेजी आयी है।

मूल्यों में परिवर्तन लाने का महत्वपूर्ण कारक शिक्षा और पश्चिमीकरण का विकास था। नई विचार धाराओं और मूल्यों का संचार शिक्षा के माध्यम से किया गया। यह युवा वर्ग को परिवर्तन के लिए सुग्राही बनाती है। कई समाजशास्त्रीय अध्ययनों में इसका समर्थन किया गया है कि युवा विद्यार्थी परिवार, जाति, तर्कसंगति, धर्मनिरपेक्षता, समानता, सामाजिक न्याय, महिलाओं की स्थिति एवम् इसी तरह के अन्य क्षेत्रों में सामाजिक परिवर्तन के लिए बहुत उत्सुक है।

## 18.5 युवा असंतोष

जातीय, धार्मिक और भाषाई रूढ़ धाराओं के साथ–साथ हमारे देश में कई रूढ़िवद्ध छवियाँ भी विद्यमान हैं। एक ऐसी छवि हमारे युवाओं की भी हैं। उनकी रूढ़िवद्ध छवि यह है कि वे उग्रवादी, विद्रोही, क्रान्तिकारी, विवेकहीन और अपरिपक्व होते हैं। यह सही है कि युवा बाहरी प्रभावों के प्रति अति संवेदनशील होते हैं और दूसरों की नकल करते हैं, परन्तु इसका अर्थ नहीं होता कि युवा केवल विध्वंस, हत्या, आक्रमण और आतंकवाद में ही विश्वास करते हैं। जब समय में सामाजिक संरचनाओं और संस्थाओं से, सामाजिक व्यवस्था में विरोधाभास से, राजनीति और राजनीतिज्ञों से निर्णयों और निर्णय करने वालों से पूर्ण रूप से मोहभंग हो चुका है और जब प्रत्येक व्यक्ति जीवन की सभी स्थितियों के पतन से सामाजिक भेदभाव से, व्याप्त भ्रष्टाचार से, और अवैध साधनों द्वारा आर्थिक लाभों की खोज के प्रति सचेत है तो युवाओं से ही क्यों आशा की जाती है कि वे ही पारम्परिक नैतिक मूल्यों और ऊँचे आदर्शों के अनुसार चले? वे प्रेरणा के लिये तथाकथित आत्मघोषित नेताओं की तरफ देखे।

युवा जब देखते हैं कि उनके नेताओं की कथनी और करनी में एक चौड़ी खाई हैं तो उनमें नाराजगी उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इससे निराश और भ्रमित होकर कुण्ठित युवा एक सामाजिक विरोध प्रस्तुत करने के लिए आन्दोलन चलाते हैं। कुछ राजनीतिज्ञ इन आन्दोलनों में रूचि लेना आरम्भ कर देते हैं और कुछ मामलों में इन आन्दोलनों को जीवित रखने के लिए असामाजिक तत्वों की सहायता लेते हैं। जब वे असामाजिक तत्व लूट और आगजनी करते हैं तो इन विध्वंसक गतिविधियों के लिए युवाओं को दोषी ठहरा दिया जाता है। कुण्ठित युवा इस प्रकार और अधिक कुण्ठित हो जाते हैं और उनमें असन्तोष और भी अधिक बढ़ जाता है।

युवा असंतोष मोहभंग तथा नाराजी की स्थिति है। और सामाजिक असन्तोष एक गुट, समुदाय या समाज के सामूहिक मोहभंग, नाराजी और कुण्ठा की अभिव्यक्ति है। सामाजिक असन्तोष की अवधारणा में ''समाज में समूहों के आम विषयों से जो सामूहिक कुण्ठा और मोहभंग उत्पन्न होता है, उन पर बल दिया जाता है'' यह उस समय अभिव्यक्त होती है जबकि समाज में विद्यमान मानदंड युवाओं की दृष्टि में इतने अप्रभावी और हानिकारक हो जाते हैं कि वे उन पर आघात पहुंचाने लगते हैं और उनमें इतना मोहभंग व्याप्त हो जाता है कि उन्हें इन मानदंडों को परिवर्तित करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है।

## 18.6 युवा वर्ग से सम्बन्धित समस्याएं

देश में युवाओं की विशेषताओं में विद्यमान अन्तर के बावजूद कुछ समस्याओं की पहचान की जा सकती है। प्रथम जनसंख्या में ग्रामीण युवाओं का प्रतिशत काफी ऊँचा है। इस क्षेत्र को अपनी भूमिका निभाने के अवसर दिये जाने चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का अभाव एक बड़ी बाधा है जबकि शिक्षा स्वयं में ही सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन लाने में सक्षम है। यदि परिवर्तन लाना है तो यह अपेक्षा की जाती है कि शैक्षिक अवसरों की पूर्ति की जाए। इसलिए भावी कार्यक्रम अर्थात् शिक्षा नीतियाँ विद्यमान क्षेत्रीय और स्थानीय परंपराओं की तुलना में लचीली और अधिक सुग्राह्य होनी चाहिए।

प्रवीण विसारिया (1985) द्वारा किए गए अध्ययन के अनुसार यह सुस्पष्ट है कि विभिन्न क्षेत्रों में प्रयासों के बावजूद जनसंख्या में वृद्धि के साथ–साथ बेरोजगारी की मात्रा भी लगातार बढ़ती जा रही है। विसारिया ने यह निष्कर्ष निकाला कि शहरी क्षेत्रों में बेरोजगार महिलाओं से बेरोजगार युवकों की संख्या अधिक है। इस अध्ययन ने ग्रामीण पुरुषों की बेरोजगारी दर में सीमान्त वृद्धि का संकेत दिया है परन्तु ग्रामीण महिलाओं की बेरोजगारी दर में तेजी से कमी का उल्लेख किया है।

भारत में कुल बेरोजगार जनसंख्या में युवा अपेक्षाकृत काफी अधिक हैं। बेरोजगारी के कई कारण हैं और वे जनसंख्या वृद्धि, आर्थिक विकास और शिक्षा प्रसार से बहुत समय से जुड़े हुए है। युवाओं में बेरोजगारी वृद्धि के परिणाम स्वयं युवाओं के लिए और उनके परिवार के लिए होते है।

## 18.7 सारांश

पहचान जागरूकता की ऐसी भावना को दिखाती है जिसमें व्यक्ति जाने अथवा अनजाने में विद्यमान सामाजिक ढाँचे में अस्तित्व, मान्यता और प्रतिफल के लिए प्रयत्न करता है। सामाजिक व्यवस्था में स्थान पाने के लिए आजकल युवा वर्ग अपनी पहचान को परिभाषित करने की कोशिश करता है। अपने व्यक्तित्व की पहचान की खोज करने के बदले युवा पहचान संकट के विक्षोभ से गुजर रहा है। इसके फलस्वरूप वह अपर्याप्तता के निराकरण के रूप में पुनर्जागरण की ताकतों की ओर आकर्षित हो रहा है।

## 18.8 संदर्भ ग्रन्थ


(1) मैलो, आर0सी0– चेंज एंड इन इंडिया, मैकमिलन इंडिया : दिल्ली– 1978

(2) सच्चिदानन्द, सोशल चेंज इन इंडिया, कानसेट ; दिल्ली– 1988

(3) दामले, वाई0बी0–इंडिया सिंस इन्डिपेंडेस, विकास पब्लिकेशन, नई दिल्ली–1977

(4) आहूजा, राम, सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2013

## 18.10 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. युवा वर्ग की परिभाषा दीजिए।
2. भारत में युवा जनसंख्या कितनी है?
3. युवाओं में बढ़ते असन्तोष का कारण क्या है?
4. युवाओं से सम्बन्धित समस्याऐं क्या है?
5. ग्रामीण युवाओं की मुख्य समस्याऐं क्या है?
6. युवा वर्ग की बदलती संस्कृति से आप क्या समझते है?

### (ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में युवा वर्ग को परिभाषित कीजिए तथा जनसंख्या में उनका स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
2. युवा वर्ग की बदलती सोच सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवर्तन के लिए कितना उत्तरदायी है?
3. युवा वर्ग में व्याप्त असंतोष की व्याख्या कीजिए।

### (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. युवा वर्ग को किस आयु वर्ग में रखा जाता है?

   (अ) 10–25 (ब) 15–24

   (स) 20–25 (द) 25–30

2. भारत में युवा जनसंख्या प्रतिशत कितना है?

   (अ) 19.2 (ब) 20.2

   (स) 15.1 (द) 18.7

3. युवा असन्तोष का मुख्य कारण है–

   (अ) बेरोजगारी (ब) अशिक्षा

   (स) महगाई (द) सभी

4. शहरी क्षेत्र से ग्रामीण क्षेत्र में युवा जनसंख्या है।

   (अ) अधिक (ब) कम

   (स) बराबर (द) सभी

## 18.11 प्रश्नोत्तर

1. (ब) 2. (अ) 3. (द) 4. (अ)

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

# DCESY-102
# भारत में सामाजिक समस्याएँ

## खण्ड – 6

## पहचान, महत्व और सामाजिक–न्याय–I

**इकाई – 19** **199–206**
महिलायें

**इकाई – 20** **207–214**
वृद्ध

**इकाई – 21** **215–224**
अनुसूचित जातियाँ

**इकाई – 22** **225–234**
अनुसूचित जातियाँ

**इकाई – 23** **235–244**
अल्पसंख्यक

**इकाई – 24** **245–252**
नृजातीयताँ

# उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

## उत्तर प्रदेश प्रयागराज

### परामर्श समिति

| | | |
|---|---|---|
| कुलपति | – | प्रो० के० एन० सिंह |
| कुलसचिव | – | डॉ० ए० के० गुप्ता |

### सम्पादक

1. प्रो. सोहन राम यादव
   विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
   बी० एच० यू० वाराणसी। – 221005
2. प्रो. जगदीश नारायण सिंह
   प्रोफेसर, समाजशास्त्र
   बी० एच० यू० वाराणसी। – 221005

### पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | डॉ० एम० एन० सिंह | – | पूर्व निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ० प्र० रा० ट० मु० वि० वि०, प्रयागराज |
| 2. | डॉ० इति तिवारी | – | प्रभारी, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ० प्र० रा० ट० मु० वि० वि०, प्रयागराज |
| 3. | रमेश चन्द्र यादव | – | शैक्षणिक परामर्शदाता, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र०रा०ट०मु०वि०वि०, प्रयागराज |

### DCESY-102 – भारत में सामाजिक समस्यायें

**लेखक**

| | | |
|---|---|---|
| रमेश चन्द्र यादव | – | शैक्षणिक परामर्शदाता, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र०रा०ट०मु०वि०वि०, प्रयागराज |
| डॉ. इति तिवारी | – | एसो० प्रोफेसर, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज। |
| प्रो. मोहम्मद सलीम | – | प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| प्रो. ए.के. पाण्डेय | – | प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| डॉ. अखिलेश कुमार राय | – | एसों. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, वसंत कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी। |
| डॉ. अरूणा कुमारी | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। |
| डॉ. सुस्मिता सिंह | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| डॉ. दिनेश कुमार सिंह | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। |

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज – 2023

ISBN- 978-93-83328-42-0

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

# इकाई–19

# महिलायें

इकाई की रूपरेखा :


19.0. उद्देश्य

19.1. प्रस्तावना

19.2. समाजशास्त्रीय विश्लेषण

19.3. भारत में महिलाओं की स्थिति

19.3.1. प्राचीन भारत

19.3.2. मध्यकाल

19.3.3. ब्रिटिशकाल

19.3.4. स्वतन्त्र भारत

19.4. भारत में महिलाओं की निम्न स्थिति के कारण

19.5. महिला संरक्षण

19.5.1. संवैधानिक प्रावधान

19.5.2. महत्वपूर्ण कानून

19.5.3. कल्याणकारी नीतियाँ व योजनाएँ

19.6. संयुक्त राष्ट्र का मानवाधिकार घोषणा–पत्र

19.7. सारांश

19.8. सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

19.9. सम्बन्धित प्रश्न

(क) लघु–उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

19.10. प्रश्नोत्तर


## 19.0. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- महिलाओं के समाजशास्त्रीय विश्लेषण को समझ सकेंगे।

- विभिन्न काल में महिलाओं की स्थिति को जान सकेंगे?
- भारतीय समाज में महिलाओं की निम्न स्थित के कारणों से अवगत हो सकेंगे।
- महिला संरक्षण के लिए किये जा रहे प्रयासो से अवगत हो सकेंगे।
- भारत में महिलाओं को प्राप्त संवैधानिक संरक्षण को जान सकेंगे।
- संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार घोषणा पत्र से अवगत हो सकेंगे।

## 19.1. प्रस्तावना :

महिलाएँ आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करती हैं, परन्तु ऐतिहासिक रूप से इनकी स्थिति पर विचार करें तो दुनिया के लगभग सभी समाजों में ये पुरूषों से पिछड़ी रही हैं और इनके साथ अनेक निर्योग्यताएँ व समस्याएँ सम्बद्ध रही हैं। भारत में पितृसत्तात्मक व्यवस्था महिलाओं को पूर्णतः शक्तिहीन बना देती है। इसमें महिलाओं को पुरूषों की तुलना में निम्न होने, उन्हें साधनों तक पहुँचने से रोकने तथा निर्णय लेने वाले पदों में सहभागिता को सीमित करने जैसी परम्परागत निर्योग्यताएँ प्रमुख हैं।

वर्तमान समय में लिंग–असमानता जीवन का सार्वभौमिक तत्व बन गयी है। विश्व के प्रत्येक समाज विशेषकर विकासशील राष्ट्रों में महिलाओं के साथ समाज में प्रचलित रूढ़ियों व नियमों के आधार पर विभेद किया जाता है तथा पुरूषों के समान राजनीतिक व सामाजिक अधिकारों से वंचित किया जाता है, परन्तु आधुनिक समाज में जहाँ लिंग असमानता एक परम्परागत रूढ़ि है, वही इसे दूर करने के लिए 'मानवाधिकार व सामाजिक न्याय' जैसी अवधारणाएँ भी अवतरित हुई हैं। आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के अधिकारों व हितों को पुनः स्थापित करने के कार्यक्रम व नीतियाँ चल रही हैं। वैश्विक परिदृश्य में स्त्री–शक्ति को तार्किक रूप से प्रस्तुत व संरक्षित करने के लिए विकसित व विकासशील राष्ट्र सभी मिलकर प्रयत्नशील हैं।

## 19.2. समाजशास्त्रीय विश्लेषण :–

स्त्री–पुरूष असमानता या लिंग भेद को समाजशास्त्र उन तरीकों से अध्ययन करता है जिसमें स्त्रियों और पुरूषों की शारीरिक भिन्नताओं को संस्कृति और सामाजिक संरचना के सन्दर्भ में देखा जाता है और समझा जाता है। इन भिन्नताओं की सामाजिक व सांस्कृतिक आधार पर व्याख्या की जाती है जैसे :

1. स्त्रियों को कुछ विशेष स्त्रियोचित गुणों तथा समाजीकरण द्वारा एक 'लैंगिक पहचान' दी जाती है।

2. परम्परागत व आधुनिक दोनों समाजों में स्त्रियों के कार्य–कलापों को घर के निजी क्षेत्र तक सीमित कर बहुधा उन्हें सार्वजनिक जीवन से अलग रखा जाता है।

3. स्त्रियों के बारे में ऐसी गलत धारणाएँ प्रचलित हैं, जो स्त्रियों को कमजोर और पुरूषों पर भावात्मक रूप से आश्रित दर्शाती हैं।

## 19.3. भारत में महिलाओं की स्थिति :

परम्परागत भारत में **'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमंते तत्र देवता'** अर्थात जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ ईश्वर का वास होता है ऐसी मान्यता है। परन्तु भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति कभी अपने गरिमामय स्थिति में थी तो कभी नारकीय। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति निम्न स्तरों से होकर गुजरी है :

### 19.3.1. प्राचीन भारत :

परम्परागत भारत में महिलाओं को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त था। पातंजलि व कात्यायन जैसे विद्वानों का मत है कि प्रारम्भिक वैदिक काल में महिलाओं को पूर्ण शिक्षा प्रदान की जाती थी व ज्ञान के क्षेत्र में वह पुरूषों के समकक्ष थी। ऋग्वैदिक ऋचाओं के अनुसार स्त्रियों का विवाह परिपक्व आयु में होता था तथा उन्हें वर चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। उपनिषद् में इस काल की विदुषी महिलाओं जिनमें गार्गी व मैत्रेयी प्रमुख हैं का नाम उल्लेखनीय है जो महिलाओं को इस काल में प्राप्त उच्च प्रस्थिति व उनकी विद्वता का प्रतीक है।

प्रारम्भिक वैदिक काल में महिलाओं को समान अधिकार प्राप्त थे परन्तु लगभग 500 ईसा पूर्व में स्मृतियों विशेषकर मनुस्मृति के साथ महिलाओं की स्थिति निम्नतर होने लगी।

### 19.3.2. मध्यकाल :

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति मध्य युग में अत्यधिक शोचनीय थी। कुछ समुदायों में सती प्रथा, बाल विवाह व विधवा पुनर्विवाह निषेध जैसी कुरीतियाँ सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग बन गई थी। भारतीय उपमहाद्वीप में मुगल साम्राज्य की स्थापना ने पर्दा प्रथा को जन्म दिया। इस काल में राजस्थान में जौहर प्रथा व कुछ स्थानों पर देवदासी प्रथा भी प्रचलन में थी।

इन विपरीत परिस्थितियों के बावजूद कुछ महिलाओं ने राजनीति, साहित्य, शिक्षा व धर्म के क्षेत्रों में सफलता प्राप्त की जिनमें रजिया बेगम, दुर्गावती, चाँदबीबी व जीजाबाई प्रमुख हैं।

इसी काल में भक्ति आन्दोलनों का उद्भव हुआ। इन आन्दोलनों ने हिन्दू समाज में पुरूषों व महिलाओं के बीच सामाजिक न्याय व समानता की वकालत की।

### 19.3.3. ब्रिटिश काल :–

अंग्रेजी शासन के दौरान राजा राम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्या सागर व ज्योतिबा फूले आदि समाज सुधारकों ने महिलाओं के उत्थान के लिए व्यापक प्रयास किये। सन् 1829 में गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिक व राजा राम मोहन राय के प्रयास सती प्रथा उन्मूलन के कारण बने। ईश्वरचन्द्र विद्या सागर के संघर्ष के फलस्वरूप विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित हुआ।

सन् 1977 में महिलाओं के प्रथम प्रतिनिधिमण्डल ने राजनीतिक अधिकारों की माँग विदेश सचिव के समक्ष रखी। सन् 1927 में अखिल भारतीय महिला शिक्षा सम्मेलन का आयोजन पुणे में हुआ। सन् 1922 में मोहम्मद अली जिन्ना के प्रयासों से बाल विवाह निषेध अधिनियम पारित हुआ। इस अधिनियम के अनुसार एक लड़की के लिए विवाह की न्यूनतम आयु 14 वर्ष निर्धारित की गई। स्वतन्त्रता संग्राम में मैडम कामा, एनी बेसेन्ट, प्रीतिलता वाडेकर, विजय लक्ष्मी पंडित, राजकुमारी अमृतकौर तथा सूचेता कृपलानी आदि महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

### 19.3.4. स्वतन्त्र भारत :

आधुनिक भारत में महिलाएँ सभी तरह की गतिविधियों जैसे–शिक्षा, राजनीति, मीडिया, कला, संस्कृति, सेवा क्षेत्र, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी आदि में हिस्सा ले रही हैं। भारत में नारीवादी चेतना ने 1970 के दशक में रफ्तार पकड़ी। 1990 के दशक में अनेक स्वैच्छिक संगठन, स्व–सहायता समूह तथा सेल्फ इम्प्लायड वोमेन एसोसिएशन जैसी संस्थाओं नें महिलाओं के अधिकारों को प्रस्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत सरकार ने सन् 2001 को 'महिला सशक्तिकरण वर्ष' के रूप में घोषित किया तथा सन् 2001 में ही महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए 'राष्ट्रीय नीति' पारित की।

'अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस' के एक दिन बाद 9 मार्च सन् 2010 को राज्यसभा में महिला आरक्षण बिल को पारित किया गया जिसमें संसद तथा राज्य की विधान सभाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की गई।

## 19.4. भारत में महिलाओं की निम्न स्थिति के कारण :

भारत में महिलाओं की निम्न स्थिति के कारणों को निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है :

**(क) परम्परागत कारण :** हिन्दू धर्म ने विवादास्पद रूप से महिलाओं को अनेक निर्योग्यताओं से जोड़ा है। विवाह व गृहस्थ आश्रम के द्वारा उनके उनके अधिकारों का परिसीमन किया गया है। अनुलोम व कुलीन विवाह

की मान्यताएँ, संयुक्त परिवार व्यवस्था व पितृसत्तात्मकता के नियमों ने महिलाओं की स्थिति को निम्न स्थिति में पहुँचा दिया।

**(ख) आधुनिक कारण :** आधुनिक समाज में महिला की पुरूषों पर निर्भरता, उनमें व्याप्त परम्परागत रूढ़ियाँ, व्यापक अशिक्षा और राज्य द्वारा उनके सशक्तिकरण के लिये किये जाने वाले प्रयासों की कमियों के कारण उनकी स्थिति में बहुत सुधार नहीं हो पाया है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने महिलाओं को आज उपभोग की वस्तु के रूप में प्रचारित किया है, जिससे उनकी स्थिति निम्न बनी हुई है। अज्ञानता व उदासीनता के कारण वह आज भी स्वयं के लिए बने संरक्षणात्मक कानून व कार्यक्रमों से लाभान्वित नहीं हो पाती है।

## 19.5. महिला संरक्षण :–

भारत में महिलाओं की स्थिति सुधार के प्रयासों को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

**195.1. संवैधानिक कानून :** भारतीय संविधान में महिलाओं के हित के लिए निम्नलिखित प्रावधान बनाये गये हैं :

**(i)** समानता का अधिकार – अनुच्छेद 14

**(ii)** राज्य द्वारा भेदभाव ना किया जाना – अनुच्छेद 15(1)

**(iii)** अवसर की समानता – अनुच्छेद 16

**(iv)** समान कार्य के लिए समान वेतन– अनुच्छेद 39(घ)

**(v)** राज्य द्वारा महिलाओं व बच्चों के पक्ष में विशेष प्रावधान बनाने का अधिकार – अनुच्छेद 15(3)

**(vi)** महिलाओं की गरिमा के लिए अपमानजनक प्रथाओं का परित्याग – अनुच्छेद 51(ए)ई

**(vii)** कार्य की उचित व मानवीय परिस्थितियाँ निर्मित करने व प्रसूति सहायता के लिए राज्य द्वारा प्रावधानों को तैयार करने का अधिकार – अनुच्छेद 42

### 19.5.2. महत्वपूर्ण कानून :

महिलाओं के संरक्षण के लिए कुछ महत्वपूर्ण कानूनों का निर्माण किया गया जिससे समाज में बाध्यताकारी रूप से महिलाओं की स्थिति में सुधार का वातावरण निर्मित किया जा सके। कुछ प्रमुख कानून इस प्रकार हैं :

बाल विवाह निषेध अधिनियम 1928, सती प्रथा निषेध अधिनियम 1929, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, 2005, हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, हिन्दू अवयस्कता व संरक्षण अधिनियम 1990, दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961, 1986, 2003, घरेलू हिंसा अधिनियम 2005, फैक्ट्री अधिनियम 2005।

### 19.5.3. कल्याणकारी नीतियाँ व योजनाएँ :–

महिलाओं के सन्दर्भ में राज्य की विकास नीतियों व योजनाओं को मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा जा सकता है :

1. कल्याणोन्मुखी विकास (1960–1975 तक)
2. विकास में एकीकरण (1975–195 तक)
3. महिला सशक्तिकरण (1985 से अब तक)

इन नीतियों व योजनाओं का प्रमुख उददे्श्य देश में महिला शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा व सहभागिता सुनिश्चित करना तथा ऐसे वातावरण का निर्माण करना है, जिसमें वे स्वयं सामाजिक, आर्थिक नीतियाँ बना सके। इसके द्वारा भेदभाव को दूर करने हेतु सामाजिक व आर्थिक नीतियाँ बन सकेगी व महिलाये मानवाधिकार के उपयोग में सक्षम हो पायेगी। इन नीतियों का प्रमुख उद्देश्य महिलाओं को समाज में समान भागीदारी के लिए प्रोत्साहित करके अपने प्रति हो रहे अपराधों व अन्याय के लिए जागरूक करना व उनके प्रतिकार के लिए सक्षम बनाना है।

## 19.6. संयुक्त राष्ट्र का मानवाधिकार घोषणा पत्र :–

1975 में 'संयुक्त राष्ट्र संघ' द्वारा तृतीय विकास दशक को 'महिला दशक' घोषित किया गया। इसके परिणामस्वरूप विश्व के सभी राष्ट्रों में महिला सम्मेलन हुए, विशेष योजनाएँ व कार्यक्रम बनाये गये। यह सब महिलाओं की स्थिति के प्रति एक नई जागरूकता पैदा करने के लिए किया गया। 1970–1975 से पहले तक यह धारणा थी कि विकास की प्रक्रिया महिला व पुरूष को एक समान प्रभावित करती है तथा यह भी माना जाता था कि महिलाओं को लाभकारी विकास प्रक्रियाओं में बिना ढाँचागत परिवर्तन के शामिल किया जा सकता है। परिणामस्वरूप समाज का आर्थिक विकास तो हुआ पर सामाजिक विकास नहीं हुआ। यहीं से 'महिलाओं के लिए विकास' की अवधारणा का विकास हुआ।

## 19.7. सारांश :–

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति कलाक्रमानुसार परिवर्तित होती रही है। उनके प्रति अनेक रूढ़िवादी परम्पराएँ प्रचलित रही। इसके विपरीत उनके कल्याण के लिए भी व्यापक प्रयास किये गये। फलस्वरूप नारी सशक्त तो हुई पर पूर्ण स्वतन्त्रता व अधिकार की प्राप्ति का लक्ष्य प्राप्त करना अभी बाकी है। 21वीं शताब्दी में परिवर्तन व संक्रमण के लक्षण दिखने लगे हैं जो नारी की गरिमामय स्थिति में पुनः स्थापित करने को तैयार हैं।

## 19.8. सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. गणेशमूति, वी0एन0, 'वोमेन इम्पॉवरमेन्ट इन इण्डिया' (सोशल, इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल), 2008.

2. देसाई, नीरा, 'ए डीकेड ऑफ वोमेन्स मूवमेंट इन इण्डिया' 1988.

3. देसाई, नीरा, 'वोमेन इन मार्डन इण्डिया' 1977.

4. आहूजा, राम, 'भारतीय सामाजिक समस्याएँ' 2000.

## 19.9. सम्बन्धित प्रश्न :

### (क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्राचीन काल में महिलाओं की स्थिति पर टिप्पणी कीजिए।
2. महिलाओं से सम्बन्धित पाँच प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।
3. भारत में महिलाओं की निम्न स्थिति के कारण बतायें।
4. संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार घोषणा पत्र से आप क्या समझते हैं?

### (ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

1. भारत में विभिन्न कालों में महिलाओं की स्थिति का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
2. भारत में महिलाओं की निम्न स्थिति के परम्परागत व आधुनिक कारणों का वर्णन कीजिए।
3. भारतीय महिलाओं की प्राप्त संवैधानिक व कानूनी अधिकारों की व्याख्या कीजिए।
4. महिलाओं का समाजशास्त्रीय विश्लेषण कीजिए।
5. भारत में महिला सशक्तिकरण पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

### (ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. किस काल में महिलाओं की स्थिति उच्च रही है?

   (क) प्राचीन काल (ख) मध्यकाल

   (ग) ब्रिटिश काल (घ) स्मृति काल

2. 'संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार घोषणा पत्र' कब लागू हुआ?

   (क) सन् 1960 (ख) सन् 1920

   (ग) सन् 1975 (घ) सन् 1955

3. 'अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस' कब मनाया जाता है?

   (क) 10 जनवरी (ख) 8 मार्च

   (ग) 25 फरवरी (घ) 9 दिसम्बर

4. भारतीय समाज व्यवस्था का स्वरूप क्या रहा है?

   (क) मातृसत्तात्मक (ख) मिश्रित

   (ग) पितृसत्तात्मक (घ) इनमें से कोई नहीं

5. भारत सरकार ने महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित किया –

(क) सन् 2010 (ख) सन् 2012

(ग) सन् 1985 (घ) सन् 1990

6. महिला आरक्षण बिल कब पारित हुआ?

(क) सन् 2010 (ख) सन् 2012

(ग) सन् 1985 (घ) सन् 1990

7. भारतीय संसद में महिला आरक्षण का प्रतिशत क्या है?

(क) 27% (ख) 33 %

(ग) 52% (घ) 15 %

8. सती प्रथा निषेध अधिनियम कब पारित हुआ?

(क) सन् 1929 (ख) सन् 1918

(ग) सन् 1916 (घ) सन् 1928

9. भक्ति आन्दोलन का उद्‌भव किस काल में हुआ?

(क) प्राचीनकाल (ख) ब्रिटिशकाल

(ग) मध्यकाल (घ) स्मृति काल

10. समानता का अधिकार वर्णित है –

(क) अनुच्छेद 14 (ख) अनुच्छेद 15

(ग) अनुच्छेद 46 (घ) अनुच्छेद 27

## 19.10. प्रश्नोत्तर :

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 1. (क) | 2. (ग) | 3. (ख) | 4. (ग) | 5. (घ) |
| 6. (क) | 7. (ख) | 8. (घ) | 9. (ग) | 10. (क) |

# इकाई–20

# वृद्ध

इकाई की रूपरेखा :


20.0. उद्देश्य

20.1. प्रस्तावना

20.2. समाजशास्त्रीय विश्लेषण

20.3. भारत में वृद्धों की स्थिति

20.4. वृद्धों की समस्याएँ

20.4.1. पारिवारिक समस्याएँ

20.4.2. स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ :–

20.4.3. आर्थिक समस्याएँ :–

20.4.4. सामाजिक व सांस्कृतिक सामंजस्य की समस्या :–

20.4.5. मनोवैज्ञानिक सामंजस्य की समस्या :–

20.5 भारत में वृद्धों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ व कानून

20.6 वृद्धों की समस्याओं के समाधान के लिए सुझाव

20.7 सारांश

20.8 सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

20.9 सम्बन्धित प्रश्न

(क) लघु–उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

20.10 प्रश्नोत्तर


## 20.0. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- वृद्धों के समाजशास्त्रीय विश्लेषण को समझ सकेंगे।
- भारत में वृद्धों की स्थिति को जान सकेंगे।
- वृद्धों की समस्याओं से अवगत हो सकेंगे।

- वृद्धों के लिए कल्याणकारी योजनाओं व कानून को जान सकेंगे।
- वृद्धावस्था से जुड़ी समस्याओं के समाधान में सुझाव दे सकेंगे।

## 20.1. प्रस्तावना :

वृद्धावस्था मानव विकास की ऐसी अवस्था है, जिसमें उसकी इन्द्रियाँ कमजोर हो जाती हैं तथा व्यक्ति की बहुत सी क्षमताएँ घट जाती हैं। इसके परिणामस्वरूप उसके सामने अनेक समस्याएँ आती हैं, जो उसके जीवन को निराशापूर्ण बना देती हैं। भारत में उस व्यक्ति को वृद्ध माना जाता है जिसकी आयु 60 वर्ष से अधिक हो।

विगत दो दशकों में वृद्धावस्था विश्व के समक्ष एक प्रमुख समस्या के रूप में उभरी है, इसीलिए 'संयुक्त राष्ट्र संघ' द्वारा पिछली शताब्दी का अन्तिम वर्ष अर्थात् 1999 'वृद्धों का अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष' के रूप में मनाया गया। इसका उद्देश्य सामान्य जनता में वृद्धावस्था की समस्याओं के प्रति जागरूकता पैदा करना तथा एक ऐसे समाज के निर्माण हेतु कदम उठाना था, जिसमें युवाओं द्वारा वृद्धों की समस्याओं का समाधान हो तथा उनमें परस्पर सहयोग का सम्बन्ध बन सके। 1 अक्टूबर, 'वृद्ध दिवस' के रूप में मनाया जाता है। भारत में एक ओर जहाँ वृद्धों की संख्या तेजी से बढ़ रही है वही दूसरी ओर औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण व पश्चिमीकरण के परिणामस्वरूप बच्चों व अभिभावकों को जोड़े रखने वाले पुराने संस्कार की जगह नई स्वतन्त्र व स्वकेन्द्रित सोच का उद्भव हुआ है। परम्पराओं व विचारधारा में आधुनिक परिवर्तन के कारण वृद्धों की स्थिति समाज में दयनीय स्थिति पर पहुँच गई है। उपरोक्त कारणों से ही आज राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वृद्धों की समस्याओं के समाधान के प्रयास किये जा रहे हैं।

## 20.2. समाजशास्त्रीय विश्लेषण :–

वृद्ध बनने की शारीरिक प्रक्रिया के अनेक सामाजिक व सांस्कृतिक आयाम हैं जो बहुधा जैविक अपरिहार्यता को भी प्रभावित करते हैं। आयु एक सांस्कृतिक कोटि है और इसका अर्थ और इसकी महत्ता ऐतिहासिक दृष्टि से और विभिन्न संस्कृतियों, दोनों में बदलती रहती है। इसी दृष्टि से समाजशास्त्र में एक नई शाखा का सूत्रपात हुआ जिसे 'वृद्धावस्था का समाजशास्त्र' का नाम दिया गया।

## 20.3. भारत में वृद्धों की स्थिति

सन् 2001 में भारत की जनसंख्या का 7.4% वृद्ध थे। जिसमें पुरूषों का प्रतिशत 7.1 तथा महिलाओं का 7.8 था। भारत में वृद्धों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। सम्भावना है कि सन् 2025 में इनका प्रतिशत 12.4 हो जायेगा।

भारत में 65% वृद्ध अपनी जीविका व रखरखाव के लिए दूसरों पर निर्भर हैं। सन् 2007–2008 ने केवल 50% वृद्ध पुरूष व 20% वृद्ध महिलायें ऐसी थीं, जिन्हें औपचारिक शिक्षा प्राप्त थी। 65% ग्रामीण व 55% नगरीय वृद्ध एक या अधिक व्याधियों से ग्रसित हैं, जिसमें प्रमुख Loco Motor Disability है। 75% पुरूष व 40% वृद्ध महिलायें अपने जीवन साथी के साथ निवास करते हैं। भारत की 2011 की जनगणना पर आधारित उपरोक्त विवरण से भारत में वृद्धों की स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

## 20.4. वृद्धों की समस्याएँ

वर्तमान में जीवन–प्रत्याशा के बढ़ने से वृद्धों की संख्या में निरन्तर बृद्धि हो रही है। सामान्यतः वृद्धों की आमदनी का कोई नियमित साधन नहीं होता अर्थात उन्हें प्रोवीडेण्ड फण्ड, ग्रेच्यूटी तथा बीमा की सुविधा उपलब्ध नहीं होती तथा औपचारिक या अनौपचारिक रूप से सेवानिवृत्ति के बाद उनके लिए कोई सामाजिक सुरक्षा नहीं होती। वृद्धावस्था के कारण कई महत्वपूर्ण परिणाम सामने आते हैं। सूक्ष्म स्तर पर इसका प्रभाव परिवार तथा व्यक्ति पर तथा बृहद स्तर पर सम्पूर्ण राष्ट्र को प्रभावित करता है। भारत में वृद्धों की प्रमुख समस्यायें निम्नलिखित हैं –

### 20.4.1. पारिवारिक समस्याएँ :–

वृद्धजनों की सबसे प्रमुख समस्या परिवार में उनके सामन्जस्य की है। प्रायः यह देखा जाता है कि परिवार के सदस्यों के द्वारा वृद्धों की उचित देखभाल नहीं की जाती। उपेक्षा के कारण धीरे–धीरे वृद्धजन परिवार से कटने लगते हैं। परिवार द्वारा उसकी उपेक्षा वृद्धों की समस्या को कई गुना बढ़ा देती है। जैसे–जैसे भारत में संयुक्त परिवारों का विघटन होता जा रहा है, वृद्धों की समस्याएँ बढ़ती जा रही है।

### 20.4.2. स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ :–

वृद्धों की दूसरी बड़ी समस्या स्वास्थ्य से सम्बन्धित है। वृद्धावस्था में इन्द्रियाँ कमजोर होने के कारण आँखों की रोशनी कम होना, जोड़ों में दर्द होना, श्रवण क्षमता का घटना, शारीरिक गतिशीलता में कमी होना व रोग प्रतिरोधक क्षमता के कम हो जाने की समस्याएँ सामान्यतः सभी वृद्धों में व्याप्त है।

### 20.4.3. आर्थिक समस्याएँ :–

वृद्धों की तीसरी प्रमुख समस्या अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाने की है। भारत में 40% से अधिक वृद्ध गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। वृद्धों के पास आय का कोई स्त्रोत नहीं है, इसमें केवल वे वृद्ध अपवाद हैं, जो पेंशन प्राप्त करते हैं। इस स्थिति में भी सामान्यतः यह देखा जाता है कि वृद्ध अपनी पेंशन को अपनी आवश्यकतानुसार खर्च नहीं कर पाते हैं।

### 20.4.4. सामाजिक व सांस्कृतिक सामंजस्य की समस्या :–

औद्योगीकरण व नगरीकरण के परिणामस्वरूप भारत की संयुक्त परिवार प्रणाली कमजोर हो गई है। आधुनिक परिदृश्य में वृद्धजन परिवार व समाज में

अवांछनीय हो गए हैं, जिससे उनमें अकेलेपन व असुरक्षा की भावना विकसित हो जाती है। उपरोक्त स्थिति में वृद्ध स्वयं को अस्तित्वहीन समझने लगते हैं तथा तनाव से ग्रसित हो जाते हैं। इस स्थित में उनका जीवन और कष्टकर हो जाता है।

### 20.4.5. मनोवैज्ञानिक सामंजस्य की समस्या

भारत में वृद्धों की समस्याओं को समझने के लिए शोध की दिशा में प्रयास हाल के वर्षों में शुरू हुआ है। वृद्धावस्था व वृद्धों के बारे में समाज में प्रचलित ज्यादातर जानकारी गलत धारणाओं, भ्रामक सोच, भेदभाव व अज्ञानता पर आधारित है।

वृद्धावस्था में अनेक अवाँछित शारीरिक व मानसिक परिवर्तन के कारण वृद्धों में अनेक मनोवैज्ञानिक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन बीमारियों के इलाज पर ना तो परिवार और ना ही समाज कोई ध्यान देता है। अन्ततः एक मनोवैज्ञानिक रोग जो इलाज द्वारा ठीक हो जाता, पागलपन करार दिया जाता है। सांवेगिक अस्थिरता व मानसिक व्याधियों से ग्रसित वृद्ध व्यक्ति को समाज की मुख्य धारा से पूर्णतः अलग कर दिया जाता है।

## 20.5 भारत में वृद्धों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ व कानून :–

भारत में वृद्धों की स्थिति में सुधार के लिए निम्नलिखित प्रयास किये जा रहे हैं :–

### (1) प्रशासनिक कार्य :–

'सामाजिक न्याय व सशक्तिकरण मन्त्रालय', राज्य सरकार व स्वैच्छिक संगठनों के साथ मिलकर वृद्धों के लिए नीति निर्माण व योजनाओं का संचालन करता है। इसका मुख्य उद्देश्य वृद्धों की समस्याओं का हल तथा उनके लिए वृद्ध आश्रम, डे–केयर सेन्टर तथा मोबाइल मेडिकल यूनिट का निर्माण करना है।

### (2) संवैधानिक प्रावधान :–

अनुच्छेद–14 के अनुसार राज्य को चाहिए कि वह अपनी आर्थिक क्षमता के अनुसार बेरोजगार, वृद्ध, रूग्ढ़ व अक्षम वर्ग को काम, शिक्षा व सामाजिक सुरक्षा प्रदान करे। अनुच्छेद–47 के अनुसार नागरिकों के पोषण, स्वास्थ्य और जीवपन के स्तर को संवर्द्धित करना राज्य मुख्य कार्य है।

सन् 2007 में 'मेनटेनेन्स एण्ड वेलफेयर ऑफ पेरेन्ट्स एण्ड सीनियर सिटीजन एक्ट' लागू हुआ। इस अधिनियम के अनुसार अभिभावकों व वरिष्ठ नागरिकों के हितों का ध्यान रखना आवश्यक माना गया। विगत

वर्षों में स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार होने से जीवन प्रत्याशा बढ़ी है। इस अधिनियम के अनुसार वृद्धों की लम्बी आयु ही पर्याप्त नहीं है बल्कि वे एक सुरक्षित, स्वाभिमानी व अर्थपूर्ण जीवन जीने के हकदार हैं।

### (3) नेशनल पॉलिसी ऑन ओल्ड पर्सन (NPOP) 1999 :–

इस नीति का उद्देश्य केन्द्र द्वारा राज्यों को आर्थिक सहायता प्रदान कर उन्हें वृद्धों के लिए भोजन, सुरक्षा, आवास, व स्वास्थ्य देखभाल प्रदान कराना है तथा उसकी स्थिति में सुधार के साथ ही उनके प्रति होने वाले अत्याचार व शोषण को रोकना है।

### (4) नेशनल काउन्सिल फॉर ओल्डर पर्सन (NCOP) 1999 :–

इसकी स्थापना वर्ष 1999 में 'सामाजिक न्याय व सशक्तिकरण मंत्रालय' के तत्वाधान में हुई। यह भारत की सबसे बड़ी संस्था है जो केन्द्र सरकार को वृद्धों के लिए कार्यक्रम बनाने व लागू करने के लिए सुझाव देती है।

### (5) वृद्ध आश्रम की स्थापना :–

'मेनटेनेन्स एण्ड वेलफेयर ऑफ पैरेन्ट्स एण्ड सीनियर सिटीजन एक्ट', 2007 के अनुसार भारत के प्रत्येक जिले में 150 लोगों की क्षमता वाला वृद्ध आश्रम होना चाहिए। इस दिशा में व्यापक प्रयास किये जा रहे हैं। सरकार ऐसे वृद्ध आश्रमों की स्थापना स्वैच्छिक संगठनों की सहायता से भी करती है।

## 20.6 वृद्धों की समस्याओं के समाधान के लिए सुझाव :–

वृद्धों की समस्याओं के समाधान के लिए निम्नलिखित प्रयास किये जाने आवश्यक हैं :–

1. वृद्धजनों से सम्बन्धित निर्योग्यताओं व व्याधियों की रोकथाम पर बल दिया जाये।
2. सरकार द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता, रोजगार व सामाजिक सुरक्षा प्रत्येक परिवार तक पहुँचायी जाए।
3. वृद्धों की सामाजिक सहभागिता पर बल दिया जाए।
4. वृद्ध–आश्रमों व डे–केयर सेन्टरों की व्यापक स्तर पर स्थापना की जाए व उनके उचित रख–रखाव की व्यवस्था की जाए।
5. स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएँ प्रत्येक जिलों में आसानी से सुलभ होनी चाहिए तथा मानसिक चिकित्सालयों की भी व्यापक स्तर पर स्थापना की जाए।

## 20.7 सारांश :

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि भारत में वृद्धजन जो नई पीढ़ी के समाजीकरण तथा उनमें सांस्कृतिक, सामाजिक एवं नैतिक, ज्ञान व अनुभव को हस्तान्तरित करने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं, उपेक्षित हैं। नवीन जीवन पद्धति व मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों ने वृद्धों की सामाजिक प्रस्थिति को दयनीय बना दिया

है। वर्तमान में सरकार व अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा वृद्धजनों के लिए अनेक योजनाएँ व कानूनों का निर्माण किया गया, परन्तु वृद्धों की समस्याएँ दिन पर दिन बढ़ती जा रही हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि वृद्धों से सम्बन्धित योजनाओं व कानूनों का निर्माण ही नहीं किया जाए बल्कि उनके क्रियान्वयन में व्यापक, सावधानी भी रखी जाए जिससे कि यह वर्ग विशेष, लाभान्वित हो सकें।

## 20.8 सन्दर्भ ग्रन्थ :


1. अग्निहोत्री, एन0के0, 'प्रॉबलम्स ऑफ ओल्ड एज' 1976.
2. कोहेन, लॉरेन्स, 'नो एजिंग इन इण्डिया' 2000.
3. ढिल्लन, परमजीत कौर, 'साइको–सोशल एसपेक्ट्स ऑफ एजिंग इन इण्डिया' 1992.
4. महाजन, धर्मवीर; महाजन, कमलेश, 'भारतीय समाज मुद्दे एवं समस्याएँ' 2006.
5. विजया, एस0के0, 'फैमिली लाइफ एण्ड सोशियो–इकोनामिक प्राब्लम्स ऑफ द एजेड' 1991.


## 20.9 सम्बन्धित प्रश्न :–

### (क) लघु उत्तरीय प्रश्न –

1. वृद्धावस्था को परिभाषित कीजिए।
2. भारत में वृद्धों की स्थिति का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
3. वृद्धों की पारिवारिक समस्याएँ क्या हैं?
4. वृद्धों में मनोवैज्ञानिक सामंजस्य की समस्या पर टिप्पणी कीजिए।
5. वृद्धों से सम्बन्धित संवैधानिक प्रावधान बताएँ।

### (ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

1. वृद्धावस्था से आप क्या समझते हैं? इसका समाजशास्त्रीय विश्लेषण कीजिए।
2. वृद्धावस्था से सम्बन्धित समस्याओं का विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. भारत में वृद्धों के लिए निर्मित कार्यक्रमों व योजनाओं का वर्णन कीजिए।

4. वृद्धजनों की मुख्य समस्याएँ बतायें। समस्याओं के निवारण के सुझाव दीजिए।

## (ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. वृद्ध कहते हैं –

   (क) 60 वर्ष की आयु के व्यक्ति को

   (ख) 50 वर्ष की आयु के व्यक्ति को

   (ग) 40 वर्ष आयु के व्यक्ति को

   (घ) 30 वर्ष आयु के व्यक्ति को

2. 'वृद्ध लोगों का अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष' मनाया गया–

   (क) सन् 1998 (ख) सन् 2001

   (ग) सन् 1999 (घ) सन् 2011

3. 'वृद्ध दिवस' मनाया जाता है –

   (क) 1 अक्टूबर (ख) 5 जून

   (ग) 8 मई (घ) 9 दिसम्बर

4. वर्ष 2001 में वृद्धों का भारतीय जनसंख्या में प्रतिशत था –

   (क) 14.7% (ख) 20%

   (ग) 8.9% (घ) 7.4%

5. 'मेनटेनेन्स एण्ड वेलफेयर पैरेन्ट्स एण्ड सीनियर सिटिजन एक्ट' पारित हुआ –

   (क) सन् 2001 (ख) सन् 2007

   (ग) सन् 1990 (घ) सन् 2010

6. 'नेशनल पॉलिसी ऑन ओल्ड पर्सन' लागू हुई –

   (क) सन् 1975 (ख) सन् 2004

   (ग) सन् 1999 (घ) सन् 1969

7. NCOP है –

   (क) नेशनल काउन्सिल फॉर ओल्डर पर्सन
   (ख) नेशनल काउन्सिल फॉर पूअर
   (ग) नेशनल काउन्सिल फॉर ओल्ड पर्स
   (घ) नेशनल कम्यूनिटी ऑफ ओल्ड पीपुल

8. 2025 तक भारत में वृद्धों की संख्या का सम्भावित प्रतिशत –

(क) 10.2% (ख) 24.5%

(ग) 12.4% (घ) 30.1%

9. जीवन–प्रत्याशा बढ़ने का सर्वप्रमुख कारण हैं –

(क) आधुनिक जीवन शैली (ख) उन्नत चिकित्सा सुविधाएँ

(ग) महामारियों की समाप्ति (घ) सामाजिक जागरूकता

10. किस अनुच्छेद के अन्तर्गत राज्य द्वारा नागरिकों के पोषण, स्वास्थ्य, और जीवन के स्तर को संवर्धित करना वर्णित है

(क) अनुच्छेद 15 (ख) अनुच्छेद 46

(ग) अनुच्छेद 332 (घ) अनुच्छेद 446

## 20.10 प्रश्नोत्तर :

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 1. (क) | 2. (ग) | 3. (क) | 4. (ग) | 5. (ख) |
| 6. (ग) | 7. (क) | 8. (ग) | 9. (ख) | 10. (ख) |

# इकाई–21

# अनुसूचित जातियाँ

## इकाई की रूपरेखा


21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 अनुसूचित जाति का अर्थ

21.3 अनुसूचित जातियों की समस्यायें

21.4 अनुसूचित जातियों के लिए संवैधानिक व्यवस्थाएँ

21.5 अनुसूचित जातियाँ एवं सामाजिक गतिषीलता

21.6 सारांश

21.7 परिभाषिक शब्दावली

21.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

21.9 बोध–प्रश्न

(अ) दीर्ध उत्तरीय प्रष्न

(ब) लघु उत्तरीय प्रष्न

(स) वस्तनिष्ठ प्रश्न

21.10 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर


## 21.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :

- अनुसूचित जातियों के अर्थ को स्पष्ट कर सकेगें।
- अनुसूचित जातियों के समस्याओं को समझ पायेगें।
- अनुसूचित जातियों के उत्थान के लिए संवैधानिक व्यवस्थाओं एवं प्रावधान को जान सकेंगे।
- अनुसूचित में पायी जाने वाली सामाजिक गतिशीलता को समझ सकेगें।

## 21.1 प्रस्तावना

सबसे पहली बार अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग साइमन कमीशन ने 1927 में किया था। अंग्रेजी शासन काल में अनुसूचित जातियों के लिये

सामान्यतया **दलित वर्ग (Depressed Classes)** शब्द का प्रयोग किया जाता था। कहीं–कहीं इन जातियों के लिये बाह्य जातियाँ या अस्पृश्य जातियों का प्रयोग भी हुआ है। 1935 के संविधान ने तो इन्हें **अनुसूचित जातियाँ (Scheduled Castes)** का नाम ही दिया है। हम यहाँ अनुसूचित जाति के अर्थ, समस्या, समाधान तथा इनकी सामजिक गतिशीलता का अध्ययन करेंगे।

## 21.2 अनुसूचित जाति का अर्थ

वर्तमान में जिसे अनुसूचित जाति कहा जाता है उसे अतीत में अशुद्ध, हरिजन, दलित, अछूत के नामों से जाना जाता था। 1927 में साइमन कमीशन ने इनके लिए 'अनुसूचित जाति' शब्द प्रस्तावित किया। जिसको भारतीय संविधान अधिनियम 1935 में मान्यता दी गयी। अनुसूचित जाति की कोई निश्चित परिभाषा नहीं है, किसी भी जाति को अनुसूचित जाति घोषित करने का अधिकार राष्ट्रपति को है। सामान्यतः अनुसूचित जातियों को अस्पृश्य जातियाँ भी कहा जाता है। अतः इनकी परिभाषा अस्पृश्यता के आधार पर की गयी है। **डा0 डी0 एन0 मजूमदार के अनुसार** ''अस्पृश्यत जातियाँ वे हैं, जो विभिन्न सामाजिक एवं राजनैतिक निर्योग्यताओं से पीड़ित हैं, जिनमें से बहुत सी निर्योग्यताऐं उच्च जातियों द्वारा परम्परागत रूप से निर्धारित एवं सामाजिक रूप से लागू की गयी हैं।''

**के0एन0शर्मा के अनुसार :** ''अस्पृश्य जातियाँ वे हैं, जिनके स्पर्श से एक व्यक्ति अपवित्र हो जाये, और उसे पवित्र होने के लिए कुछ कृत्य करना पड़े''

भारत में ''मानव विकास रिपोर्ट 2011'' के अनुसार वर्ष 2007–08 में देश में अनुसूचित जाति 19.9 प्रतिशत थी। विभिन्न राज्यों में अनुसूचित जातियों का संख्या अनुपात निम्नलिखित है :

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| पंजाब | – | 36.7% | उत्तराखण्ड | – | 20.7% |
| पं0 बंगाल | – | 39.2% | बिहार | – | 20.2% |
| हिमाचल प्रदेश | – | 28.4% | राजस्थान | – | 19.2% |
| उत्तर प्रदेश | – | 25.8% | मध्य प्रदेश | '– | 17.6% |
| हरियाणा | – | 25% | | | |

पूर्व में अनुसूचित जातियों को कई नामों से सम्बोधित किया जाता था। वैदिक काल मे इन्हें ''चाण्डाल'' कहा जाता है। इन्हें हिन्दू सामाजिक संरचना से बाहर रखा जाता था, और इन्हे पंचम भी कहा जाता था । ब्रिटिशों ने इन्हें ''बाहरी जाति'' के साथ–साथ 'अस्पृश्य' भी कहा था। महात्मा गांधी इनको हरिजन शब्द से सम्बोधित करते थे।

## 21.3 अनुसूचित जातियों की समस्यायें (निर्योग्यताएँ)

जब संविधान ने अनुसूचित जातियों को कुछ विशेष अधिकार दिये तब इसका उद्देश्य इन जातियों के प्रति होने वाले भेदभाव को समाप्त करना था। उनका जो शोषण हो रहा था, उसे समाप्त करना था। संविधान का उद्देश्य इन वर्गो का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक उत्थान करना था। दूसरे शब्दों में संविधान अनुसूचित जातियों की समस्याओं का निदान चाहता था। संविधान से पहले स्वतन्त्रता की लड़ाई में गाँधीजी और अम्बेडकर ने भी अपने–अपने ढ़ंग से अनुसूचित जातियों की समस्याओं को समझा था, उनका हल निकालने का प्रयत्न किया था। इस लड़ाई के दौरान बाबा साहब अम्बेडकर ने अनुसूचित जातियों के सम्मान और शान के लिए एक लम्बी लड़ाई लड़ी थी। ब्रिटिश शासन ने साम्प्रदायिक पंचाट द्वारा अछूतों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व देना स्वीकार किया था। गाँधीजी ने पंचाट को स्वीकार नहीं किया क्योंकि मुसलमान इस तरह की मांग पहले ही कर चुके थे और इसके कारण पृथकतावाद अधिक विकसित तथा सामाजिक सम्बन्धों का साम्प्रदायिकरण और अधिक हो जाता। गांधीजी ने साम्प्रदायिक पंचाट के विरूद्ध आमरण अनशन किया। पूना समझौते के अन्तर्गत पंचाट को वापस लिया गया और गांधीजी ने अपना अनशन तोड़ दिया। गांधीजी और अम्बेडकर दोनों ही अनुसूचित जातियों की समस्याओं के प्रति जागरूक थे।

भारत में अनुसूचित जातियों की अनेक निर्योग्यताएं रही हैं। इन निर्योग्यताओं के कारण इन्हें जीवन में आगे बढ़ने और अपने व्यक्तित्व के विकास का मौका नहीं दिया गया। ये निर्योग्यताएं इनके लिए एक अभिशाप या बड़ी समस्या के रूप में सामने आयीं। स्मृतियों, पुराणों तथा धर्म–ग्रन्थों में अस्पृश्यों की निर्योग्यताओं का उल्लेख मिलता है।

### 1. धार्मिक निर्योग्यताएं

**i- मन्दिर प्रवेश व पवित्र स्थानों के उपयोग पर प्रतिबंध** :– अस्पृश्यों को अपवित्र माना गया और उन पर अनेक निर्योग्यताएँ आरोपित कर दी गयीं। इन लोगों को मन्दिर प्रवेश, पवित्र नदी घाटों के उपयोग , पवित्र स्थानों पर जाने तथा अपने ही घरों पर देवी–देवताओं की पूजा करने का अधिकार नहीं दिया गया। इन्हें वेदों अथवा धर्म ग्रन्थों के अध्ययन एवं श्रवण की भी आज्ञा नहीं दी गयी।

**ii- धार्मिक सुख सुविधाओं से वंचित :** मनुस्मृति में कहा गया है कि अस्पृश्य लोगों को पूजा, अराधना, भगवत भजन, कीर्तन आदि का अधिकार नहीं दिया गया है। ब्राह्मणों को इनके यहाँ पूजा, श्राद्ध तथा यज्ञ आदि कराने की आज्ञा नहीं दी गयी है।

iii- **धार्मिक संस्कारों के सम्पादन पर प्रतिबन्ध :** अस्पृश्यों को जन्म से ही अपवित्र माना गया है। इसी कारण इनके शुद्धिकरण के लिए संस्कारों की व्यवस्था नहीं की गयी है। इन्हें विद्यारम्भ, उपनयन और चूड़ाकरण जैसे प्रमुख संस्कारों की आज्ञा नहीं दी गयी है।

## 2- सामाजिक निर्योयताएं

i- **सामाजिक सम्पर्क पर रोक :** अस्पृश्यों को सवर्ण हिन्दुओं से सामाजिक सम्पर्क रखने और उनके सम्मेलनों, गोष्ठियों पंचायतों, उत्सवों एवं समारोह में भाग लेने की आज्ञा नही दी गयी। उन्हें उच्च जातियों के हिन्दुओं के साथ खान–पान का संबंध रखने से वंचित रखा गया है और सार्वजनिक स्थानों के उपयोग की मनाही भी है।

ii- **सार्वजनिक वस्तुओं के उपयोग पर प्रतिबंध :** अस्पृश्यों को हिन्दुओं के द्वारा काम में लिये जाने वाले कुओं से पानी, स्कूलों में पढ़ने एवं छात्रावासों में रहने से रोका जाता था। ये पीतल एवं काँसे के बर्तनों का प्रयोग नहीं कर सकते थे, अच्छे वस्त्र एंव सोने के आभूषण भी नहीं पहन सकते थे, इन्हें अन्य सवर्ण हिन्दुओं की बस्ती या मोहल्ले में रहने की आज्ञा भी नहीं थी।

iii- **शिक्षा और मनोरंजन सम्बन्धी सुविधाओं से वंचित :** अस्पृश्यों को शिक्षा प्राप्त करने की आज्ञा नहीं दी गयी। इन्हें चौपालों, मेलों तथा हाटों में शामिल होकर अपना मनोरंजन करने का अधिकार नहीं दिया गया। परिणामस्वरूप समाज का एक बड़ा वर्ग निरक्षर रह गया।

iv- **अस्पृश्यों के भीतर भी संस्तरण :** एक आश्चर्यजनक बात तो यह है कि स्वयं अश्पृश्यों में भी संस्तरण की प्रणाली अर्थात् ऊँच–नीच का भेदभाव पाया जाता है। इस संबंध में के.एम.पणिक्कर का कहना है कि ''विचित्र बात यह है कि स्वयं अछूतों के भीतर एक पृथक जाति के समान संगठन था'' जो एक दूसरे से श्रेष्ठ होने का दावा करती थी।

## 3- आर्थिक निर्योग्यताएं

i- **व्यावसायिक निर्योग्यताए :** अस्पृश्यों को मल–मूत्र उठाने, सफाई करने, मरे हुए पशुओं को उठाने और उनके चमड़े से वस्तुऐं बनाने का कार्य ही सौपा गया। इन्हें खेती करने, व्यापार चलाने या शिक्षा प्राप्त कर नौकरी करने का अधिकार नहीं दिया गया।

**ii- सम्पत्ति सम्बन्धी निर्योग्यताएं :** इन्हें सम्पत्ति सम्बन्धी निर्योग्यताओं से भी पीड़ित रहना पड़ता था। भूमि अधिकार एवं धन–संचय की आज्ञा नहीं दी गयी थी। इन्हें दासों के रूप में स्वामियों की सेवा करनी पड़ती थी। अस्पृश्यों के सम्पत्ति सम्बन्धी निर्योग्यता से ही द्रवित होकर आचार्च बिनोवाभावे ने इनके लिए ''भूदान आन्दोलन '' चलाया था।

**iii- भरपेट भोजन की सुविधा भी नहीं :** आर्थिक निर्योग्यताओं के कारण अस्पृश्यों की आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय हो गयी कि इन्हें विवश होकर सवर्णों के जूठे भोजन, फटे–पुराने वस्त्रों एवं त्याज्य वस्तुओं से ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी पड़ती थी।

### 4- राजनीतिक निर्योग्यताएं :

अस्पृश्यों को राजनीति के क्षेत्र में सभी प्रकार के अधिकारों से वंचित रखा गया था। उन्हें शासन के कार्य में किसी भी प्रकार का कोई हस्तक्षेप करने, कोई सुझाव देने, सार्वजनिक सेवाओं के लिए नौकरी प्राप्त करने या राजनीतिक सुरक्षा प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं दिया गया।

वर्तमान में अस्पृश्यों की समस्या प्रमुखतः सामाजिक और आर्थिक है, न कि धार्मिक और राजनीतिक। अतः कहा जा सकता है कि इनके प्रति लोगों की मनोवृत्ति धीरे–धीरे बदलेगी और कलान्तर में ये सामाजिक जीवन की मुख्य धारा से प्रवाहित हो सकेंगे।

## 21.4 अनुसूचित जातियों के लिए संवैधानिक व्यवस्थाएं

अनुसूचित जातियों के सम्बन्ध में संवैधानिक प्रावधान संविधान में अनेक ऐसे प्रावधान रखे गये हैं जो अस्पृश्यता निवारण एवं अनुसूचित जातियों के कल्याण में सहाय हो सकते हैं। ये प्रावधान निम्नलिखित हैं :–

1. संविधान के अनुच्छेद 15 (1) के अनुसार राज्य किसी नागरिक के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान, आदि के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।
2. अनुच्छेद 17 के अनुसार अस्पृश्यता का अन्त कर उसका किसी भी रूप में प्रचलन निषिद्ध कर दिया गया है।
3. अनुच्छेद 19 के आधार पर अस्पृश्यों या अनुसूचित जातियों की व्यावसायिक निर्योग्यताओं को समाप्त किया जा चुका है और इन्हें किसी भी व्यवसाय को अपनाने की आजादी प्रदान की गयी है।
4. अनुच्छेद 25 में हिन्दुओं के सार्वजनिक धार्मिक स्थानों के द्वारा सभी जातियों के लिए खोल देने की व्यवस्था की गयी है।
5. अनुच्छेद 29 के अनुसार राज्य द्वारा पूर्ण या आंशिक सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षण संस्था में किसी भी व्यक्ति को धर्म, जाति, वंश या भाषा के आधार पर प्रवेश से रोका नहीं जा सकता है।
6. अनुच्छेद 46 के अनुसार राज्य दुर्बल लोगों के शिक्षा सम्बन्धी तथा "आर्थिक हितों" की रक्षा करेगा तथा सभी प्रकार के सामाजिक अन्याय एंव शोषण से उनको बचायेगा।

7. अनुच्छेद 330, 332 और 334 के अनुसार अनुसूचित जातियों एंव अनुसूचित जनजातियों के लिए संविधान लागू होने के 20 वर्ष तक लोकसभा, विधानसभा, ग्राम पंचायतों व स्थानीय निकायुों में स्थान सुरक्षित रहेंगे।

8. अनुच्छेद 335 के अनुसार संघ या राज्य के कार्यो से सम्बन्धित सेवाओं के लिए नियुक्तियां करने में अनुसूचित जाति के हितों का ध्यान रखा जायेगा।

9. अनुच्छेद 146 व 338 में अनुसूचित जातियों के कल्याण व हितों की रक्षा के लिए राज्य में सलाहकार परिषदों एंव पृथक विभागों की स्थापना का प्रावधान है।

1. **शैक्षिक विकास :**

**i-** **अस्वच्छ व्यवस्थाओं में लगे बच्चों के लिए मैट्रिक पूर्व छात्रवृत्ति –** इस योजना के तहत 10वीं कक्षा तक की पढ़ाई के लिए उन लोगों को आर्थिक सहायता दी जाती है जो सफाई करने, मरे पशुओं की खाल उतारता और चर्म शोधक का काम करते हैं।

**ii-** **राजीव गांधी राष्ट्रीय फैलोशिप योजना :** 2005–06 के दौरान अनुसूचित जातियों के विद्यार्थियों के लिए राजीव गाँधी राष्ट्रीय फैलोशिप (RGNF) नाम की नई योजना शुरू की गई हैं।

**iii-** **अनुसूचित जाति के बालक–**बालिकाओं के लिए छात्रावास : इस योजना में छात्रावास निर्माण के लिए केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को 50 प्रतिशत, प्रशासित क्षेत्रों को शत प्रतिशत सहायता देती है।

**iv-** **डा0 अम्बेडकर फाउंडेशन –** इस फांउडेशन का मुख्य उद्देश्य भारत और विदेशों में अम्बेडकर की विचारधारा व संदेश को प्रसारित करना है।

## 2- आर्थिक विकासः

**i-** अनुसूचित जाति उपयोजना के लिए विशेष केन्द्रीय सहायताः इसके अन्तर्गत राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों को उनके विशेष संघटक योजनाओं में शत–प्रतिशत सहायता दी जाती है।

**ii-** राष्ट्रीय अनुसूचित जाति वित्त व विकास निगम : यह गरीबी रेखा के नीचे गुजारा करने वाले अनुसूचित जाति के लोगों के लिए रोजगार के अवसर पैदा करने के लिए रियायती ब्याजदर पर धन उपलब्ध कराता है। यह निगम महिला समृद्धि योजना भी लागू कर रहा है।

**iii-** राज्य राष्ट्रीय अनुसूचित जाति विकास निगम : ये 26 राज्यों में कार्य कर रहे हैं। इन नियमों में 49 प्रतिशत हिस्सेदारी केन्द्र सरकार की व 51 प्रतिशत राज्य सरकारों की होती है।

**iv-** अनुसूचित जाति के लिए काम करने वाले स्वंयसेवी संगठन : इस योजना में स्वयं सेवी संगठनों की सेवाओं का लाभ अनुसूचित जाति के सामाजिक व आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए किया जाता है।

## 21.5 अनुसूचित जातियाँ एवं सामाजिक गतिषीलता

शताब्दियों के भेदभाव और शोषण के शिकार दलित वर्गों की स्थिति सुधारने के लिए संविधान ने छुआछूत को समाप्त किया तथा संवैधानिक प्रावधानों के जरिए सामाजिक प्रगति एवं नई अस्मिता के निर्माण का अवसर प्रदान किया। दूसरी तरफ अनुसूचित जातियों ने एक नई एकजुटता के माध्यम से सामाजिक–राजनीतिक प्रगति के रास्ते पर बढ़ने के लिए स्वयं भी नई अस्मिता की तलाश प्रारंभ की है।

इसके अतिरिक्त स्वतंत्रता के बाद विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों और अनुसूचित जातियों के सामाजिक–आर्थिक प्रगति के लिए कल्याण और विकासात्मक उपायों एवं उनके पक्षधरों ने अनुसूचित जातियों की स्थिति में बेहतरी के लिए कई आंदोलन छेड़े। आधुनिक समय में इस तरह के कई प्रमुख आंदोलनों का नेतृत्व महात्मा गांधी और डॉ0 अम्बेडकर ने किया। यहाँ अनुसूचित जातियों की स्थिति में सुधार एवं उनके विकास पर इन आंदोलनों के प्रत्यक्ष प्रभावों की चर्चा की गई है।

योगेन्द्र सिंह ने अपनी पुस्तक 'सोशल स्ट्राटीफिकेशन एंड चेंज इन इंडिया (भारत में सामाजिक स्तरीकरण और परिवर्तन)' में दो प्रकार के सामाजिक आंदोलनों की चर्चा की है– समन्वय की प्रवृत्ति को समन्वयकारी कोटि में रखा जा सकता है क्योंकि यह संस्था के रूप में जाति व्यवस्था का निषेध नहीं करती। उच्च जातियों की नकल में उन्हें शताब्दियों पुराने अपनी निम्न सामाजिक स्थान के निषेध का सुख मिलता है। उनका यह प्रयास सफल नहीं हो सका क्योंकि उसे सामाजिक स्वीकृति नहीं प्राप्त हो सकी।

आज के संदर्भ में अनुसूचित जातियों के आंदोलनों का ढर्रा बदल गया है। उच्च जातियों की नकल के साथ अनुसूचित जातियों के लोग अब अवमानना की दृष्टि से देखे जाने लगे हैं। इसके परिणामस्वरूप ऊर्ध्वाधर जातीय लामबंदी हुई है। कई समाजशास्त्रीय अध्ययनों में इसके प्रमाण दिए गए हैं। अनुसूचित जातियों के कई जातीय समूह एकजुट होकर नई अस्मिता के निर्माण में जुट गये हैं और नया प्रयास संस्कृतीकरण नहीं है बल्कि अपनी शक्ति की बदौलत एक नई अस्मिता का निर्माण करना है। इसके चलते इन जातियों में उच्च जातियों के प्रभाव से मुक्त अपनी स्वायत्त पहचान कायम की। डॉ0 अम्बेडकर के नेतृत्व में चले आंदोलन की परिणति बौद्ध धर्म स्वीकार करने में हुई। 1956 में उनके नेतृत्व में भारी संख्या में दलित सामूहिक रूप से बौद्ध बन गए। डॉ0 अम्बेडकर ने रिपब्लिकन पार्टी ऑफ

इंडिया का गठन किया। ये दोनों प्रवृत्तियाँ सामाजिक स्तरीकरण और राजनीतिक गतिशीलता के दो अलग–अलग ढर्रों का प्रतिनिधित्व करती हैं। योगेन्द्र सिंह के अनुसार, सामाजिक गतिशीलता के अनुसूचित जातियों के आंदोलन : क) समन्वय ओर संस्कृतिकरण, एवं ख ) अलगाव, हिन्दू और बौद्ध, ईसाई या इस्लाम में धर्म परिवर्तन, के बीच झूलते रहे हैं।

अनुसूचित जातियों के कई परिवार एवं व्यक्ति सामाजिक पदानुक्रम की सीढ़ी पर ऊपर चढ़ने में सफल रहे हैं। इन जातियों में सामाजिक–राजनीतिक चेतना का भी विकास हुआ है। लेकिन संवैधानिक प्रावधानों का लाभ वास्तव में विशिष्ट क्षेत्रों में प्रमुख जातियों को ही पहुंचा है। छुआछूत (अपराध) अधिनियम को लागू कराने के मुकदमों के विश्लेषण से पता चलता है कि उतने मुकदमे व्यक्तियों के विरूद्ध नहीं हैं, जितने कि संस्थाओं के विरूद्ध हैं। यह भी देखा गया है कि यह अधिनियम उन क्षेत्रों में ज्यादा सफलतापूर्वक लागू किया जा सकता है, जहाँ इन जातियों में साक्षरता एवं राजनीतिक चेतना का समुचित विकास हुआ है। तुलनात्मक दृष्टि से इन जातियों की स्थिति में सुधार हुआ है किन्तु उच्च जातियों की तुलना में वे अभी भी काफी पिछड़े हुए हैं।

## 21.6 सारांश

महत्वपूर्ण बात यह है कि आजादी से पहले अनुसूचित जातियों की जो समस्याएँ थी, वे आज नहीं रही। अब ये जातियाँ मंदिर में प्रवेश कर सकती हैं, सार्वजनिक स्थलों पर सुविधा ले सकती हैं। इनकी समस्याएँ कुछ नये स्वरूप में सामने आयी हैं। छुआछूत हिन्दू जाति व्यवस्था का अभिन्न अंग होने के नाते अछूतों के सामाजिक गतिशीलता में कई बाधाएं है। अनुसचित जातियों के लोग धीरे–धीरे अपनी स्थिति में सुधार कर रहे है एवं अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो रहे हैं। स्वतंत्र भारत में उनके अधिकारों की रक्षा और उनके कल्याण मे लिए कई प्रावधान किए गए है।

## 21.7 शब्दावली

**अनुसूचित जाति :–** सवैधानिक उपायों तथा कल्याणकारी लाभों के लिए अनुसूचित की गई अछूत जातियां।

**समन्वयकारी प्रवृत्ति :–** संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के द्वारा उच्च जातियों में सामाहित होना।

**एकसमान :–** भेदभाव के बिना एकजुटता।

**अस्पृश्य :** जिनके स्पर्श से एक व्यक्ति के अपवित्र हो जाने और उसे पवित्र होने के लिए कुछ कृत्य करना पडे।

**निर्योग्यता :** प्रायः सवर्ण उच्च्च जातियों द्वारा अनुसूचित जातियों पर अनेक प्रकार के पाबन्दी एवं प्रतिबंध लगाये गये थे जिनके कारण निम्न जातियाँ पिछड़ कर रह गयीं इसे ही निर्योग्यता कहा जाता है।

**संवैधानिक प्रावधान :** भारतीय संविधान द्वारा अनुसूचित जातियों की निर्योग्यताओं को दूर करने के लिए उनसे सम्बन्धित जो भी प्रावधान, नियम बनाये हैं, उसे संवैधानिक प्रावधान कहा जाता है।

## 21.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–


- आहूजा, राम (2004), ''भारतीय सामाजिक व्यवस्था'' रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
- गुप्ता एवं शर्मा (2009), ''समाजशास्त्र' साहित्य पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- वर्मा एवं ज्योति (2007), ''भारतीय समाज'' डिस्कवरी पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली।
- दोषी एस.एल एवं जैन पी.सी, "भारतीय समाज" नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।
- यू.जी.एस.वाई–06 भारत में सामाजिक समस्याएं, षष्ठम् खण्ड (पहचान, अस्मिता और सामाजिक न्याय– ।।) इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
- Sharma K.L. (1998), "Caste and Class in India" Rawat Publication, jaypur.
- Pande P.N. (1998), 'Education & Social Mobility' Daya Pablication, New Delhi.


## 21.9 बोध प्रश्न–

### (अ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. अनुसूचित जाति की प्रमुख समस्याओं का वर्णन कीजिए।
2. अनुसूचित जाति पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
3. अनुसूचित जातियों के लिए किये गये संवैधानिक प्रावधानों की विस्तृत विवेचन कीजिए।

### (ब) लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. अनुसूचित जाति किसे कहते है?

2. अनुसूचित जातियों की सामाजिक निर्योग्यताएं क्या थी?

3. अनुसूचित जातियों के आर्थिक विकास के प्रयत्नों का वर्णन कीजिए।

### (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. संविधान के किस अनुच्छेद के अन्तर्गत अस्पृश्यता का उन्मूलन कर दिया गया है?

   (क) अनुच्छेद 17 (ग) अनुच्छेद 25

   (ख) अनुच्छेद 330 (घ) अनुच्छेद 29

2. अस्पृश्य जातियों की निर्योग्यताएं कौन–कौन सी हैं?

   (क) सामाजिक (ख) आर्थिक

   (ग) धार्मिक (घ) उपर्युक्त सभी

3. निम्न जातियों को विशेष सुविधाएं देने के लिए उन्हें संविधान की सूची में सम्मिलित कराने के लिए किस वर्ष में सर्वप्रथम अनुसूची तैयार की गयी–

   (क) सन् 1935 में (ख) सन् 1919 में

   (ग) सन् 1945 में (घ) सन् 1948 में

4. अनुसूचित जातियाँ है?

## 21.10 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर–

1. (क) 2. (घ) 3. (क) 4. (घ)

# इकाई–22

# अनुसूचित जनजातियाँ

## इकाई की रूपरेखा


22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.2 जनजाति का अर्थ व परिभाषा

22.3 जनजाति की विशेषताएँ

22.4 भारत की जनजातियों का वर्गीकरण

22.5 अनुसूचित जनजातियों की समस्याएँ

22.6 अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए किये गये संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधान

22.7 अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु कार्यक्रम

22.8 अनुसूचित जनजातियों की समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव

22.9 सारांश

22.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

22.11 सम्बन्धित प्रश्न

(अ) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

22.12 प्रश्नोत्तर


## 22.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- जनजाति के अर्थ एवं परिभाषा को जान सकेंगे।
- जनजातियों की प्रमुख समस्याओं को जान सकेंगे।
- जनजातियों के लिए किये गये संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधानों को समझ सकेंगे।
- भारतीय जनजातियों के वर्गीकरण को जान सकेंगे।

- जनजातीय विकास के कार्यक्रमों के बारे में जान सकेंगे।
- जनजातियों की समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव प्रस्तुत कर सकेंगे।

## 22.1 प्रस्तावना

अनुसूचित जनजाति शब्द का प्रयोग आदिम मानव समूहों के लिए किया जाता है जिनका नाम संविधान के अनुसूची में दर्ज है। इन्हें आदिवासी, वन्यजाति, गिरिजन आदि नामों से पुकारा जाता रहा है। जी०एस० घुरिये ने इन्हें परम्परागत हिन्दू जाति–संरचना का ही भाग माना है तथा 'पिछड़े हिन्दू' से सम्बोधित किया है। जनसंख्यात्मक दृष्टिकोण से देखा जाये तो जनजातीय आबादी कुल भारतीय जनसंख्या की लगभग आठ प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करती है। वैसे तो आदिम जनजातियाँ पूरे भारत के विविध भौगोलिक क्षेत्रों में बिखरी हुई हैं किन्तु उनकी आबादी का 70% हिस्सा भारत के सात राज्यों – छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, उड़ीसा, झारखण्ड, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात एवं उत्तरांचल में अवस्थित है। सामाजिक–आर्थिक दृष्टिकोण से जनजातीय आबादी विकास के निचले क्रम पर अवस्थित है। अभी भी अनेक जनजातियाँ खानाबदोश एवं भरण–पोषण की अर्थव्यवस्था वाली है। जनजातीय आबादी का आधा से अधिक हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे है तथा निरक्षरता काफी व्याप्त है। भारत में लगभग 461 अनुसूचित जनजातियाँ पाई जाती है।

## 22.2 जनजाति का अर्थ व परिभाषा

जनजातियों को परिभाषित करना एक कठिन कार्य है। अनेक मानवविज्ञानियों ने जनजाति को परिभाषित करने का प्रयास किया है। डी०एन० मजुमदार ने विस्तृत रूप से जनजातियों को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''जनजाति' क्षेत्रीय सम्बन्ध युक्त तथा अन्तर्विवाही सामाजिक समूह है जिसके कार्यों में कोई विशेषता नहीं होती, जो जनजातीय अधिकारियों द्वारा शासित, वंशानुक्रम अथवा अन्य बोली से जुड़े हुये, अन्य जनजातियों अथवा जातियों से सामाजिक दूरी को मान्यता देने वाले, अपने प्रति किसी प्रकार की सामाजिक असमानताओं को नहीं जोड़ते (जैसा कि जाति संरचना में होता है), जो जनजातीय परम्पराओं में विश्वास रखते हैं तथा प्रथाओं का पालन करते हैं, विदेशी स्रोतों के विचारों के प्राकृतिकीकरण में अनुदारता तथा सबसे अधिक सजातीयता और क्षेत्रीय अखण्डता में विश्वास करते हैं।''

इसके विपरीत लूसी मेयर ने बहुत ही संक्षिप्त रूप में जनजाति को परिभाषित किया है। उनके अनुसार ''जनजाति समान संस्कृति वाली जनसंख्या का एक स्वतन्त्र राजनीतिक विभाजन है।''

इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया में जनजाति की परिभाषा इस प्रकार की गई है, ''जनजाति समान नाम धारण करने वाले परिवारों का एक संकलन है, जो समान बोली बोलते हों, एक ही भूखण्ड पर अधिकार का दावा करते हों अथवा दखल रखते हों तथा जो साधारणतया अन्तर्विवाही न हो, यद्यपि मूल रूप से चाहे वैसे रह रहे हों।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि सामान्य अर्थ में, एक जनजाति वह क्षेत्रीय समूह हैं जो भू–भाग, भाषा, सामाजिक नियम और आर्थिक कार्य आदि विषयों में एक सामान्यता के सूत्र में बंधा रहता है।

## 22.3 जनजाति की विशेषताएँ

जनजातियों की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं –

1. जनजातियाँ अनेक परिवारों का एक समूह है।
2. प्रत्येक जनजाति की अपनी एक विशिष्ट भाषा होती है।
3. जनजातियों का अपना एक सामान्य नाम होता है।
4. वे एक निश्चित भू–भाग पर निवास करते हैं।
5. इनमें घनिष्ठ सामुदायिक–भावना पायी जाती है।
6. जनजातियाँ अन्तर्विवाही समूह होते हैं, परन्तु इनमें गोत्र एवं टोटम बर्हिर्विवाह पाया जाता है।
7. जनजातियों की एक विशिष्ट संस्कृति होती है।
8. जनजातियों का अपना विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक संगठन होता है।

## 22.4 भारत की जनजातियों का वर्गीकरण

भारतीय जनजातियों का भौगोलिक विशिष्टता, भाषायी विभिन्नता, प्रजातीय अनेकता आदि अनेक ऐसे कारक हैं जिनके आधारों पर वर्गीकरण करने का प्रयास किया गया है। भौगोलिक विशिष्टता के आधार पर बी०एस० गुहा ने भारतीय जनजातियों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया है। ये निम्नांकित है –

### 1. उत्तर–पूर्वी तथा उत्तरी मण्डल

इसके अन्तर्गत जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, त्रिपरा, नागालैण्ड, अरूणाचल प्रदेश प्रमुख है। इन भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करने वाली प्रमुख जनजातियों में अका, डफला मीरी, मिश्मी, कुकी, लुसाई, खासी, गारों, जयन्तियाँ, लेप्चा, थारू, भोकसा, जौनसारी, राजी आदि आते हैं। इस क्षेत्र की अधिकांश जनजाति अत्यन्त निर्धन एवं आर्थिक रूप से पिछड़ी हैं। इनमें से अधिकांश सोपान कृषि करती हैं, जिसे झूम खेती भी कहा जाता है।

### 2. केन्द्रीय अथवा मध्य मण्डल

इस क्षेत्र के अन्तर्गत मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उड़ीसा, बंगाल, बिहार, गुजरात इत्यादि प्रदेशों को रखा गया है। इस क्षेत्र में जनजातियों की घनी जनंसख्या पाई जाती है। इन क्षेत्रों में निवास करने वाली प्रमुख जनजातियाँ हैं – सवारा, गदवा, वोरिडो, जवांग, खरिया, मुण्डा, संथाल, ओराँव, गोंड, कोल, अगारिया, वैगा, मारिया इत्यादि। इनमें से अधिकांश हल से कृषि करना जानते हैं।

### 3. दक्षिणी मण्डल

तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध प्रदेश, केरल, पाण्डिचेरी, अण्डमान–निकोबार द्वीप समूह इत्यादि प्रदेशों की जनजातियों को दक्षिणी मण्डल में रखा गया है। इस क्षेत्र में पायी जाने वाली प्रमुख जनजातियों में चेंचू, यरूवा, टोडा, इरूला, पलियन, कडार, कोटा, जारवा, ओंगे, उत्तरी सेण्टी नलीज, अण्डमानी, शाम्पेन, निकोबारी इत्यादि है। इनमें से अधिकांश आखेटक एवं भोजन संग्राहक है तथा मुख्यधारा से कटे हैं।

प्रजातीय दृष्टि से भारतीय जनजातियों को तीन मानव समूहों– नीग्रिटो, प्रोटो आस्ट्रेलायड तथा मंगोलायड में विभाजित किया जा सकता है।

भाषायी दृष्टि से भारतीय जनजातियों को तीन भाषा परिवारों में रखा जा सकता है – द्रविड़, आस्ट्रिक एवं तिब्बती–चीनी।

धार्मिक आधार पर हिन्दुवाद, ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म, इस्लाम आदि धर्मों में जनजातियों का विभाजन देखा जा सकता है।

## 22.5 अनुसूचित जनजातियों की समस्याएँ

भारतीय जनजातियाँ अनेक समस्याओं से गुजर रही हैं। इनकी कुछ प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं –

### 1. ऋणग्रस्तता की समस्या (Problem of Indebtedness)

अधिकांश भारतीय जनजातियाँ ऋणग्रस्तता की समस्या से ग्रसित हैं। ठेकोदारों, बिचौलियों और साहूकारों की चालाकियों; जनजातियों में व्याप्त निर्धनता, भुखमरी, दुर्बल आर्थिक व्यवस्था, बेरोजगारी आदि के कारण जनजातियों के सदस्य इन लोगों से ऋण लेते हैं, परन्तु ये कभी इससे निकल नहीं पाते हैं। ऋणग्रस्तता के अन्य कारणों में भूमि तथा वनों पर जनजातीय अधिकारों का हनन, उत्पादन के पुराने तरीके से न्यूनतम उत्पादन, परम्परागत रीति–रिवाजों का अनुपालन, भाग्यवादी प्रवृत्ति आदि प्रमुख है।

## 2. भूमि हस्तान्तरण (Land Alienation)

ऋणग्रस्तता की समस्या का एक सीधा परिणाम जनजातीय भूमि का हस्तान्तरण है। सेठ, साहूकार, ठेकेदार अपने ऋण के बदले में जनजातीय लोगों के जमीनों को हड़प लेते है। अनपढ़ लोगों को गलत तरीके से उनके जमीनों से बेदखल कर दिया जाता है।

## 3. अस्थायी कृषि (Shifting Cultivation)

जनजातीय भूमि कम उर्वर होती हैं। फलस्वरूप उर्वर भूमि की तलाश में नवीन जगहों का चुनाव किया जाता है। फलतः जनजातियों में अस्थायी कृषि का तरीका पाया जाता है जो कि कम उत्पादक होता है। इससे वनों का विनाश भी होता है। फलतः ये लोग काफी निर्धन होते है तथा जीवन–यापन की कोशिशों में ही जीवन पर्यन्त लगे रहते हैं।

## 4. गरीबी (Poverty)

गरीबी भी एक प्रमुख समस्या है। अनुत्पादक उत्पादन प्रणाली, अस्थायी कृषि, ऋणग्रस्तता, खराब स्वास्थ्य, परम्परागत विश्वास, भाग्यवादिता आदि कारणों से जनजातीय समाज में व्यापक गरीबी पायी जाती है। जिनके फलस्वरूप अनेक दूसरे सामाजिक आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं; जैसे– वेश्यावृत्ति, मानव तस्करी इत्यादि।

## 5. बेरोजगारी (Unemployment)

जनजातियों के पारम्परिक व्यवसाय वनों के अधिकार छीनने के कारण धीरे–धीरे खत्म हो रहे हैं। अशिक्षा के कारण आधुनिक रोजगार से वे कट रहे हैं। फलतः इनमें बेरोजगारी की समस्या विकट रूप ले रही है।

## 6. स्वास्थ्य समस्या (Health Problems)

गन्दा एवं प्रदूषित जल, मच्छरों से होने वाले रोगों का खतरा, खनिजों की कमी से होने वाले रोग, परम्परागत दवाइयों एवं झाड़–फूँक पर निर्भरता, पर्यटन एवं बाहरी सम्पर्क के कारण यौन संक्रामक रोगों का खतरा, आधुनिक चिकित्सा सुविधा का अभाव आदि कुछ ऐसे कारक हैं जिनका विपरीत प्रभाव जनजातीय स्वास्थ्य पर देखा जा सकता है।

## 7. मदिरापान (Drinking)

परम्परागत मदिरा के साथ–ही–साथ बाहरी वाणिज्यिक मदिरा पान के कारण जनजातियों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव तो पड़ा ही है, साथ–ही–साथ ऋणग्रस्तता, पारिवारिक विघटन, बाल–अपराध, वेश्यावृति, गरीबी, भूमि–हस्तान्तरण आदि की समस्या भी उत्पन्न हो गई है।

## 8. अशिक्षा (Illiteracy)

निर्धनता, अभिरूचि का अभाव, उचित शिक्षा एवं आधारभूत सुविधाओं की कमी, जागरूकता का अभाव आदि अनेक ऐसे कारण है जिनके फलस्वरूप जनजातियों में अशिक्षा व्याप्त है। आज भी आधे से अधिक जनजातीय जनसंख्या अशिक्षित है।

### 9. औद्योगिकीकरण व नगरीकरण (Industrialisation and Urbanisation)

औद्योगिकीकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रिया के कारण विस्थापन एवं पुनर्वास की समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। विस्थापन के कारण मनोवैज्ञानिक, सामाजिक व सांस्कृतिक सन्तुलन भी चरमरा गया है।

### 10. निर्जनीकरण (Depopulation)

आज बहुत सी ऐसी जनजातियाँ हैं जिनकी जनसंख्या बहुत ही कम हो गई है तथा वे विलुप्ति के कगार पर हैं। उदाहरण के लिए बिहार के चेरो, पहाड़िया, विरहोर आदि, आन्ध्र प्रदेश के चेंचू, केरल के कादार, अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह के ओंगे, जारवा तथा दूसरी जनजातियाँ, उत्तर प्रदेश के राजी आदि शामिल किये जा सकते हैं जिनकी जनसंख्या ह्रास की ओर अग्रसर है।

### 11. दुर्गम निवास (Inaccessible Habitats)

दुर्गम निवास स्थान भी एक प्रमुख समस्या है जिनके फलस्वरूप इन तक पहुँचना कठिन है।

### 12. सांस्कृतिक सम्पर्क की समस्या (Problem of Cultural Contact)

इसके फलस्वरूप बाहरी संस्कृतियों से इनका सम्पर्क हुआ है। फलतः अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई है। विजनजातीकरण की समस्या भी उत्पन्न हुआ है।

## 22.6 अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए किये गये संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधान

भारतीय संविधान में अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों को प्रोत्साहन देने तथा सामाजिक निर्योग्यताओं को दूर करने के लिए संरक्षण की व्यवस्थायें की गई हैं। कुछ प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं –

1. अनु०–342 में जनजातियों को सूचीबद्ध करने का प्रावधान है।
2. अनु०–15(4) में सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक हितों के प्रोत्साहन के लिए प्रबन्ध है कि राज्य, धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।
3. अनु०–16(4) पदों एवं नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान करता है।

4. अनु०–19(5) जनजातीयं क्षेत्रों में अबाध संचरण, भूमि क्रय–विक्रय आदि के सन्दर्भ में जनजातियों के हितों की रक्षा के लिए प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार देती है।

5. अनु०–23 मानव के अवैध व्यापार और बलात् श्रम पर प्रतिबन्ध लगाता है।

6. अनु०–29 अनुसूचित जातियों को सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकार प्रदान करता है।

7. अनु०–46 में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य दुर्बल वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों की अभिवृद्धि का प्रावधान है।

8. अनु०–164 में बिहार, उड़ीसा और मध्यप्रदेश राज्यों में जनजातियों के कल्याण के भारसाधक मन्त्री की नियुक्ति का प्रावधान है।

9. अनु०–330, 332 एवं 334 के तहत अनुसूचित जनजातियों के लिए लोकसभा एवं विधान सभाओं में आरक्षण का प्रावधान है।

10. अनु०–338 में जनजातियों के कल्याण के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा किये जाने का प्रावधान है।

11. अनु०–339(1) के तहत अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग की नियुक्ति का प्रावधान है।

12. अनु०–244(2) के अनुसार असम की जनजातियों के लिए जिला और प्रादेशिक परिषद् स्थापित करने का प्रावधान है।

13. अनुसूचित जनजातियों पर होने वाले अत्याचारों को रोकने के लिए 1989 में 'अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम' बनाया गया है।

## 22.7 अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु कार्यक्रम

### 1. "विशेष बहुउद्देशीय जनजाति विकास खण्ड" योजना 1955

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान जनजातियों के व्यवस्थित विकास का यह प्रथम प्रयास था। इसके अन्तर्गत ही जनजातीय उपयोजना को भी आरम्भ किया गया।

### 2. जनजातीय विकास खण्ड

तृतीय पंचवर्षीय योजना में जनजाति विकास खण्डों का प्रादुर्भाव हुआ। इसका मुख्य उद्देश्य जनजातियों के सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में गतिशील सुधार लाना था।

### 3. जनजातीय उपयोजना तथा एकीकृत जनजातीय विकास परियोजना

पाँचवीं योजना में सभी अनुसूचित क्षेत्रों व समूहों की विशिष्ट समस्याओं पर ध्यान देने के लिए इस योजना की शुरूआत की गई थी।

### 4. बहुउद्देशीय वृहद् समितियाँ

जनजातियों की आवश्यकताओं को एकीकृत रूप में आपूर्ति के लिए इन समितियों का गठन 1974 में देश के जनजातीय क्षेत्रों में प्रारम्भ हुआ।

**5.** जनजातीय लोगों द्वारा तैयार की गई वस्तुओं विशेषकर वनों के पदार्थों से तैयार की गयी छोटी–मोटी चीजों को बाजार में बिक्री के लिए पहुँचाने तथा गरीब जनजातियों का शोषण करने वाले निजी व्यापारियों से छुटकारा दिलाने के उद्देश्य से जनजातीय सहकारी विपणन विकास परिसंघ (ट्राइफेड) की स्थापना सन् 1987 में की गयी थी।

**6.** इसके अतिरिक्त अनेक योजनायें जैसे – जनसंख्या के शैक्षिक सुधार के लिए छात्रावास योजना (1989–90), पुस्तक बैंक योजना (1991–92), राजीव गांधी छात्रवृत्ति उच्च शिक्षा के लिए, व्यावसायिक प्रशिक्षण योजना (1992–93), जनजातीय लड़कियों के लिए शिक्षा योजना (1993–94) विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

## 22.8 जनजातीय समस्याओं के समाधान के लिए सुझाव

जनजातीय समस्याओं के समाधान के लिए अनेक विद्वानों ने अपने– अपने सुझाव प्रस्तुत किये हैं। एस०सी० राय एवं वेरियर एलिवन ने पुनरूत्थान का, हट्टन एवं मजूमदार ने पृथक्करण का, घुरिये, ए०आर० देसाई, एन०के० बोस आदि ने आत्मसात का, एल्विन ने 'राष्ट्रीय पार्क' का सुझाव दिये हैं। कृषि एवं कृषि से सम्बन्धित उद्योगों का विकास कर तथा वनों पर जनजातीय अधिकारों को सुनिश्चित कर जनजातियों की आर्थिक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। परम्परागत सामाजिक मूल्यों एवं संस्थाओं को पुनर्जीवित कर सामाजिक समस्याओं को कम किया जा सकता है। आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं का प्रचार–प्रसार कर स्वास्थ्य की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। सरकारी योजनाओं के सफल क्रियान्वयन एवं जनजागरूकता के माध्यम से अशिक्षा, बेरोजगारी, कुपोषण आदि की समस्याओं का समाधान ढूँढना सम्भव है।

## 22.9 सारांश

स्वतन्त्रता के बाद जनजातीय भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन आया है। फिर भी जनजातीय समाज अनेक प्रकार के समस्याओं से जूझ रहा है। अनेक जनजातीय विकास कार्यक्रम एवं योजनाएँ संचालित की जा रही हैं, परन्तु उनके वांछित परिणाम नहीं मिल रहे हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विकास जनित समस्याएँ जनजातीय लोगों के लिए ज्यादा गम्भीर हुये है। विस्थापन, विजनजातीयकरण, सांस्कृतिक–विक्षोभ, वनों का विनाश तथा वन भूमि से उनका विस्थापन, बाहरी समाज के सम्पर्क के कारण वेश्यावृत्ति, मानव–तस्करी एवं

यौन–संचरित बिमारियों का प्रचार आदि में विस्तार हुआ है। इनके फलस्वरूप अनेक जनजातीय आन्दोलनों का विकास भी हुआ है।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि जनजातियों के विकास की योजनाओं का सही क्रियान्वयन किया जाये। इनके विस्थापन के पूर्व ही पुनर्वास की योजनाओं को मूर्त रूप दिया जाये, इनकी संस्कृति को संरक्षित करते हुए उनका आधुनिकीकरण किया जाये, ताकि इन्हें भी समाज के मुख्य धारा से जोड़ा जा सके।

## 22.10 सन्दर्भ ग्रन्थ


1. Fernandes, Walter (ed.), 1992, National Development and Tribal Deprivation, New Delhi, Indian Social Institute.
2. Roy, Burman, 1970, 'Challenges and Responses in Tribal India', in M.S.A. Rao (ed.) Social Movements in India.
3. Elvin, Verrier, 1960, A Philosophy for NEFA, Govt. of Assam, Shillong.
4. Vidyarthi, L.P, 1984, Tribal Development and its Adminstration, Allahabad, Kitab Mahal.
5. तिवारी, जयकान्त, 2003, भारत का समाजशास्त्र, लखनऊ, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान।
6. हसनैन, नदीम, 2009, समकालीन भारतीय समाज, लखनऊ, भारत बुक सेन्टर।


## 22.11 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. जनजाति से क्या अभिप्राय है?
2. जनजातियों की प्रमुख आर्थिक समस्याएँ क्या हैं?
3. जनजातीय समाज पर विकास का क्या प्रभाव हैं?
4. 'राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति' आयोग के क्या कार्य हैं?

### (ब) दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. जनजाति को परिभाषित कीजिए तथा इनकी प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
2. **जनजातियों के प्रमुख समस्याओं का वर्णन कीजिए।**
3. जनजातियों के कल्याण के लिए किये गये संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधानों की चर्चा कीजिए।

## (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. जनजातियों को 'पिछड़े हिन्दू' किसने कहा है?

   (अ) जी०एस० घुरये (ब) डी०एन० मजुमदार

   (स) वेरियन एल्विन (द) बी०एस० गुहा

2. निम्न में से कौन एक जनजातियों की विशेषता नहीं हैं?

   (अ) निश्चित भू–क्षेत्र (ब) एक विशिष्ट संस्कृति

   (स) एक नाम (द) इनमें से कोई नहीं

3. ट्राइफेड की स्थापना कब की गई थी?

   (अ) 1980 (ब) 1987

   (स) 1990 (द) 1995

4. ''विशेष बहुउद्देशीय जनजाति विकास खण्ड योजना'' किस पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत शुरू की गई थी?

   (अ) प्रथम (ब) द्वितीय

   (स) तृतीय (द) चतुर्थ

5. ''अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम' संसद द्वारा कब पारित किया गया?

   (अ) 1989 (ब) 1990

   (स) 1992 (द) 1995

## 22.12 प्रश्नोत्तर

**1. (अ), 2. (द), 3. (ब), 4. (ब), 5. (अ)**

# इकाई–23

# अल्पसंख्यक

## इकाई की रूप–रेखा


23.0 उद्देश्य

23.1 प्रस्तावना

23.2 अल्पसंख्यक का अर्थ

23.3 अल्पसंख्यकों की विशेषतायें

23.4 भारतीय समाज में अल्पसंख्यक

(क) धार्मिक अल्पसंख्यक (ख) भाषायी अल्पसंख्यक

23.5 मुस्लिम अल्पसंख्यक एवं समस्याएँ

23.6 ईसाई अल्पसंख्यक एवं समस्याएँ

23.7 सिख अल्पसंख्यक एवं समस्याएँ

23.8 अन्य अल्पसंख्यक वर्ग एवं समस्याएँ

23.9 अल्पसंख्यकों की समस्याओं का कारण

23.10 अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधान

23.11 सारांश

23.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

23.13 सम्बन्धित प्रश्न

(अ) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

23.14 प्रश्नोत्तर


## 23.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- अल्पसंख्यक वर्ग की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- अल्पसंख्यक वर्गों के विभिन्न प्रकारों को समझ सकेंगे।
- भारत के विभिन्न धार्मिक अल्पसंख्यक वर्गों के बारे में जान पायेंगे।

- अल्पसंख्यक वर्गों की समस्याओं एवं उसके कारणों को समझ सकेंगे।
- अल्पसंख्यक वर्गों के कल्याण एवं रक्षोपाय के लिए किये गये संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधानों से अवगत हो सकेंगे।

## 23.1 प्रस्तावना

भारत समस्त विश्व में अपनी प्रजातीय एवं सांस्कृतिक बहुलता के लिए जाना जाता है। यहाँ अनेक धर्म, जाति, प्रजाति, भाषा एवं क्षेत्र के लोग निवास करते हैं। यहाँ की जनसंख्या में आश्चर्यजनक रूप से धार्मिक, सांस्कृतिक, क्षेत्रीय, प्रजातीय एवं भाषायी विभिन्नतायें पायी जाती है। भारतीय समाज जनसंख्या एवं भाषायी विभिन्नता के आधार अनेक अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक वर्गों में विभक्त है। परन्तु परम्परागत मूल्यों एवं मिश्रित संस्कृति के आन्तरिक गुणों के कारण ये सभी वर्ग आपसी सौहार्द्र के साथ भारत की भूमि पर सहनिवास करते हैं। यही कारण है कि 21वीं शताब्दी में भी यह प्राचीन सभ्यता दुनियाँ के सफलतम एवं सबसे बड़े लोकतन्त्र के रूप में आज भी कायम है।

## 23.2 'अल्पसंख्यक' का अर्थ

सामान्यतः यह मान्यता रही है कि एक भाषा विशेष को बोलने वाले अथवा एक धर्म विशेष को मानने वाले लोगों की संख्या यदि तुलनात्मक रूप से कम होती है तो उसे अल्पसंख्यक वर्ग माना जाता है। इसके विपरीत अनेक समाज विज्ञानियों का मानना है कि जनसंख्या का कम होना अल्पसंख्यक वर्ग की कोई मजबूत कसौटी नहीं माना जा सकता है, अपितु उसी वर्ग को अल्पसंख्यक कहा जाना चाहिए जो समाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े एवं उपेक्षित हों तथा साथ–ही–साथ जिन्हें राजनैतिक शक्ति–संरचना में विभिन्न अधिकारों से वंचित किया जाता हो।

शाब्दिक अर्थ के रूप में देखें तो 'Minority' शब्द (अल्पसंख्यक) लैटिन भाषा के शब्द 'Minor' और उसके प्रत्यय 'ity' से मिलकर बना है जिसका अन्य बातों के साथ मतलब है, 'मिलकर एक सम्पूर्ण प्रणाली बनाने वाले समूहों में से संख्या में कम।' ऑक्सफोर्ड शब्दकोश में अल्पसंख्यक को इस तरह परिभाषित किया गया है – ''छोटे होने की स्थिति या तथ्य या ऐसी संख्या जो पूरी संख्या की आधी से कम है।'' वेब्सटर शब्दकोश में इसे इस प्रकार परिभाषित किया गया है – ''अलग पहचान की भावना और प्रस्थिति की जागरूकता रखने वाला समूह जो आमतौर पर वृहद समूह से अलग रहता है तथा जिसका वह अंश होता है अल्पसंख्यक माना जाता है।''

सुमंत बैनर्जी (1999) ने अल्पसंख्यक के अर्थ और उसकी व्याख्या में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आयाम जोड़ते हुए लिखा है कि ''आज मानव अधिकारों के सन्दर्भ में अल्पसंख्यक शब्द के संख्या पर आधारित समूह के अर्थ में नहीं प्रयोग होता बल्कि इसका अर्थ अब किसी राज्य या समाज में प्रभुताविहिन और वंचित समूह (non-dominant and disadvanatged group) भी हो सकता है, भले ही वह नृजातीय/सजातीय, धार्मिक या भाषाई समूह हो।''

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि अल्पसंख्यक वह वर्ग है जिनकी जनसंख्या तृलनात्मक रूप से कम हो, जो तुलनात्मक रूप से कम शक्तिशाली हों, जिन्हें बहुसंख्यकों के अधीन तथा बहु–संख्यकों से हीन समझा जाता हो तथा जिन्हें प्रायः भेदभाव और पक्षपातपूर्ण व्यवहार का शिकार होना पड़ता है। अल्पसंख्यकों की कुछ सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषतायें होती हैं और यह समुदाय इन विशेषताओं को बनाने रखने का प्रयत्न करता है।

## 23.3 अल्पसंख्यकों की विशेषतायें

- अल्पसंख्यक वह समुदाय है जिसकी जनसंख्या तुलनात्मक रूप से कम हो।
- अल्पसंख्यकों को प्रायः बहुसंख्यकों से हीन समझा जाता है।
- अल्पसंख्यक समुदाय किसी न किसी रूप में बहुसंख्यक समुदाय के अधीन होता है।
- किसी भी समाज में अल्पसंख्यकों की कुछ अलग सजातीय, धार्मिक, भाषायी, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषतायें होती है तथा यह समुदाय इन विशिष्टताओं को बनाये रखने का प्रयत्न करता है।
- सामान्यतया अल्पसंख्यकों का निर्धारण भाषा या धर्म के आधार पर होता है।
- अल्पसंख्यक समुदाय को तुलनात्मक रूप से भेदभाव एवं पक्षपात सहना पड़ता है। अतः वे तुलनात्मक अभावबोध के शिकार होते है।
- अल्पसंख्यकों का तुलनात्मक अभावबोध अधिकांशतः मनोवैज्ञानिक होते है।
- अल्पसंख्यकों द्वारा अपनी पहचान एवं शक्ति को बनाये रखने के लिए राजनैतिक आन्दोलनों का सहारा लिया जाता है।

## 23.4 भारतीय समाज में अल्पसंख्यक

भारत में सामान्यतया दो प्रकार के अल्पसंख्यक समूह पाये जाते हैं –

**(क) धार्मिक अल्पसंख्यक** **(ख) भाषायी अल्पसंख्यक**

### (क) धार्मिक अल्पसंख्यक (Religious Minorities)

भारत में अनेक धार्मिक सम्प्रदायों के लोग निवास करते हैं जिनमें प्रमुख रूप से हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी हैं। स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान अंग्रेजों के 'फूट डालों और राज करो' की नीति के कारण भारत में सर्वप्रथम धार्मिक अल्पसंख्यकों की समस्या उभर कर सामने आयीं। 1909 के मार्ले–मिण्टों

सुधार के नाम पर अंग्रेजों ने अल्पसंख्यक की अवधारणा का बीजारोपण किया। प्रारम्भ में प्रगतिवादी हिन्दुओं एवं मुसलमानों ने इसका विरोध किया परन्तु बाद में अपनी निहित स्वार्थ के कारण मुस्लिम लीग ने इसे अपनी राजनीतिक मुद्दा बना लिया। उनका मानना था कि स्वतन्त्र भारत में मुसलमान अल्पसंख्यक हो जायेंगे फलतः 1930 के लाहौर अधिवेशन में मुसलमानों के लिए पृथक् राष्ट्र की मांग की गई। स्वतन्त्रता के पश्चात हिन्दुस्तान एवं पाकिस्तान दो राष्ट्रों का जन्म हुआ। भारत धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित हुआ तथा संविधान में यह व्यवस्था की गई कि किसी भी व्यक्ति से धर्म, जाति, आयु, लिंग, जन्म–स्थान आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा तथा धार्मिक स्वतन्त्रता को मूल अधिकार में रखा गया।

वर्तमान में देश की कुल जनसंख्या में जहाँ हिन्दुओं का प्रतिशत लगभग 80 है उसकी तुलना में अन्य धर्म के अनुयायियों का प्रतिशत बहुत कम है। यथा देश की कुल जनसंख्या में मुसलमानों का प्रतिशत 13.40, ईसाईयों का 2.30, सिखों का 1.90, बौद्धों का 0.80 तथा जैनियों का 0.40 है। इसके अलावा पारसी सहित अन्य समूहों का जनसंख्या 0.70 प्रतिशत है। सिख, बौद्ध, जैन आदि धर्म हिन्दू धर्म में होने वाले सुधारवादी आन्दोलनों का परिणाम होने के कारण कभी हिन्दू धर्म से पूरी तरह अलग नहीं रहे। इसके विपरीत मुस्लिम एवं ईसाई धर्म की संस्कृति हिन्दू धर्म से काफी भिन्न होने के कारण उन्होंने अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाये रखने के लिए अनेक अधिकारों एवं सुविधाओं की मांग की।

### (ख) भाषायी अल्पसंख्यक (Linguistic Minoriites)

भारत में भाषा के आधार पर भी अल्पसंख्यक वर्गों को समझा जा सकता है। पूरे भारत में हिन्दी भाषी लोगों की संख्या सबसे अधिक लभग 40% है जबकि अन्य दूसरी भाषा बोलने वालों का प्रतिशत बहुत कम है। इस आधार पर हिन्दी भाषी बहुसंख्यक हैं जबकि अन्य भाषा से सम्बन्धित समुदाय अल्पसंख्यक हैं। क्षेत्रीय आधार पर देखा जाये तो उत्तर भारत में हिन्दी की प्रधानता है, जबकि दक्षिण में तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, आदि भाषाएँ प्रचलन में है। पूर्वी भारत में जहाँ बंगाली, असमी, उड़िया, मणिपुरी की प्रधानता है वहीं पश्चिमी भारत में मराठी, गुजराती आदि भाषायें बोली जाती है। फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग भाषाएँ बहुसंख्यक एवं अल्पसंख्यक वर्गों में विभाजन करता है। फलतः भाषा के आधार पर भारत में अल्पसंख्यक वर्गों का विभाजन ज्यादा उचित प्रतीत नहीं होता।

## 23.5 मुस्लिम अल्पसंख्यक एवं समस्याएँ

भारत में मुसलमान सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय है। हालाँकि हिन्दू जनसंख्या की तुलना में ये अल्पसंख्यक हैं परन्तु इनकी संख्या बहुत बड़ी है। दुनिया में इण्डोनेशिया के बाद सर्वाधिक मुस्लिम जनसंख्या भारत में है। भारत में लगभग 13.40 प्रतिशत जनसंख्या मुसलमानों की है। असम, केरल,

पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार आदि राज्यों में इनकी संख्या सर्वाधिक है। जम्मू कश्मीर एवं लक्षद्वीप में मुसलमान बहुसंख्यक है।

मुस्लिम अल्पसंख्यकों की मुख्य समस्या सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक है। राजनीति में मुसलमानों की भागीदारी बहुत कम है। प्रशासनिक सेवाओं एवं सरकारी नौकरियों में भी इनका प्रतिनिधित्व बहुत कम है। इसका मुख्य कारण मुसलमानों में शिक्षा की कमी है। अभी भी 60% मुसलमान निरक्षर है। जनसंख्यात्मक दृष्टिकोण से कम होने के कारण उनमें असुरक्षा की भावना पाई जाती है। राजनीतिक एवं निहित स्वार्थों के कारण अक्सर साम्प्रदायिकता की समस्या भारत में उत्पन्न होती रहती है। मुसलमान मुख्यतः सिलाई–बुनाई जैसे कुटीर उद्योगों से जुड़े हैं, परन्तु इन उद्योगों की हालत दिन–प्रतिदिन खराब होती जा रही है। कृषक एवं कृषिक कामगारों की समस्याएँ भी विकट हैं। बहुसंख्यकों द्वारा मुसलमानों के निष्ठा के प्रति संदेह, मुसलमानों में हीनता की भावना, भाषायी अलगाव आदि भी मुसलमानों की प्रमुख समस्याएँ रही हैं।

## 23.6 ईसाई अल्पसंख्यक एवं समस्याएँ

भारत में जनसंख्या के आधार पर ईसाई दूसरे बड़े धार्मिक अल्पसंख्यक हैं। इनकी जनसंख्या भारत की कुल जनसंख्या का 2.3 प्रतिशत है। ईसाईयों की समाजिक–आर्थिक स्थिति मुसलमानों की तुलना में अच्छी है। इनमें साक्षरता दर भी अधिक है परन्तु राजनीति एवं प्रशासनिक सेवाओं में इनकी भागीदारी नगण्य ही है। ईसाईयों की मुख्य समस्या धर्मान्तरण के आधार पर बहुसंख्यक हिन्दुओं का विरोध है। हिन्दुओं का आरोप हैं कि ईसाई मिशनरी दलित हिन्दुओं एवं जनजातियों का आर्थिक प्रलोभनों के द्वारा उनका धर्मान्तरण कर ईसाई धर्म का प्रसार कर रहे है। इस कारण अनेक साम्प्रदायिक दंगे भी हुए हैं। पूर्वोत्तर भारत के राज्यों में ईसाईयों की संख्या बढ़ जाने से क्षेत्रवाद एवं अलगाववाद की समस्या उत्पन्न हुई है। इसके अलावा धर्मान्तरित ईसाईयों की समस्याएँ भी है जिन्हें धर्मान्तरण के बाद मूल ईसाईयों के जैसा सामाजिक–आर्थिक अधिकार एवं सम्मान नहीं प्राप्त हो सका।

## 23.7 सिख अल्पसंख्यक एवं समस्याएँ

ईसाईयों के बाद सिख तीसरी बड़ी धार्मिक अल्पसंख्यक वर्ग है। इनकी जनंसख्या भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 1.9% है। भारत के अन्य राज्यों में जहाँ सिख अल्पसंख्यक हैं, वहीं पंजाब में सिख बहुसंख्यक हैं। पंजाब की कुल जनसंख्या में इनकी भागीदारी लगभग 61% प्रतिशत है। शिक्षा, राजनीति, व्यापार–वाणिज्य एवं कृषि के क्षेत्र में सिखों का अच्छा प्रतिनिधित्व है। सांस्कृतिक आधार पर सिख एवं हिन्दुओं में काफी समानता है। इसका कारण यह है कि सिख धर्म, हिन्दू धर्म में होने वाले सुधारवादी आन्दोलनों का परिणाम है। 1980 के दशक में सिख अलगाववाद का जन्म हुआ था जो अलग खालिस्तान की मांग कर रहे थे। इनके कारण भारत में अनेक साम्प्रदायिक दंगे हुए हैं परन्तु वर्तमान में ऐसी समस्याएँ नहीं है।

## 23.8 अन्य अल्पसंख्यक वर्ग एवं समस्याएँ

अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों में बौद्ध, जैन, पारसी आदि हैं। कम जनसंख्या के कारण राजनीतिक, प्रशासनिक क्षेत्रों में इनकी भागीदारी कम है परन्तु आर्थिक

क्षेत्रों में इनकी सहभागिता खासकर जैनों एवं पारसियों की उल्लेखनीय है। शिक्षा के क्षेत्र में भी उनका योगदान अमूल्य है। हिन्दू धर्म से निकटता के कारण बौद्धों एवं जैनों में अन्य अल्पसंख्यकों की भाँति समस्याएँ नहीं है। पारसी समुदाय की जनसंख्या काफी कम होने से इनके समापन की समस्या अवश्य है। अल्पसंख्यक समुदाय होने के बावजूद इन वर्गों को अपनी धार्मिक एवं सांस्कृतिक पहचान बनाये रखने की समस्या नहीं है।

## 23.9 अल्पसंख्यकों की समस्याओं का कारण

अल्पसंख्यकों की समस्याओं के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं –

1. विभिन्न धार्मिक समुदायों के पूर्वाग्रह एवं पक्षपात पूर्ण भावनाएँ।
2. स्व–संस्कृति–केन्द्रिता की भावना।
3. धार्मिक कट्टरता, रूढ़िवाद एवं इससे सम्बन्धित संगठनों का विकास।
4. राजनीतिक दलों के निहित स्वार्थ एवं तुष्टिकरण की नीति।
5. अशिक्षा की समस्या।
6. विभिन्न देशों के कुटनीतिक स्वार्थ आदि।

## 23.10 अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधान

स्वतन्त्रता पश्चात् अल्पसंख्यकों की सुरक्षा, विकास एवं कल्याण के लिए अनेक संवैधानिक एवं कानूनी रक्षोपाय किये गये हैं। उनमें से प्रमुख प्रावधान निम्नांकित हैं –

1. संविधान के अनुच्छेद–14 में समानता का अधिकार सभी नागरिकों को दिया गया है।
2. अनुच्छेद–15(1) में कहा गया है कि राज्य किसी भी नागरिक से धर्म, जाति, प्रजाति, लिंग, आयु या जन्म–स्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।
3. अनुच्छेद–16 में अवसर की समानता सभी नागरिकों को दिया गया है।
4. अनुच्छेद–25 में किसी भी धर्म को स्वीकार करने तथा उसके प्रचार–प्रसार का अधिकार दिया गया है।

5. अनुच्छेद–29 के अन्तर्गत भाषा, लिपि और संस्कृति के संरक्षण का अधिकार।

6. अनुच्छेद–30 के तहत शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना तथा देख–रेख का अधिकार।

7. अनुच्छेद–350 में किसी व्यथा के निवारण के लिए सरकार के किसी प्राधिकारी को राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभ्यावेदन देने का अधिकार।

8. अनुच्छेद–350(क) शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा देने का प्रावधान करता है।

9. संविधान के अनुच्छेद–350(ख) के अन्तर्गत अल्पसंख्यकों को प्रदान किये गये रक्षापायों से सम्बन्धित सभी मामलों की जाँच के लिए एक विशेष अधिकारी का प्रावधान है।

10. अल्पसंख्यकों के कल्याण, उनके हितों की रक्षा तथा समस्याओं की जाँच के लिए 1992 में संसद के अधिनियम के द्वारा 'राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग' का गठन किया गया है।

11. संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956 के अनुसार 1957 में 'भाषाई अल्पसंख्यक आयुक्त' की नियुक्ति की गई है।

12. अल्पसंख्यकों की समस्याओं के समाधान एवं उनके कल्याण के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों के परस्पर सहयोग से एक 15–सूत्री कार्यक्रम तैयार किया गया है।

13. अल्पसंख्यकों की आर्थिक स्थिति में सुधार करने के लिए सरकार द्वारा 500 करोड़ रूपये की पूँजी से एक 'राष्ट्रीय अल्पसंख्यक विकास एवं वित्त निगम' की स्थापना 1994 में की गई है।

14. अल्पसंख्यकों की समस्याओं के विश्लेषण, उस पर शोध कार्य एवं समाधान के लिए सुझाव प्रस्तुत करने के लिए मौलाना आजाद शिक्षा प्रतिष्ठान की स्थापना की गई है।

15. उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए 'मौलाना आजाद छात्रवृत्ति' की स्थापना की गई है।

16. 2006 से अलग 'अल्पसंख्यक मामलों की मंत्रालय' की स्थापना की गई है।

## 23.1 सारांश

भारत दुनिया का सर्वाधिक विकसित एवं स्थापित लोकतान्त्रिक समाज है जहाँ संविधान के तहत सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के समान अधिकार दिये गये हैं। अल्पसंख्यक समुदाय से किसी भी आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया गया है। इनके धार्मिक विश्वास, संस्कृति, भाषा आदि के विकास के लिए अनेक रक्षोपाय किये गये हैं। यद्यपि राजनैतिक स्वार्थबद्धता के कारण कभी–कभी साम्प्रदायिक दंगे होते रहे हैं फिर भी भारतीय संस्कृति के लोचशीलता के कारण सभी धर्मों के लोगों का समागम भारतीय 'मिश्रित संस्कृति' में दिखाई देता है। केन्द्र तथा राज्य की सरकारें हमेशा से अल्पसंख्यकों की समस्याओं के निराकरण के

लिए प्रयासरत रही है। अल्पसंख्यकों के सर्वांगीण विकास से ही राष्ट्र का सर्वांगीण विकास सम्भव है।

## 23.12 सन्दर्भ ग्रन्थ


1. Husain, Munirual & Lipi Ghosh (ed.), 2002, Religius Minorities in South Asia, New Delhi, Manak Publishers.
2. भारत : 2012, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार।
3. Ahmad, Aijaz, 2002, On Communalism and Globalization, New Delhi, Three Essays Publishers.
4. Wagley, Charles and Harris, Marvin, 1958, Minorities in New World, New York, Columbia, University Press.
5. Pandey, Rajendra, 1997, Minorities in India : Protection and Welfare, New Delhi, Ashish Publishing Corporation.
6. हसनैन, नदीम, 2009, समकालीन भारतीय समाज, लखनऊ, भारत बुक सेन्टर।
7. तिवारी, जयकान्त, 2003, भारत का समाजशास्त्र, लखनऊ, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान।


## 23.13 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. साम्प्रदायिकता क्या है?
2. अल्पसंख्यकों के किन्हीं दो समस्याओं को लिखें?
3. भाषायी अल्पसंख्यक किसे कहते हैं?
4. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के क्या कार्य हैं?

### (ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. अल्पसंख्यक वर्ग से आप क्या समझते हैं? इनके प्रमुख समस्याओं की चर्चा कीजिए।

2. अल्पसंख्यकों के कल्याण एवं संरक्षण के लिए किए गये संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधानों का वर्णन कीजिए।

3. अल्पसंख्यकों के समस्याओं के कारणों की विवेचना कीजिए। इसके समाधान के लिए आप कुछ सुझाव प्रस्तुत कीजिए।

## (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की स्थापना कब की गई थी?

   (अ) 1990 में (ब) 1991 में

   (स) 1992 में (द) 1993 में

2. संविधान के किस अनुच्छेद के तहत शैक्षिक संस्थाओं के स्थापना एवं देख–रेख का प्रावधान हैं?

   (अ) अनुच्छेद–25 (ब) अनुच्छेद–29

   (स) अनुच्छेद–30 (द) अनुच्छेद–26

3. निम्नलिखित से कौन भारत की सबसे बड़ी धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय हैं?

   (अ) मुसलमान (ब) सिख

   (स) ईसाई (द) बौद्ध

4. 'राष्ट्रीय अल्पसंख्यक विकास एवं वित्त निगम' की स्थापना कब की गई हैं?

   (अ) 1990 (ब) 1992

   (स) 1994 (द) 1996

5. निम्नलिखित में से कौन मुस्लिम अल्पसंख्यकों की प्रमुख समस्या हैं?

   (अ) निरक्षरता का उच्च प्रतिशत

   (ब) प्रशासन एवं राजनीति में न्यूनतम सहभागिता

   (स) गरीबी एवं बेरोजगारी

   (द) सभी

## 23.14 प्रश्नोत्तर

**1. (स), 2. (स), 3. (अ), 4. (स), 5. (द)**

# इकाई–24

# नृजातीयता

## इकाई की रूपरेखा


24.0 उद्देश्य

24.1 प्रस्तावना

24.2 नृजातीयता का अर्थ

24.3 नृजातीयता की परिभाषा

24.4 नृजातीयता एवं अल्पसंख्यक समूह

24.5 नृजातीयता एवं वर्ग

24.6 नृजातीयता : अवधारणात्मक स्पष्टीकरण

24.7 भारत में नृजातीय संघर्ष की समस्या

24.8 नृजातीय संघर्ष के कारण

24.9 सारांश

24.10 सन्दर्भ सूची

24.11 सम्बन्धित प्रश्न

(अ) लघु–उत्तरीय प्रश्न

(ब) दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

(स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

24.12 प्रश्नोत्तर


## 24.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- नृजातीयता की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- नृजातीयता एवं अल्पसंख्यक तथा नृजातीयता एवं वर्ग में समानता एवं विभिन्नता को जान सकेंगे।
- भारत में नृजातीयता की समस्या, उसके कारण एवं निवारण पर टिप्पणी कर सकेंगे।
- आधुनिकीकरण के दौर में भारत में उत्पन्न होने वाले नृजातीय संघर्षों के स्वरूपों को समझ सकेंगे।

## 24.1 प्रस्तावना

भारत एक बहुलक समाज है। बहुजन समाज वह है जिसमें सामाजिक संगठन के अन्तर्गत दो या दो से अधिक समूह एक राजनीतिक इकाई में मिश्रित हुए बगैर साथ–साथ रहते हैं। बहुलक समाज में प्रत्येक समूह अपनी संस्कृति, अपने विचार एवं अपनी जीवन–पद्धति अपनाने के लिए स्वतन्त्रत होता है। परन्तु इसमें दबाव मूलक राजनीतिक प्रबन्धनों के जरिये प्रभुत्वशाली समूह (समुदाय) विभिन्न संस्कृतियों एवं संस्थाओं की विविधताओं को एक साथ सम्बद्ध रखता है। फलतः कुछ समूह इसे अपनी पहचान के लिए खतरा मानते हैं और नृजातीयता की समस्या ऐसे बहुजन समाज में प्रबल हो जाता है।

## 24.2 नृजातीयता का अर्थ

नृजातीयता शब्द को प्राचीन ग्रीक शब्द 'एथनोस' (Ethnos) से लिया गया है जिसका अर्थ ऐसी स्थितियों से है जहाँ मानव समूह एक साथ रहते और काम करते हैं (Cf. Ostergard, 1992)। आजकल इस शब्द का प्रयोग ''लोग'' अथवा ''राष्ट्र'' के रूप में भी किया जाता है। परन्तु समाजशास्त्रियों, सामाजिक नृशास्त्रियों, पूर्व उपनिवेशवादी प्रशासकों एवं विद्वानों ने बहुलवादी समाजों के अध्ययन के आधार पर इस शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थों में किया है। आज 'एथनिक' का अर्थ ऐसे लोगों का समूह माना जाता है जिन्हें उनकी प्रजाति, भाषा और संस्कृति की विशेषता के आधार पर अन्य समूहों से अलग किया जा सकता है। समकालीन समाजशास्त्र और लोक चर्चित अवधारणा में इस शब्द का प्रयोग अभी नया–नया है। 1941 में प्रकाशित ''माइकी सिटी सीरीज'' के साथ इस शब्द का प्रचलन सामान्य अमरीकी प्रयोग से लोकप्रिय हुआ। डब्ल्यू० लायड वार्नर एवं पाल एस० लुन्ट ने अपने लेखनों में नृजातीयता की अवधारणा को स्पष्ट किया है।

## 24.3 नृजातीयता की परिभाषा

उन समूहों को जिन्हें हम सांस्कृतिक आधारों जैसे भाषा, लोक संस्कृति, वेशभूषा, धर्म, हाव–भाव, बाह्य आचरण आदि के आधार पर पहचानते हैं, उन्हें समाजशास्त्रीय शब्दावली में नृजातीय या सजातीय समूह कहा जाता है। मैक्सवेबर (1965 : 306) ने नृजातीय समूह की परिभाषा देते हुए कहा कि ''जिन समूहों में शारीरिक विशेषता अथवा प्रथाओं अथवा दोनों की समानता के आधार पर यह विश्वास हो कि वे किसी समान पूर्वज के वंशज हैं या जिन समूहों में उपनिवेश एवं प्रवास के समान अनुभवों से जुड़े याददाश्तों के आधार पर रक्त सम्बन्धी न होने पर भी गैर नातेदारी साम्प्रदायिक (सामुदायिक) सम्बन्धों की निरन्तरता बरकरार हो, वे समूह नृजातीय समूह कहे जाते हैं।''

यिंगर (1976) के अनुसार नृजाति समूह वृहद समाज का वह हिस्सा है जिसके सदस्य साझा संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं। नृजाति समूह में जैवकीय निरन्तरता का होना आवश्यक गुण है, इस आधार पर पूर्वज के वंशज के रूप में पीढ़ी–दर–पीढ़ी सदस्यता हस्तान्तरित होते रहने का विश्वास पाया जाता है तथा वे ऐसी क्रियाओं (रीति–रिवाजों) को अपनाते हैं जिनके आधार पर उनके समान उद्‌भव एवं साझा संस्कृति की विशेषताएँ स्पष्ट हो सके। यिंगर की परिभाषा से नृजातीय समूह की तीन आधारभूत विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं –

**(अ)** एक नृजाति समूह को दूसरों के द्वारा भाषा, धर्म, प्रजाति, उद्‌भव क्षेत्र आदि आधारों पर एक पृथक समूह के रूप में देखा जाता है।

**(ब)** एक नृजाति समूह के सदस्य अपने आपको वृहद समाज से भिन्न मानते हैं।

**(स)** एक नृजाति समूह के सदस्य अपनी साझा पृष्ठभूमि एवं साझी विशेषताओं को अभिव्यक्त करने वाली क्रियाओं एवं रीति–रिवाजों का पालन करते हैं।

## 24.4 नृजातीयता एवं अल्पसंख्यक समूह

एक बहुलक समाज के परिप्रेक्ष्य में नृजातीय समूह को कुछ विचारकों (शैफर : 1979, स्करमरहोर्न : 1978, आदि) ने अल्पसंख्यक समूह के रूप में पुकारा है किन्तु नृजातीय समूह को अल्पसंख्यक समूह मानने में उसका प्रयोग प्रतिबन्धित एवं सीमित हो जाता है। अल्पसंख्यक समूह वह है जिसके सदस्यों को उसकी शारीरिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं के कारण दूसरों के द्वारा अलग किया जाता है ताकि उनके साथ भेदभाव एवं असमान बर्ताव किया जा सके। इस प्रकार अल्पसंख्यक समूह के सदस्य अपने आपको सामूहिक भेदभाव का शिकार मानते हैं (लुई विर्थ : 1945)। अल्पसंख्यक समूह की अनिवार्य विशेषता है – सामूहिक भेदभाव किया जाना या अपने आपको सामूहिक भेदभाव का शिकार समझना। दूसरी ओर नृजातीय समूह की अनिवार्य विशेषता है – दूसरे समूह से पृथकता किन्तु सामूहिक भेदभाव का शिकार होना आवश्यक नहीं है। वहीं अल्पसंख्यक अपने जनसंख्यात्मक रूप में भी बहुसंख्यकों से कम होते हैं।

## 24.5 नृजातीयता एवं वर्ग

मार्क्स ने अपने सामाजिक स्तरीकरण के सिद्धान्त में निहित 'वर्ग की अवधारणा' का मूल 'वर्ग–चेतना' को माना है। 'वर्ग चेतना' एक नियम है जो समूहों के बीच एकता को मजबूत करता है। एक सामाजिक रचना के रूप में नृजातीयता भी बंधनों और एकत्रित होने के विचार से विकसित हुई है। वर्ग का सिद्धान्त देने वाले विचारक दूसरों द्वारा किये जाने वाले शोषण को 'वर्ग सत्ता' को मजबूत करने का साधन मानते है। इसी प्रकार नृजातीयता की रचना में सहयोग करने वाले नृजातीय चेतना को विकसित करने के लिए संयुक्त अनुभवों पर ध्यान देते हैं। इन संयुक्त और समान लक्षणों के बावजूद अनेक समाजशास्त्री और समाजविज्ञानी यह तर्क देते हैं कि नृजाति वर्ग नहीं है। परन्तु कुछ समाजशास्त्रियों जैसे डेनियल बेल (1975), ग्लेजर और मोयनियन (1975) आदि का मानना है कि नृजातीयता एवं वर्ग में स्पष्ट सम्बन्ध है। बेल का कहना है कि वर्ग भावना में कमी एक ऐसा कारक जिसे नृजातीय पहचान के अभ्युदय के साथ जोड़ा जा सकता है। उनका कहना है

कि नृजातीयता और अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है क्योंकि यह हितों को प्रभावशाली बन्धनों के साथ जोड़ सकती है। जब अन्य सामाजिक भूमिकाएँ अधिक निरपेक्ष और अवैयक्तिक हो जाती हैं तो नृजातीयता पहचान के कुछ मूर्त बिन्दु देती है जैसे – भाषा, भोजन, संगीत और नाम।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों अवधारणाएँ अलग होने के बाद भी कुछ मुद्दों में जा जुड़े हैं। आज के परिवर्तनवादी दौर में दोनों घुल–मिल गए हैं।

## 24.6 नृजातीयता : अवधारणात्मक स्पष्टीकरण

नृजातीयता की अवधारणा का प्रयोग दो दृष्टिकोणों से किया गया है –

**(अ)** नृजातीयता एक सांस्कृतिक व्याख्या (रचना) के रूप में तथा

**(ब)** नृजातीयता एक परिस्थिति की व्याख्या (रचना) के रूप में।

सांस्कृतिक व्याख्या के अनुसार नृजातीयता, यथार्थ अथवा काल्पनिक समन्वित प्रतीकों पर आधारित वह भावना है जिसके आधार पर एक नृजाति समूह के सदस्य अपने आपको दूसरों से पृथक समझते हैं अथवा दूसरों के द्वारा उन्हें पृथक पहचान प्राप्त होती है (कोहेन : 1974)। इन समन्वित प्रतीकों के अन्तर्गत सांस्कृतिक विशेषताओं, जैसे – भाषा, धर्म एवं मूल्य; क्षेत्रीय विशेषताओं, जैसे – धर्म अथवा स्थानीयता; एवं जैवकीय विशेषताओं, जैसे वंशज एवं नातेदारी, इत्यादि के मिश्रण पर आधारित विशेषताएँ शामिल हैं (बर्गेस : 1978)। इस प्रकार सांस्कृतिक दृष्टिकोण से नृजातीयता के अन्तर्गत कुछ सामान्य विशेषतायें – भौगोलिक उद्‌भव, वंशज, संस्कृति या इनके मिश्रण के आधार पर पृथकता का भाव शामिल है। इस आधार पर नृजातीयता के द्वारा किसी समूह को प्रदत्त पहचान प्राप्त होती है।

प्रस्थिति की व्याख्या के अनुसार नृजातीयता विभिन्न (बहुल) नृजातीय प्रतिस्पर्द्धाओं की परिस्थितियों में अपने नृजाति समूह के प्रति जागरूक (चेतन) होना है। परिस्थिति की दृष्टिकोण से नृजातीयता के लिए सांस्कृतिक, क्षेत्रीय एवं जैवकीय विशेषताओं का होना अनिवार्य है जिसमें अपने नृजाति समूह के प्रति चेतना विकसित हेाती है (ओमन : 1990)। नृजातीय अस्मिता विभिन्न समूहों के व्यवहारों को गतिशील करती है।

नृजातीयता की अवधारणा अन्य दो प्रतिस्पर्द्धी दृष्टिकोण के आधार पर भी विश्लेषित की गयी है – (अ) आदिरूपीय (प्राइमोर्डियल) एवं उपयोगितावादी दृष्टिकोण तथा (ब) वैषयिक एवं व्यैक्ति दृष्टिकोण। आदिरूपीय (प्राइमोर्डियल) दृष्टि से नृजातीयता एक प्राकृतिक बन्धन है जो एक नृजाति समूह के सदस्यों में पारस्परिक सम्बन्धी होने का भाव उत्पन्न कराती है। उपयोगितावादी दृष्टि से नृजातीयता सामूहिक राजनीतिक क्रियाओं का एक अभिकरण है। इस दृष्टिकोण में

समान हितों के आधार पर नृजाति समूह के सदस्यों के आपस में जुड़ने के उद्देश्य को महत्त्व दिया गया है। इसी प्रकार वैषयिक दृष्टि से नृजातीयता प्रतीकात्मक रचना प्रक्रिया है जिसका एक विशिष्ट प्रतिमान होता है (कोहन : 1976; वान डेन वर्गे : 1976)। वैयक्तिक दृष्टि से नृजातीयता एक आत्मचेतन प्रवृत्ति है जिसमें अपनी श्रेणी के प्रति बोध पाया जाता है (गीर्ज : 1963; पैटरसन : 1975)।

## 24.7 भारत में नृजातीय संघर्ष की समस्या

भारत अत्यधिक नृजातीय विविधताओं वाला देश है। भारत में प्रजाति, भाषा, धर्म, जाति आदि नृजातीय विविधता के प्रमुख आधार रहे हैं। भारत के ये नृजातीय समूह एक–दूसरे से न केवल शारीरिक या जनसांख्यिकीय विशेषताओं की दृष्टि से भिन्न हैं, अपितु अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता की दृष्टि से भी भिन्न हैं। भारत में प्राचीन काल से ही समय–समय पर इन नृजातीय समूहों के बीच हिंसा एवं विरोध की घटनाएँ होती रही हैं जो आधुनिक भारत के राष्ट्र–राज्य के सन्दर्भ में गम्भीर चिन्ता का विषय है। भारत में होने वाले इन नृजातीय संघर्षों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है – 1. भाषायी संघर्ष, 2. धार्मिक संघर्ष, 3. क्षेत्रीयता/नृजातीय राष्ट्रवाद की समस्या।

### भाषायी संघर्ष

भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विविधता के साथ भारत में भाषा की विविधता भी महत्त्वपूर्ण है। यहाँ भाषा के मामले में तनाव और संघर्ष का वातावरण सदैव बना रहा है। स्वतन्त्रता के पश्चात् सरकार द्वारा छोटे–छोटे हिस्सों में बँटे हुए नृजातीय समाज में व्यापक राष्ट्रीय एकीकरण करने के प्रयासों ने देश के कई हिस्सों में तनाव पैदा कर दिया। सरकार ने विभिन्न नृजातीय समूहों के सदस्यों में एकता स्थापित करने व राष्ट्रीय समुदाय के निर्माण में लिए हिन्दी को राष्ट्र–भाषा चुना। 'अनेकता में एकता' के इस प्रयास का भारतीय जनता पर विपरीत प्रभाव पड़ा। जैसे दक्षिण भारत, विशेषकर तमिलनाडु में गैर हिन्दी भाषी आन्दोलन; असम, महाराष्ट्र आदि में भी हिन्दी भाषियों के विरूद्ध हिंसा आदि।

### धार्मिक संघर्ष

भारत में धार्मिक संघर्ष ब्रिटिश शासनकाल की ''बाँटों और शासन करो'' की नीति के पश्चात् नये स्वरूप में उभरा है। मध्यकाल में जहाँ राजनीतिक शक्तियों के माध्यम से धार्मिक विस्तार का प्रयास किया गया, वहीं आधुनिक काल में धर्म के आधार पर राजनीतिक हितों की पूर्ति के प्रयास किये जा रहे हैं। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में भारत में राजनीतिक दलों द्वारा धर्म की आड़ में राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के प्रयासों ने सम्प्रदायवाद को बढ़ावा दिया है। स्वतन्त्रता के बाद देश के विभिन्न राज्यों में हुए साम्प्रदायिक दंगा को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है। धार्मिक आधार पर पंजाब के पृथक राज्य आन्दोलन हो या उड़ीसा या पूर्वोत्तर में हिन्दू–ईसाई संघर्ष हो, सभी मामलों में राजनीतिक स्वार्थपूर्ति हावी रहा है।

### क्षेत्रीयता/नृजातीय राष्ट्रवाद की समस्या

आधुनिकीकरण एवं विकास की नवीन प्रक्रिया ने भारत में क्षेत्रीय विषमता की प्रक्रिया को बढ़ा दिया है। कुछ राज्य एवं क्षेत्रों का अधिक विकास हो चुका है, जबकि कुछ राज्य सारे संसाधनों के होने के बावजूद आज भी पिछड़ा है। फलतः

इन क्षेत्रों का नृजातीय समूह के रूप में रूपान्तरण हो रहा है तथा अनेक क्षेत्रीय आन्दोलन उभर रहे हैं। चाहे अलग तेलांगना की मांग हो या झारखण्ड आन्दोलन; देश के हर कोने से छोटे एवं नवीन राज्यों को बनाये जाने के लिए हिंसक आन्दोलन हो रहे है। क्षेत्रीय आन्दोलनों में 'भूमिपुत्र' (सन ऑफ द स्वायल) के नारे के आधार पर क्षेत्रीय पृथकतावादी आन्दोलन को उभारा है। यही आन्दोलन नृजातीय राष्ट्रवाद का रूप ले रहा है।

## 24.8 नृजातीय संघर्ष के कारण

भारत में नृजातीय संघर्षों का अध्ययन कुछ सामान्य तत्त्वों की पहचान करता है जो संघर्ष का कारण बन जाते हैं। ये नृजातीय संघर्ष साम्प्रदायिक संगठनों तथा संस्थाओं के प्रयासों का परिणाम होते हैं। संघर्ष से जनता को जोड़ने के लिए सामान्य रूप से नृजातीयता के आधार पर बने संगठन राजनैतिक दलों के समर्थन से आगे आ जाते हैं। नृजातीय संघर्षों के स्पष्ट कारण चाहे सांस्कृतिक विषमताओं, यथा – भाषा, क्षेत्र या धर्म पर आधारित क्यों न हों, किन्तु वास्तविक एवं मौलिक कारण उनके परस्पर विरोधी आर्थिक एवं राजनीतिक हितों में विद्यमान होते हैं। तनाव सामान्यतः तब शुरू होता है जब अल्पसंख्यक समूह के अन्दर असुरक्षा का भाव उत्पन्न होता है और वह अनुभव करता हैं कि बहुसंख्यक समूह की तुलना में उसे आर्थिक या राजनीतिक क्षेत्र में समानता का दर्जा नहीं मिल पा रहा है। इस स्थिति में वहाँ जिस समूह का प्रभाव होता है, उसके विरूद्ध वह समूह अपनी नृजातीय अस्मिता को सक्रिय बनाता है और कुछ लोगों को संगठित कर संघर्ष के लिए प्रेरित करता है।

## 24.9 सारांश

नृजातीय संघर्ष आधुनिक भारत की गम्भीर समस्या है। अतः इसकी तर्कसंगतता और प्रभावशाली प्रतिक्रिया को ध्यान में रखते हुए एक ऐसे सामान्य और एकमात्र कारण खोजने की आवश्यकता है जो इन संघर्षों के लिए उत्तरदायी है। अनेक नृजातीय अध्ययनों के आधार पर स्पष्ट होता है कि आर्थिक असमानताएँ नृजातीय संघर्षों का एक प्रमुख कारण है। अतः इन्हें समाप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए। आर्थिक समानता जैसे स्थायी निवारण के साथ–साथ कुछ तात्कालिक प्रभावी उपाय भी करने की जरूरत है। ये कारण अफवाह, दूसरे समुदायों के प्रति सन्देह की भावना अथवा धार्मिक सभाओं के प्रधानों, स्थानीय राजनैतिक दलों और नेताओं द्वारा जनसमस्याओं की धार्मिक भावनाओं को भड़काने आदि किसी भी रूप में पाये जा सकते है। अतः समय रहते इन्हें पहचान कर इनका निराकरण करना आवश्यक है।

## 24.10 सन्दर्भ ग्रन्थ


1. Schafer, Richard T, 1979, Racial and Ethnic Groups, Boston, Little Brown & Co.
2. Schermehorn, R.A., 1978, Ethnic Plurality in India, Arizona, University of Arizona Press.
3. Burgress, M.E., 1978, The Resurgence of Ethnicity : Myth or Reality, Ethnic and Racial Studies, I (3).
4. Cohen, A. 1974, Urban Ethnicity, London, Tavistock Publications.
5. Weber, Max, 1965, 'Ethnic Group', in Parsons, T. et.al. (ed.) Theories of Societies : Fundations of Modern Sociological Theory, New York, The Free Press.
6. Yinger, J.M., 1976, 'Ethnicity in Complex Societies : Structural, Cultural and Characterological Factor', in Coser, L.A. and Larson, O.N. (ed.) The Uses of Controversy in Sociology, New York, Free Press.
7. तिवारी, जयकांत, 2003, भारत का समाजशास्त्र, लखनऊ, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान।
8. पाण्डेय, एस०एस० (2009), समाजशास्त्र, दिल्ली, टाटा मैग्राहिल।


## 24.11 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. नृजाति समूह क्या है?
2. नृजातीय आन्दोलनों के नाम लिखें?
3. नृजातीयता के मुख्य कारण क्या हैं?
4. आधुनिकीकरण का नृजातीयता पर क्या प्रभाव पड़ा है?

### (ब) दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. नृजातीयता से आप क्या समझते हैं? इसके कारणों की व्याख्या कीजिए।
2. भारत में नृजातीय आन्दोलन पर एक निबन्ध लिखें।
3. भारत में नृजातीयता से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का वर्णन करें तथा इसके निदान के लिए आवश्यक उपायों को रेखांकित करें।

### (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. नृजातीयता का मुख्य लक्षण है?

   (अ) सांस्कृतिक आधार पर पहचान के प्रति उन्मुखता

   (ब) जनसंख्या (स) बंधुत्व

   (द) इनमें से कोई नहीं

2. कौन नृजातीय आन्दोलन है?

(अ) झारखण्ड आन्दोलन (ब) छात्र आन्दोलन

(स) किसान आन्दोलन (द) इनमें से कोई नहीं

3. नृजातीयता से कौन–कौन सी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं?

(अ) क्षेत्रवाद (ब) सम्प्रदायवाद

(स) नृजातीय–राष्ट्रवाद (द) सभी

4. निम्नलिखित में से कौन सिद्धान्त नृजातीयता से जुड़ा हैं?

(अ) नृजातीयता का सांस्कृतिक सिद्धान्त

(ब) नृजातीयता का परिस्थितिक सिद्धान्त

(स) दोनों

(द) इनमें से कोई नहीं

5. निम्नलिखित में से कौन नृजातीयता के कारण हैं?

(अ) आर्थिक असमानता (ब) शोषण

(स) पहचान के खतरे (द) सभी

## 24.12 प्रश्नोत्तर

1. (अ), 2. (अ), 3. (द), 4. (स), 5. (द)

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

# DCESY-102
# भारत में सामाजिक समस्याएँ

## खण्ड – 7

## पारिस्थितिकी एवं संसाधन


**इकाई – 25** **259–266**
भूमि : प्राप्यता, नियंत्रण एवं प्रबन्धन

**इकाई – 26** **267–274**
जल : प्राप्यता, नियंत्रण एवं प्रबन्धन

**इकाई – 27** **275–282**
वन : प्राप्यता, नियंत्रण एवं प्रबन्धन

**इकाई – 28** **283–289**
राज्य तथा अन्य संगतियों की भूमिका

# उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

## उत्तर प्रदेश प्रयागराज

### परामर्श समिति

| | | |
|---|---|---|
| कुलपति | – | प्रो० के० एन० सिंह |
| कुलसचिव | – | डॉ० ए० के० गुप्ता |

### सम्पादक

1. प्रो. सोहन राम यादव
   विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
   बी० एच० यू० वाराणसी। – 221005
2. प्रो. जगदीश नारायण सिंह
   प्रोफेसर, समाजशास्त्र
   बी० एच० यू० वाराणसी। – 221005

### पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | डॉ० एम० एन० सिंह | – | पूर्व निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ० प्र० रा० ट० मु० वि० वि०, प्रयागराज |
| 2. | डॉ० इति तिवारी | – | प्रभारी, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ० प्र० रा० ट० मु० वि० वि०, प्रयागराज |
| 3. | रमेश चन्द्र यादव | – | शैक्षणिक परामर्शदाता, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र०रा०ट०मु०वि०वि०, प्रयागराज |

### DCESY-102 – भारत में सामाजिक समस्यायें

**लेखक**

| | | |
|---|---|---|
| रमेश चन्द्र यादव | – | शैक्षणिक परामर्शदाता, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र०रा०ट०मु०वि०वि०, प्रयागराज |
| डॉ. इति तिवारी | – | एसो० प्रोफेसर, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज। |
| प्रो. मोहम्मद सलीम | – | प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| प्रो. ए.के. पाण्डेय | – | प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| डॉ. अखिलेश कुमार राय | – | एसों. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, वसंत कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी। |
| डॉ. अरूणा कुमारी | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। |
| डॉ. सुस्मिता सिंह | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी। |
| डॉ. दिनेश कुमार सिंह | – | असिं. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। |

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज – 2023

ISBN- 978-93-83328-42-0

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

# पारिस्थितिकी एवम् संसाधन

## खण्ड परिचय

पर्यावरण प्रदूषण एक गम्भीर सामाजिक समस्या है जो दिनोंदिन विकराल रूप धारण करती जा रही है। मनुष्य यह जानते हुए भी कि उसके कार्यों का प्रकृति पर दुष्प्रभाव पड़ेगा फिर भी अपनी त्वरित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह निकट भविष्य में पर्यावरण को होने वाले नुकसान की परवाह नहीं कर रहा है । इसी सन्दर्भ में प्रस्तुत खण्ड में हम प्राकृतिक संसाधनों का मानव पर प्रभाव तथा मानव गतिविधियों का प्राकृतिक संसाधनों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करेंगे।

Ecology शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अर्नेस्ट हेकेल ने 1869 में Oekologie के रूप में किया। Oekologie दो ग्रीक शब्दों से मिलकर बना है। Oikas एवं Logos जहाँ Oikas = घर तथा Logos = अध्ययन। Ecology को हिन्दी में पारिस्थितिकी कहते हैं। यहाँ पारिस्थितिकी से आशय है जीवधारियों (पौधों एवं जन्तुओं) का उनके वास स्थानों के सन्दर्भ में किया जाने वाला अध्ययन। पारिस्थितिकी को परिभाषित करते हुए अर्नेस्ट हेकल ने लिखा है कि ''वातावरण और जीव–समुदाय के पारस्परिक सम्बन्धेां के अध्ययन को पारिस्थितिकी कहते हैं।''पारिस्थितिकी में जीव एवं उनके स्थान के जीवीय एवं अजीवीय घटकों का अध्ययन होता है साथ ही इनके बीच व्याप्त जटिल अन्तर्सम्बन्धेां को भी इसमें शामिल किया जाता है।

## प्रायः पारिस्थितिकी दो अर्थों में प्रयुक्त होता है–

1. प्राणी विज्ञान की एक शाखा के रूप में जीव और उसके पर्यावरण के सम्बन्धों के अध्ययन का विज्ञान

2. एक व्यवस्था के रूप में जो कि जीव और उसके पर्यावरण की अन्तर्क्रिया से उत्पन्न होता है।

   यह दूसरा रूप जो एक व्यवस्था को इंगित करता है वही 'पारिस्थितिकी तन्त्र'' कहलाता है।

इसमें कोई एक जीव या कोई एक पौधा या उसका समुदाय पृथक होकर कोई कार्य नही करता बल्कि वे अन्य जीव–जन्तुओं के साथ मिलकर कार्य करते हैं तथा एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। साथ ही पारिस्थितिकी तन्त्र में जीवीय समुदाय अजीवीय वातावरण के साथ भी कार्य करता है तथा एक दूसरे पर प्रभाव भी डालता है। पारिस्थितिकी तंत्र की संकल्पना सर्वप्रथम ए0जी0 टैन्सले द्वारा सन् 1935 में दी गई थी। जहां तक संसाधन का सवाल है संसाधन ऐसी वस्तुओं को कहते हैं जो हमारे लिए उपयोगी होते हैं अर्थात् वस्तु या पदार्थ की उपयोगिता ही

उसे संसाधन बनाती है। हम अपने दैनिक जीवन में पीने के लिए जल, खाने के लिए अनाज, सब्जियाँ, पढ़ने के लिए पुस्तक आदि का प्रयोग करते हैं ये सभी संसाधन हैं क्योंकि ये हमारे लिए महत्वपूर्ण और उपयोगी हैं। किसी भी वस्तु के संसाधन में परिणत होने के लिए दो चीजें महत्वपूर्ण है– 1. समय 2. प्रौद्योगिकी। ये दोनो ही हम लोगों की आवश्यकताओं से सम्बन्धित हैं। जब तक हम किसी भी कार्य में ज्ञान–विचार, समय, खोज शामिल नहीं करेंगे तब तक हमें और अधिक संसाधन प्राप्त नहीं होंगे और हमारे पास संसाधन सीमित रह जायेंगे।

संसाधनों को सामान्यतः दो भागों में रखा जा सकता है– प्राकृतिक संसााधन और मानव निर्मित संसाधन।

प्रकृति से प्राप्त होने वाली वस्तुओं को जब हम बिना संशोधन या कुछ मात्रा में किये गये संशोधन के बाद ही प्रयोग में लाते है तो वे प्राकृतिक संसाधन कहलाते हैं। मानव निर्मित संसाधन ऐसे प्राकृतिक पदार्थ हैं जो मूल रूप में उपयोगी नहीं होते लेकिन उनका मूल रूप बदल दिया जाये तो वे उपयोगी बन जाते हैं। **जैसे–**जब तक हमने लोहा बनाना नही सीखा तब तक लौह–अयस्क हमारे लिए अनुपयोगी था। लेकिन उसके बारे में जैसे ही ज्ञान प्राप्त हुआ वह हमारे लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन बन गया। प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से मानव निर्मित संसाधन बनते हैं।

हमें संसाधनों के संरक्षण के प्रति अत्यन्त सतर्क रहना चाहिए। कुछ संसाधन ऐसे हैं जिनके नवीकृत होने में बहुत ज्यादा समय लगता है। वे समाप्त न हो इसके लिए हमें सतत पोषणीय विकास को अपनाना होगा अर्थात हम संसाधनों का प्रयोग इस तरीके से करना चाहिए कि आगे आने वाले लोगो के लिए उनका संरक्षण भी हो तथा संसाधनों को पुनः चक्रण का अवसर मिले। हमें संसाधनो का उपयोग संतुलित ढंग से करना चाहिए अन्यथा वो दिन दूर नहीं जब ये उपयोगी संसाधन हमारे लिए दुर्लभ हो जाएंगे।

यह खण्ड कुल–4 इकाइयों में विभक्त है। इकाई–25, इकाई–26, इकाई–27 एवं इकाई–28। **इकाई–25** में भूमि संसाधन के विषय में बताया गया है। मृदा कितने प्रकार के होते हैं? मृदा को प्रदूषित करने वाले कारक कौन–कौन से हैं? मृदा प्रदूषण का प्रभाव किन–किन रूपों में दिखायी पड़ता है? मृदा प्रदूषण रोकने की विधियाँ कौन–कौन सी हैं? इन मुद्दों को जानने का प्रयास किया गया है। अन्त में सारांश, संदर्भ ग्रंथ, संबंधित वस्तुनिष्ठ प्रश्न आदि दिये गये हैं।

**इकाई–26** में जल की प्राप्यता, नियंत्रण व संरक्षण की बात की गयी है। इसमें जल एक महत्वपूर्ण संसाधन क्यों है? जल प्रदूषण के कौन–कौन से कारण हैं तथा जल प्रदूषण के मानव जीवन पर क्या दुष्प्रभाव पड़ते हैं? जल संरक्षण के कौन–कौन से उपाय हैं? गुणवत्ता के आधार पर जल कितने प्रकार के होते हैं? इसका वर्णन किया गया है। अन्त में सारांश, संदर्भिका, संबंधित वस्तुनिष्ठ प्रश्न आदि दिये गये हैं।

**इकाई–27** में वन की प्राप्यता तथा उसके संरक्षण के विषय में बताया गया है। वन कितने प्रकार के होते हैं? इनकी क्या–क्या विशेषताएं हैं? वन उन्मूलन से उत्पन्न होने वाली समस्याएं कौन–कौन सी है? वन संरक्षण की दिशा में कौन–कौन से प्रमुख प्रयास किये जा रहे हैं? इसका वर्णन किया गया है। अन्त में सारांश, संदर्भिका, संबंधित वस्तुनिष्ठ प्रश्न आदि दिये गये है।

**इकाई–28** में राज्य तथा अन्य संगतियों की भूमिका का वर्णन किया गया है। इसमें पर्यावरण एवं परिस्थितिकी के संरक्षण की आवश्यकता क्यों है? इस संदर्भ में राष्ट्रीय कानून क्या हैं? अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण के संरक्षण की संस्थाएं कौन सी हैं? इनके द्वारा किस तरह के अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास किये गये हैं? इनको जानने का प्रयास किया गया है। अन्त में संबंधित प्रश्न, संदर्भिका, संबंधित वस्तुनिष्ठ प्रश्न आदि दिये गये हैं।

# इकाई–25

# भूमि : प्राप्यता, नियंत्रण व प्रबन्धन

इकाई की रुपरेखा


25.0 उद्देश्य

25.1 प्रस्तावना

25.2 मृदा के प्रकार

25.3 भूमि के प्रकार

25.4 भूमि/मृदा प्रदूषण

25.5. मृदा प्रदूषण के कारण

25.6 मृदा प्रदूषण के प्रभाव

25.7 मृदा प्रदूषण रोकने के उपाय

25.8 मृदा संरक्षण की विधियाँ

25.9 सारांश

25.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

25.11 सम्बन्धित प्रश्न

(अ) दीर्घ उत्तरीय

(ब) लघु उत्तरीय

(स) वस्तुनिष्ठ

25.12. प्रश्नोत्तर


## 25.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

1. भूमि संसाधन की महत्ता को समझ सकेगे।
2. मृदा के प्रकार तथा वर्गीकरण पर विचार–विमर्श कर सकेंगे।
3. मृदा प्रदूषण के कारणों तथा प्रभावों पर टिप्पणी कर सकेंगे।
4. मृदा संरक्षण की विधियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

## 25.1 प्रस्तावना :

प्राकृतिक संसाधनों का एक महत्वपूर्ण भाग भूमि है। भू पृष्ठ के कुल भाग का लगभग 30 प्रतिशत भाग भूमि के अन्तर्गत आता है । इसमें भी पूरा भाग

निवास योग्य नही है। भूमि का उपयोग अनेक कार्यों जैसे कृषि, खनन, सड़क, उद्योगों की स्थापना, वानिकी आदि के लिए किया जाता है। वर्तमान समय में तेजी से बढ़ रही जनसंख्या के सामने भूमि उपलब्धता की समस्या सामने आ रही है। भूमि का उपयोग अनेक भौतिक कारकों द्वारा निर्धारित होता है जैसे मृदा, जलवायु, जल की प्राप्यता, स्थलाकृति आदि।

भूमि का ऊपरी परत जिसे हम उपरिवर्ती मृदा कहते हैं इसमें पाये जाने वाले जीवांश से पौधों को पोषक तत्व प्राप्त होता है और इसी मृदा पर अनेक छोटे–छोटे जीव जन्तुओं को शरण भी मिलता है। पेड़–पौधे जड़ो के माध्यम से पृथ्वी पर खड़े रहते हैं। इस प्रकार देखें तो भूमि हमारे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण संसाधन है।

## 25.2 मृदा के प्रकार :

मृदा के अध्ययन विज्ञान को **Pedology** कहा जाता है। मुख्यतः मृदा को निम्नलिखित चार भागों में बांटा गया है–

### 1. काली मिट्टी (Black Soil) :

बेसाल्ट चट्टानों के टूटने से काली मिट्टी बनती है । इसमें आयरन, चूना, एल्यूमिनियम, मैग्नीशियम की अधिकता होती है। टिटेनीफेरस मैग्नेटाइट एवं जीवांश की उपस्थिति के कारण इसका रंग काला होता है। इसे 'रेगुर मिट्टी' भी कहते हैं। यह मिट्टी कपास की खेती हेतु अत्यन्त उपयुक्त होने के कारण काली कपास की मिट्टी के नाम से भी जानी जाती है। भारत में काली मिट्टी महाराष्ट्र, गुजरात, उड़ीसा के दक्षिणी क्षेत्र, कर्नाटक के उत्तरी जिला, रामनाथपुरम राजस्थान के बूंदी एवं टोक जिलों में पायी जाती है।

### 2. लाल मिट्टी (Red soil) :

जलवायु में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप रवेदार एवं कायान्तरित शैलों के विघटन एवम् वियोजन से लाल मिट्टी बनती है। इस मृदा में सिलिका एवम् आयरन की अधिक मात्रा होती है। लौहऑक्साइड की उपस्थिति के कारण इस मिट्टी का रंग लाल होता है तथा यह मिट्टी अम्लीय प्रकृति की होती है । इसमें कपास, गेहूँ, दालें तथा मोटे अनाजों की कृषि की जाती है। भारत में आन्ध्र–प्रदेश एवं म0प्र0 के पूर्वी भाग, छोटा नागपुर के पहाड़ी क्षेत्र, मेघालय की खासी, गारों एवं जयन्तिया के पहाड़ी क्षेत्रों, राजस्थान में अरावली के पूर्वी क्षेत्रों आदि जगहों पर यह मिट्टी पायी जाती है।

### 3. लेटेराइट मिट्टी :

यह मिट्टी शैलों की टूट–फूट से निर्मित होती है । इस मिट्टी में आयरन एवं सिलिका की मात्रा ज्यादा होती है। इसे गहरी लाल लेटेराइट, सफेद लेटेराइट एवं भूमिगत जलवायी लैटेराइट के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

- गहरी लाल लेटेराइट मृदा में पोटाश तथा लौह आक्साइड की अधिकता होती है। इसकी उर्वरता अपेक्षाकृत कम होती है।

- सफेद लैटेराइट मिट्टी की उर्वरता सबसे कम होती है और इसका रंग केओलिंन के कारण सफेद होता है।

- भूमिगत जलवायी लैटेराइट मृदा सर्वाधिक उपजाऊ होती है । लेटेराइट मिट्टी चाय की कृषि हेतु अत्यन्त उपयुक्त होती है।

### 4. जलोढ़ मृदा (Alluvial soil) :

भारत के लगभग 22 प्रतिशत भाग पर जलोढ़ मिट्टी पायी जाती है । यह नदियों द्वारा लायी जाती है तथा अत्यन्त उपजाऊ होती है । इसमें पोटास बहुतायत से पाया जाता है। इस मिट्टी में धान, गेहूँ, मक्का आदि फसलें उगायी जाती हैं।

**जलोढ़ मिट्टी के दो प्रकार की हैं**–बागर और खादर ।

पुरानी जलोढ़ मृदा को बागर तथा नई जलोढ़ मृदा को खादर बोला जाता है। इस मिट्टी में पायी जाने वाली उर्वरता का गुण ही इसे अत्यन्त महत्वपूर्ण बना देता है।

## 25.3 भूमि के प्रकार–

स्वामित्व के आधार पर भूमि को 2 भागों में बांटा गया है–

1. निजी भूमि
2. सामुदायिक भूमि

निजी भूमि पर व्यक्तियों का स्वामित्व होता है जबकि सामुदायिक भूमि पर समुदाय का आधिपत्य रहता है । सामान्यतः सामुदायिक भूमि का प्रयोग समुदाय से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किया जाता है। सामुदायिक भूमि को **साझा सम्पत्ति संसाधन** भी कहा जाता है।

## 25.4 भूमि/मृदा प्रदूषण :

महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधनों में भूमि को शामिल किया जाता है और इसके अभाव में न सिर्फ मानव समुदाय का अस्तित्व गंभीर संकट में पड़ सकता है बल्कि समस्त जैव मण्डल को भी खतरे का सामना करना पड़ सकता है।आज जीव–जन्तुओं एवं पेड़ पौधो को पोषण प्रदान करने वाली मृदा भी प्रदूषण का शिकार हो रही है। जिस तरह हम जल के अभाव में जीवन की कल्पना नही कर सकते इसी तरह मृदा अभाव में भी हम स्वयं को संरक्षित नहीं कर पायेंगे। यदि मृदा क्षरण इसी तरह बढ़ता रहा तो आने वाले समय मे व्यापक समस्या का शिकार होना पड़ेगा।

## 25.5 मृदा प्रदूषण के कारण

प्राकृतिक अथवा मानवजनित कारणों अथवा दोनों कारणों से मृदा की गुणवत्ता में हुए ह्रास को मृदा प्रदूषण कहते हैं। इसके प्राकृतिक तथा मानव जनित दो कारण होते हैं। प्राकृतिक कारणों में वर्षा, वायु, तापमान, ज्वालामुखी, उद्‌गार, भूकम्प आदि प्रमुख हैं जिनसे मृदा अपरदन की समस्या उत्पन्न होती है तथा मृदा, प्रदूषण का शिकार हो जाती है। मानव जनित कारणों से आज मृदा प्रदूषण की समस्या बढ़ रही है। मानव अपने क्रिया कलापों से मृदा की पोषण क्षमता को दुष्प्रभावित करता है।

### मानवजनित कारणों में निम्नलिखित प्रमुख हैं–

1. औद्योगिक अपशिष्ट
2. खनन कार्य
3. पीड़कनाशी व रासायनिक खादों का प्रयोग

## 25.6 मृदा प्रदूषण का प्रभाव :

प्रदूषित मृदा में सब्जियाँ एवं अनाज उगाने तथा उनका प्रयोग करने से अनेक तरह के रोग फैलते हैं। मृदा अपरादन तथा भूस्खलन से भू–दृश्य खराब होता है साथ ही अनेक अन्य प्रदूषण जैसे वायु–प्रदूषण एवं जल प्रदूषण में भी वृद्धि होती है। मृदा प्रदूषण के कारण मिट्‌टी की उर्वरता भी क्षीण होने लगती है, परिणाम स्वरूप पैदावार कम हो जाती है तथा यह हमें आर्थिक रूप से कमजोर बनाती है।

## 25.7 मृदा प्रदूषण रोकने के उपाय :

1. घरेलू अपशिष्टों, अपमार्जकों व गंदे पानी को उपजाऊ भूमि पर नहीं गिराया जाना चाहिए। इन अपशिष्टों, अपमार्जकों को उपचारित करने के बाद ही मृदा पर छोड़ा जाना चाहिए साथ ही जिन खेतों या भूमि पर सब्जियाँ उगानी हो उसमें कीटनाशक का प्रयोग बहुत ही सीमित मात्रा में किया जाये ।
2. जैव पदार्थ एवं जल के बीच अनुकूल सह सम्बन्ध बनाये रखना चाहिए क्योंकि मृदा निर्माण की प्रक्रिया इस अनुकूलन पर ही निर्भर होती है।
3. फसलों में कीटनाशकों व उर्वरकों का सीमित प्रयोग होना चाहिए ।
4. महानगरों में अपशिष्टों के निस्तारण के लिए नगरपालिका के द्वारा उचित प्रबन्ध किया जाना चाहिए ।

5. गंदगी को एक स्थान विशेष में एकत्रित करके भी मृदा को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है।

### भूमि नियंत्रण व प्रबन्धन

भूमि को प्रकृति तथा मानवीय गतिविधियों से हो रही हानियों से बचाना, उसकी उर्वर क्षमता को नष्ट होने से बचाना तथा उसमें वृद्धि करना एवं मृदा अपरदन की समस्या को नियंत्रित करना ही भूमि प्रबन्धन/संरक्षण कहलाता है।

## 25.8 भूमि/मृदा संरक्षण की विधियाँ :

### 1. शस्यावर्तन द्वारा (By crop rotation ) :

खेतों में एक ही फसल बार–बार न बोकर क्रमिक रूप में बोना ही शस्यावर्तन कहलाता है। क्रमिक से तात्पर्य है कि फसलों को बोने का एक क्रम निर्धारित कर लेना चाहिए। इससे खनिज लवणों की समाप्ति का डर नही रहता क्योंकि अलग–अलग फसलों हेतु पोषक तत्वों की आवश्यकता भी अलग–अलग होती है जबकि एक ही फसल लगातार बोने से मृदा मे पाया जाने वाला पोषक तत्व जो उस फसल के उत्पादन में सहायक होता है, समाप्त होने का खतरा बना रहता है।

### 2. पट्टी खेती (Strip Cropping) :

ऐसी खेती पहाड़ी इलाकों में पाये जाने वाले ढलान क्षेत्रों में की जाती है। ढलान वाले क्षेत्रों में पानी का प्रवाह अत्यन्त तीव्र होता है । अतः जलीय मृदा अपरदन को रोकने हेतु जल–प्रवाह वाले दिशा में समकोण पट्टियाँ बना दी जाती हैं, ये पट्टियाँ छोटी–बड़ी फसलों के अनुसार बनायी जाती है। छोटे पौधों वाली पट्टी को **पंक्ति फसल** तथा बड़े पौधों वाली पट्टी को **आवरण फसल** कहते हैं। बड़ी पंक्ति में ज्वार, बाजरा, मक्का, गेहूँ, आदि बोये जाते हैं जबकि छोटी पंक्ति में मूंग, उड़द, चना, मटर आदि की खेती होती है।

### 3. समोच्च कृषि या कन्टूर कृषि (Contour forming) :

यह कृषि मैदानी तथा पहाड़ी दोनों क्षेत्रों में मृदा अपरदन को रोकने हेतु की जाती है। इसमें पट्टियाँ दाएं–बाएं गोलाकार रूप में बनायी जाती है। इस प्रकार ये पट्टियाँ बांध के रूप में मृदा अपरदन को रोकने में सहायक होती है।

### 4. वेदिका बनाना (Terracing ) :

वेदिका बनाने का कार्य अक्सर पहाड़ी क्षेत्रों की कृषि में किया जाता है ।इसमें ढलान वाले भूखण्डों को अलग–अलग रूपों जैसे सीढीनुमा, चपटे या समतल भूखण्डों में बाँट देते हैं। इस विधि में भूखण्डों के बीच में एक ऊँची मेंड़ बना दी जाती है जो जलीय मृदा अपरदन को कम कर देती है।

### 5. पशु चारण नियंत्रण (Control of Cattle Grazing) :

इस विधि मे प्रतिदिन एक ही स्थान पर पशुओं को नहीं चराया जाता है क्योंकि ऐसा करने से उस स्थान की वनस्पतियाँ तो नष्ट होती ही हैं साथ ही उनके खुरों से वहाँ की मिट्टी उखड़ जाती है और वर्षा होने पर मृदा अपरदन

बहुत तीव्र गति से होता है। इसके अतिरिक्त इस मृदा की उर्वरा क्षमता भी कम हो जाती है । अतः चारागाह का स्थान समय–समय पर परिवर्तित करते रहना चाहिए।

### 6. पुनः वनारोपण (Reforesting) :

इस विधि के अन्तर्गत जिन स्थानों से पेड़ों को काटा जा चुका है वहाँ पर पुनः वृक्षारोपण किया जाता है, इससे मृदा अपरदन को रोकने में सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त यदि हम छोटे–छोटे घासों एवं वनस्पतियों को लगाते हैं तो ये मृदा–कटान रोकने में और भी सहायक होते हैं।

### 7. पतवारीकरण (Mulching) :

जब कभी अत्यन्त तीव्र गति से वर्षा हो रही हो तो इस समय मृदा को अपरदित होने से बचाने के लिए खेत के ऊपर खर–पतवार डाल दिया जाता है। इस प्रकार खेतों को ढक देने से मृदा सुरक्षित हो जाती है और फिर जब वर्षा ऋतु समाप्त हो जाये तो वो खर–पतवार हटाकर खेत साफ कर दिया जाता है।

## 25.9 सारांश

भूमि हमारे उपयोगी संसाधनों में शामिल हैं । भूमि की उपरिवर्ती परत, जिसमें हम पेड़–पौधों को उगाते हैं तथा जीव–जन्तु भी जहाँ निवास करते हैं, को दिन–प्रतिदिन मानवीय तथा प्राकृतिक गतिविधियों से प्रदूषण का शिकार होना पड़ रहा है। आज मृदा प्रदूषित हो रही है तथा उसके अनेक दुष्प्रभाव मानव समुदाय पर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहे हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि मृदा संरक्षण हेतु ठोस प्रयत्न किये जायें। इसके बारे में जन जागरूकता बढ़ायी जाये तथा मृदा को हानि पहुचाने वाले रसायनों व अपशिष्टों का प्रयोग बन्द किया जाये। प्रदूषित जल को मृदा पर डालने से पूर्व उसका शोधन किया जाये तभी मृदा को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है और भूमि को संरक्षित किया जा सकता है।

## 25.10 सन्दर्भ ग्रन्थ :


1. पाण्डेय, संगीता, 2009, पर्यावरण का समाजशास्त्र, भवदीय प्रकाशन,फैजाबाद ।
2. Guha, Ramchandra,1989, The Unquiet Woods:Ecological Change and Peasant Resistance in the Himalayas, Oxford University Press,Delhi .
3. Odum, E.P. 1987,Fundamentals of Ecology,W.B. Saunders company, London.
4. Saxena, A.B., 1986, 'Environmental Education', National Psychological Corporation, Delhi.

## 25.11 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. भूमि हमारे लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन क्यों हैं? भारत में पायी जाने वाली मृदा के प्रकार व उनकी विशेषताएं लिखिए।
2. मृदा प्रदूषण के कारण एवं उनके प्रभावों का वर्णन कीजिए।
3. मृदा संरक्षण के लिए प्रयुक्त विधियों का वर्णन कीजिए ।

### (ब) लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. मृदा प्रदूषण रोकने के उपाय बताइए।
2. लेटेराइट मिट्टी के बारे में एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
3. भूमि प्रदूषण के मानव जनित गतिविधियों पर प्रकाश डालिए।
4. मृदा प्रदूषण का मानव पर क्या प्रभाव पड़ता है?

### (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. निम्नलिखित में कौन सी विधि तीव्र ढालों पर मृदा अपरदन रोकने के लिए उपयुक्त है?

   (क) मलचिंग (ख) वेदिकाकृषि

   (ग) रक्षक मेखला (घ) कन्टूर कृषि

2. निम्न में कौन सी विधि मृदा अपरदन हेतु पहाड़ी और मैदानी दोनों क्षेत्रों में उपयुक्त है?

   (क) समोच्च कृषि (ख) पतवारी करण

   (ग) वेदिका (घ) शस्यावर्तन

3. स्वामित्व के आधार पर भूमि को कितने भागों में बाटा गया है?

   (क) 3 (ख) 4

   (ग) 5 (घ) 2

4. मृदा–प्रदूषण का मानव जनित कारण क्या है?

   (क) वायु (ख) भूकम्प

   (ग) खनन कार्य (घ) वर्षा

5. मृदा–प्रदूषण का प्राकृतिक कारण है –

   (क) औद्योगिक अपशिष्ट (ख) खनन

   (ग) रसायनों का प्रयोग (घ) वायु

6. मृदा के अध्ययन के विज्ञान को क्या कहा जाता है ?

(क) पेड्रोलाजी (ख) पोमोलॉजी

(ग) जियोलॉजी (घ) इकोलॉजी

## 25.12 प्रश्नोत्तर–

1. (ख), 2. (क), 3. (घ), 4. (ग), 5. (घ), 6. (क),

# इकाई–26

# जल : प्राप्यता, नियंत्रण एवं प्रबन्धन

## इकाई की रुपरेखा


26.0 उद्देश्य

26.1 प्रस्तावना

26.2 गुणवत्ता के आधार पर जल का वर्गीकरण

26.3 जल की उपलब्धता

26.4 जल प्रदूषण की समस्या

26.5 जल प्रबन्धन व नियंत्रण

26.6 जल से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी

26.7 सारांश

26.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

26.9 सम्बन्धित प्रश्न

(अ) दीर्घ उत्तरीय

(ब) लघु उत्तरीय

(स) वस्तुनिष्ठ

26.10 प्रश्नोत्तर


## 26.0 उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप :

1. जल हमारे लिए एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन क्यों है? इस पर विचारव्यक्त कर सकेंगे।
2. जल प्रदूषण के कारणों तथा मानव जीवन पर उसके दुष्प्रभाव को जान सकेंगे।
3. जल प्रबन्धन हेतु आवश्यक उपायों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
4. गुणवत्ता के आधार पर जल का वर्गीकरण कर सकेंगे।

## 26.1 प्रस्तावना :

जल हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण आधार है।इसके अभाव में सृष्टि की कल्पना भी नहीं की जा सकती । इसीलिए जल को एक अमूल्य प्राकृतिक संसाधन की श्रेणी में रखा गया है। अगर हम अपनी पुरानी सभ्यताओं पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि सभी प्राचीन नगर भी नदियों के तट पर बसे। हमें जल की महत्ता को ध्यान में रखते हुए इसको न सिर्फ संरक्षित करने का प्रयास करना चाहिए बल्कि इसे प्रदूषित होने से भी बचाना चाहिए। बढ़ती आबादी, भौतिक क्रियाकलापों ने जल प्रदूषण की समस्या को उत्पन्न करने के साथ ही जल संकट/जल उपलब्धता की कमी का संकट भी पैदा किया है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि जल संसाधन का संरक्षण व प्रबन्धन करने हेतु व्यक्तिगत व वैश्विक स्तर पर प्रयास शुरू किये जायें जिससे कि भविष्य में पारिस्थितिकी असंतुलन, जलाभाव तथा पेयजल संकट की समस्या से जूझना न पड़े। प्रस्तुत इकाई जल संसाधन जैसे महत्वपूर्ण विषय से सम्बन्धित महत्वपूर्ण विचारें का एक संकलन है । इसका उद्देश्य इस प्राकृतिक संसाधन के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान करना है।

## 26.2 गुणवत्ता के आधार पर जल के वर्गीकरण :

1. शुद्ध जल या प्राकृतिक जल (Clean water)
2. सुरक्षित जल (Safe water)
3. संदूषित जल (Contaminated water)
4. प्रदूषित जल (Polluted Water)

### शुद्धजल :

ऐसा जल जिसमें किसी भी प्रकार का अवांछित पदार्थ न हो उसे शुद्ध जल या प्राकृतिक जल कहते हैं। अवांछित तत्वों से रहित होने के कारण वह स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभप्रद होता है तथा इससे स्वास्थ्य को कोई हानि नही होती ।

### सुरक्षित जल :

ऐसा जल जिसमें अवांछित तत्वों के पाये जाने की संभावना तो होती है लेकिन ऐसे जल को शुद्ध बनाये जाने के लिए उन्हे उपचारित करते हैं तथा प्रदूषण मुक्त बनाते हैं। ऐसा जल स्वादहीन व रंगहीन होता है।

### संदूषित जल :

ऐसा जल जिसमें सूक्ष्म कीटाणुओं का समावेश हो तथा जहरीले रासायनिक पदार्थों की भी उपस्थिति हो तो वह जल संदूषित जल कहलाता है।

ऐसे जल का रंग व स्वाद बदल जाता है तथा वह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है।

### प्रदूषित जल :

जब मानवीय क्रिया कलापों से कई अवांछित पदार्थ जल में मिल जाते हैं तथा जल के स्वाभाविक गुण में परिवर्तन आ जाता है तो उसे प्रदूषित जल कहते हैं। ऐसा जल स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इसमें औद्योगिक अपशिष्ट, वाहित मल, घरेलू बहिःस्राव आदि मिले रहते हैं।

## 26.3 जल की उपलब्धता :

अनुमान है कि दुनिया भर का 97 प्रतिशत से अधिक पानी महासागरों और समुद्रों में है। 2.5 प्रतिशत बर्फ के रूप में है एवं केवल 0.5 प्रतिशत हमें उपयेाग हेतु मिलता है । इस 0.5 प्रतिशत पानी का वितरण भी पूरी दुनिया के देशेां में एक समान नही है। इस जल का अधिकांश हिस्सा अमेरिका व कनाडा की सीमावर्ती झीलों में गिरता है। इस समय विश्व भर में प्राप्त जल का सर्वाधिक हिस्सा कनाडा में हैं। पानी के इस असमान वितरण के कारण ही पानी की समस्या है। बढ़ती आबादी, औद्योगीकरण तथा शहरीकरण ने पानी की समस्या को और भी विषम बनाया है। हमारे देश की अधिकांश नदिया प्रदूषित हो चुकी हैं। अपनी ज्यादातर जरूरतों के लिए हम भू जल पर निर्भर रहते हैं। उसके लगातार बढ़ते दोहन से भू जल का स्तर दिन–प्रतिदिन घटता जा रहा है। कृषि में बढ़ते रसायनों का प्रयोग, औद्योगिक अपशिष्ट तथा मानवीय गतिविधियों की वजह से आज जो थोड़ी बहुत मात्रा में शुद्ध जल हमें उपलब्ध था वो भी प्रदूषित हो चुका है।

## 26.4 जल प्रदूषण की समस्या :

जल मानव–जीवन का महत्वपूर्ण आधार है। अगर यह समाप्त हो गया तो मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह एक ऐसा पोषक तत्व है जो हमारे शरीर के अन्य पेाषक तत्वों को गति प्रदान करता है। हमारे शरीर में रक्त संचार, पाचन तथा अवशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालने में जल अत्यन्त सहायक है। जल सभी जीवधारियों के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण तत्व है।

आज मानवीय गतिविधियों के कारण जल–प्रदूषण की समस्या हमारे सामने गम्भीर बनी हुई है। इस समस्या को लेकर गंभीर न होने के कारण दिन–प्रतिदिन हम अपने क्रिया–कलापों से खुद को एवं आने वाली पीढ़ी को गंभीर संकट का दावत दे रहे हैं। अगर हम एक निश्चित समय के अन्दर अपने इन गतिविधियों को, जो जल–प्रदूषण की समस्या को बढाने में सहयोग दे रहे हैं, सचेत नहीं हुए तो वह दिन ज्यादा दूर नहीं जब हमारे जीवन का यह मूल तत्व ही हमसे दूर हो जायेगा।

### जल –प्रदूषण की परिभाषा :

'प्रदूषकों की उपस्थिति के कारण जब जल के मूल भौतिक रासायनिक व जैविक गुणों में परिवर्तन होता है तो यह परिवर्तन जल प्रदूषण कहलाता है।'

### जल प्रदूषण के प्रमुख कारक/स्रोत :

1. नगरों का गंदा जल तथा वाहित मल

2. औद्योगिक कचरे

3. घरेलू अपशिष्ट व अपमार्जक

4. कृषि कार्यो में प्रयुक्त रसायन

### जल प्रदूषण का प्रभाव :

विभिन्न प्रदूषकों के जल में मिलने से उसमें अनेक अवांछित तत्व मिल जाते हैं जिससे मनुष्यों में अनेक बीमारियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। प्रदूषित जल से कृषि तो प्रभावित होती ही है इससे उत्पन्न पदार्थों को खाने से मानव भी उसके दुष्प्रभाव से बच नही पाता है। प्रदूषित जल में सीसा, पारा, क्रोमियम आदि मिले रहते हैं जिसके सेवन से आंत तथा गुर्दे सम्बन्धी अनेक रोग होते हैं। जापान में एक महामारी की तरह फैला मिनीमाटा रोग, जो पारे की वजह से हुआ था, प्रदूषित जल का उत्कृष्ट उदाहरण है।

## 26.5 जल : प्रबन्धन व नियंत्रण

जल हमारे जीवन का आधार है। यदि हम चाहते हैं कि हमारा जीवन सुरक्षित रहे तो बिना विलम्ब किये जल नियंत्रण व प्रबन्धन के उपाय करने होंगे। दिन–प्रतिदिन बढ़ती आबादी तथा विकास की होड़ ने जल जैसे अमूल्य संसाधन का उपयोग करने के बजाय दोहन करना शुरू कर दिया जिससे न सिर्फ प्रदूषण की समस्या बढ़ी बल्कि जल–उपलब्धता में भी कमी आनी शुरू हो गयी है। ऐसे समय में हमारी नैतिक व राष्ट्रीय जिम्मेदारी बनती है कि हम अपनी भोगवादी प्रवृत्ति पर अंकुश लगायें तथा जल के संरक्षण मे योगदान दें।

जल प्रबन्धन व नियंत्रण को व्यवहार में लाने के लिए निम्नलिखित कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये जा सकते हैं–

### 1. जल शिक्षा की अनिवार्यता:

अब यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि पाठ्यक्रम में जल शिक्षा को अनिवार्य रूप में जगह दी जाये। वर्षा जल प्रबन्धन, जल का संरक्षण एवं पुनःश्चक्रण, जल भण्डारण आदि बातों की शिक्षा दी जाये एवं इसके बारे में जन जागरूकता बढ़ायी जाये। जल प्रशिक्षण तथा इससे जुड़े शोध–कार्यों को बढ़ावा दिया जाये।

### 2. कृषि में जल के प्रयोग की निश्चितता :

प्रत्येक फसल के पैदावार में न्यूनतम जल प्रयोग को सुनिश्चित करना तथा उसी अनुसार सिंचाई की योजना बनानी चाहिए। स्प्रिंकलर और ड्रिप जैसी कम खपत वाली मशीनों का प्रयोग किया जाना चाहिए। ऐसे प्रदूषित जल जिसको उपचारित किया जा चुका हो उसका भी प्रयोग कृषि में किया जा सकता है।

### 3. वर्षा जल भण्डारण की युक्ति का प्रयोग :

वर्षा जल को बह जाने नहीं देना चाहिए। उसको सतह पर कहीं एक निश्चित स्थान पर एकत्र कर लेना चाहिए। इस तकनीक को वर्षा जल संग्रहण कहते हैं। हम बहुत से कार्य इसी जल से निपटा सकते है। ऐसे कुएं या खाई जिनका कोई उपयोग न हो रहा हो वहाँ पर इसका प्रयोग कर सकते हैं।

### 4. जल के अंधाधुंध दोहन को रोकना :

मनुष्य दैनिक जीवन में अपनी अनेक गतिविधियों द्वारा आवश्यकता से अधिक जल का प्रयोग करता है। छोटे–छोटे उपाय करके हम जल की बड़ी मात्रा में बचत कर सकते हैं। हमें यह निश्चय करना होगा कि जल जैसे अनमोल संसाधन का हम कतई दुरूपयोग नहीं करेंगे।

### 5. जल प्रदूषण के नियंत्रण सम्बन्धी कानून :

औद्योगिक एवं व्यावसायिक गतिविधियों से जल में प्रदूषण का बढ़ना एक महत्वपूर्ण समस्या है। अनेक ऐसे उद्योग है जैसे कपड़ा उद्योग, कागज उद्योग, चीनी मिलें, इनसे निकलने वाले अपशिष्ट जल में मिल जाते हैं तथा उनके स्वाभाविक गुण में परितर्वन कर देते हैं जो स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं इनको नियंत्रित करने हेतु कानूनों को सख्त बनाये जाने की जरूरत है।

जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधि0 बन चुका है जिसके द्वारा विषैले तथा हानिकारक प्रदूषण फैलाने वाले कचरों को फेंकने पर रोक लगायी गयी हैं। प्रदूषण बोर्डों को यह अधिकार होता है कि प्रदूषण फैलाने वाली इकाईयों के खिलाफ कड़ी कार्यवाही करें।

### 6. रिड्यूज, रिसाइकल और रियूज का फार्मूला अपनाया जाय :

जल सरंक्षण के तहत यह अनिवार्य हो गया है कि हम पानी का कम प्रयोग करें। उसका पुनःश्चक्रण करें एवं पानी का दोबारा प्रयोग भी सुनिश्चित करें।

## 26.6 जल से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी :

| | | |
|---|---|---|
| विश्वजल दिवस | : | 22 मार्च |
| अन्तर्राष्ट्रीय स्वच्छ जल वर्ष | : | वर्ष 2003 को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्वच्छ जल वर्ष घोषित किया गया था। |
| जल शताब्दी | : | वर्ल्ड वाटर फोरम के क्योटो महाधिवेशन में 21वीं सदी को जल शताब्दी के रूप में मनाने की घोषणा की गई है। |

## 26.7 सारांश :

जल एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है जो वर्तमान समय में अत्यन्त सीमित मात्रा में शुद्ध रूप से उपलब्ध है। आज प्राकृतिक तथा मानवीय गतिविधियों से शुद्ध जल का यह थोड़ा भाग (0.5:) भी प्रदूषण का शिकार हो गया है। प्रदूषित जल का मानव पर दुष्प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है जो अनेक बीमारियों के रूप में सामने आ रहा है। **पानी मुफ्त का माल है'** इसी धारणा की वजह से ही आज हमें जल उपलब्धता की संकट का सामना करना पड़ रहा है। जल की मात्रा दिन प्रतिदिन घटती जा रही है अतः अब वह समय आ गया है कि जल को बर्बाद होने से बचाया जाये तथा जो शुद्ध जल अभी हमारे पास है उनको प्रदूषित न होने दिया जाये।

## 26.8 संदर्भ ग्रन्थ :


1- Mookerjee Anjali, 1985, 'Environment- Nursery of life', Publication Division, Ministry of Information and Broad Casting, Govt. of India, New Delhi.

2- Saxena, M.M. 1987, 'Environmental Analysis', Water, Soil and Air. Agro Botanical Publishers, India.

3- पाण्डेय, संगीता,2009, पर्यावरण का समाजशास्त्र, भवदीय प्रकाशन,फैजाबाद।


## 26.9 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

1. जल प्रदूषण को परिभाषित कीजिए तथा इसके प्रमुख कारणों का उल्लेख कीजिए।
2. जल का नियंत्रण व प्रबंधन कैसे किया जा सकता है? कुछ उपाय बताइए।
3. जल हमारे लिए क्यों आवश्यक है? इसकी गुणवत्ता बताइए।

### (ब) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. वर्षा जल भण्डारण तकनीक क्या है?
2. जल–प्रदूषण पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. जल संकट की समस्या पर एक लेख लिखिए।

4. का मानव स्वास्थ्य पर जल प्रदूषण के प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।

## (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. जल प्रदूषण का कारण नही है।
   (क) औद्योगिक अपशिष्ट (ख) घरेलू अपशिष्ट
   (ग) वर्षा जल भण्डारण (घ) कृषि कार्यों में प्रयुक्त रसायन
2. विश्व जल दिवस कब मनाया जाता है?
   (क) 22 मार्च (ख) 22 अप्रैल
   (ग) 22 मई (घ) 11 जुलाई
3. गुणवत्ता के आधार पर जल का वर्गीकरण किया गया है–
   (क)चार भागों में (ख) तीन भागों में
   (ग)दो भागों में (घ) पाँच भागो में
4. जल संरक्षण का फार्मूला नहीं है –
   (क) रिड्यूज (ख) रियूज
   (ग) रिसाइकिल (घ) रिफ्यूज
5. जल प्रदूषण का प्राकृतिक स्रोत नही है –
   (क) रेडियोधर्मी अपशिष्ट (ख) जलीय वनस्पति की अधिकता
   (ग) धूल के कण (घ) पारा धातु की अधिकता
6. हमें उपयोग हेतु जल का कितना प्रतिशत भाग प्राप्त होता है –
   (क) 90 (ख) 97
   (ग) 2.5 (घ) 0.5
7. जल प्रदूषण का मानवीय स्रोत है –
   (क) कृषि बहिःस्राव (ख) औद्योगिक वहिःस्राव
   (ग) तेल प्रदूषण (घ) उपरोक्त सभी
8. संयुकत राष्ट्र संघ द्वारा 'अन्तर्राष्ट्रीय स्वच्छ जल वर्ष'' घोषित किया गया है –
   (क) 2001 को (ख) 2003 को
   (ग) 2004 को (घ) 2005 को

## 26.10 प्रश्नोत्तर–

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | (ग) | 2. (क) | 3. (क) | 4. | (घ) |
| 5. | (क) | 6. (घ) | 7. (घ) | 8. | (ख) |

# इकाई–27

# वनः प्राप्यता, नियंत्रण व प्रबंधन

इकाई की रूपरेखा :


27.0 उद्देश्य

27.1 प्रस्तावना

27.2 वनों की प्राप्यता (प्रकार/वर्गीकरण)

27.3 वनोन्मूलन की समस्या

27.4. वन संरक्षण की आवश्यकता

27.5. वन प्रबन्धन व संरक्षण हेतु प्रमुख प्रयास

27.6 सारांश

27.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

27.8 सम्बन्धित प्रश्न

(अ) दीर्घ उत्तरीय

(ब) लघु उत्तरीय

(स) वस्तुनिष्ठ

27.9 प्रश्नोत्तर


## 27.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

1. वन हमारे लिए क्यों महत्वपूर्ण है? इस पर प्रकाश डाल सकेंगे।
2. वनों के प्रकार तथा उनकी विशेषताओं को समझ सकेंगे।
3. वनोन्मूलन से उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर टिप्पणी कर सकेंगे।
4. वन प्रबंधन की दिशा में किये जा रहे प्रयासों के बारे में विस्तार से जान पायेंगे।

## 27.1 प्रस्तावना :

वन ऐसे विस्तृत क्षेत्र हैं जो पूर्णरूप से पेड़–पौधों से आच्छादित रहते हैं तथा हमारे पर्यावरण के लिए परोक्ष व अपरोक्ष रूप से सहायक होते हैं। सांस्कृतिक रूप से देखें तो प्राचीनकाल से ही वृक्ष पूजा की परम्परा देखने को मिलती है। वृक्ष हमारे लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं। इन्हीं की सहायता से हम प्राणवायु ($O_2$)

आक्सजीन को सांस के रूप में लेते हैं तथा पौधे कार्बन डाई आक्साइड ($CO_2$) ग्रहण करते हैं जिससे पारिस्थितिकी संतुलन बना रहता है।

मानवीय आवश्यकता तथा पर्यावरण की दृष्टि से वन हमारे लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। ये जैविक घटकों की दृष्टि से ही नहीं बल्कि अर्थव्यवस्था की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण होते हैं। भारत वन सम्पदा की दृष्टि से काफी समृद्ध है और इस दृष्टि से भारत का विश्व में 10वां स्थान तथा एशिया में चौथा स्थान है।

वर्तमान भौतिकवादी युग में दिन–प्रतिदिन वनोन्मूलन की बढ़ती समस्या के कारण यह आवश्यक हो गया है कि इसके बारे में लोगो की जागरूकता बढ़ायी जाये। पर्यावरण व पारिस्थितिकी के अन्तर्गत ''वन'' जो एक महत्वपूर्ण संसाधन है के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान की जाये। इसी को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत इकाई में वन के बारे में चर्चा की जा रही है।

## 27.2 वनों की प्राप्यता :

भारत की भौगोलिक एवं जलवायविक विशेषताओं के आधार पर निम्नलिखित प्रकार के वन पाये जाते हैं –

### 1. उष्ण कटिबंधीय सदाबहार वन :

ये वन ऐसे क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहाँ की औसत वार्षिक वर्षा अच्छी होती है। चूँकि ऐसे क्षेत्रों में मौसम शुष्क नहीं होता है, पेड़ों की पत्तियाँ कभी एक साथ नहीं झड़ती, इसी कारण इसे सदाबहार वन कहा जाता है। ये वर्ष पर्यन्त हरे–भरे रहते हैं। भारत में केरल कनार्टक, महाराष्ट्र अण्डमान– निकोबार, लक्षद्वीप तथा प0 बंगाल में इस प्रकार के वन पाये जाते हैं।

2. **उष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन–** पर्णपाती वन का मतलब है पर्णपात (पतक्षड़) वाले वन। शुष्क मौसम में जल संरक्षण हेतु इन वृक्षों की पत्तियाँ गिरने लगती हैं। झारखण्ड, पं0 बंगाल, उड़ीसा, कर्नाटक, तमिलनाडु आदि जगहों में ऐसे वन पाये जाते हैं। इनमें मुख्यतः चंदन, साल, सागवान, शीशम शामिल हैं।

उष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन को 'मानसूनी वन' भी कहा जाता है। ऐसे वनों के वृक्षों की लकड़ी का प्रयोग यातायात, फर्नीचर व निर्माण सामग्री में किया जाता है तथा व्यापक रूप से इसका प्रयोग भवन निर्माण के लिए किया जाता है ।अतः ये आर्थिक दृष्टि से भी हमारे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

### 3. उष्ण कटिबंधीय कांटेदार वन–

इनको कंटीले वन भी कहा जाता है। ये उन क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहाँ की वार्षिक वर्षा 50 सेमी से भी कम होती है। इसमें ऐसे ही वृक्ष उगते हैं जो छोटे

एवं झाड़ीनुमा होते है। जैसे–बेर, खजूर, नीम व पलाश आदि। ये मुख्यतः गुजरात, राजस्थान, द0पं0 पंजाब में पाये जाते है।

4. **पर्वतीय वन**– पर्वतीय क्षेत्रो में जहाँ 100 से 200 सेमी तक वार्षिक वर्षा होती है वहाँ ये वन पाये जाते हैं। इनमें मुख्यतः ओक, देवदार, चीड़ आदि होते हैं। इस प्रकार के वन सिक्किम, उत्तराखण्ड, हिमांचल प्रदेश एवं अरूणांचल प्रदेश में पाये जाते हैं।

### 5. वेलांचली व अनूप वन :

ऐसे वन भारत के तटीय व दलदली क्षेत्रों में पाये जाते हैं। ये आर्द्र भूमि में उगते हैं। ऐसी लगभग 39 लाख हेक्टेयर भूमि भारत में है। इन वनों का मुख्य वृक्ष मैंग्रोव होता है तथा इस वृक्ष की अधिकता के कारण ही इन्हें **मैग्रोव वन** भी कहते हैं। विश्व का 7 प्रतिशत मैंग्रोव क्षेत्र भारत में है–

कुछ अन्य आधारों पर भी वनो को वर्गीकृत किया गया है–

## प्रशासनिक आधार पर वनों का वर्गीकरण :

1. **आरक्षित वन (Reserved forests) :** इन वनों की देखभाल सरकार द्वारा की जाती है।कुल वनक्षेत्र का 53 प्रतिशत वन आरक्षित वन क्षेत्र में शामिल है। ऐसे वनों में पशुओं को चराना, वृक्षों को काटना तथा सामान्य लोगों का प्रवेश वर्जित होता है।

2. **संरक्षित वन (Protected forests) :** इन वनों का संरक्षण व पर्यवेक्षण सरकार द्वारा होता है लेकिन इन वनों में सामान्य लोगों को प्रवेश तथा ईंधन के लिए लकड़ी काटने की अनुमति होती है। इन वनों का 29 प्रतिशत क्षेत्र भारत में है।

### 3. अवर्गीकृत वन (Unclassified forests) :

इन वनों में लकड़ी काटने व पशुओं को चराने की मनाही नहीं है । भारत में इन वनों का प्रतिशत 18 है।

## उपयोगिता के आधार पर वनों का वर्गीकरण :

### 1. उपयोगी वन :

उपयोगी वनों में उन्हें सम्मिलित किया गया है जिन वनों के उत्पाद हमारे लिए महत्वपूर्ण होते हैं। भारत में 58 प्रतिशत वनों को उपयोंगी वन माना गया है।

### 2. संभाव्य उपयोगी वन :

ऐसे वन जिनसे प्राप्त उत्पादों को हम भविष्य में प्रयोग में ला सकते हैं इस श्रेणी में आते हैं । भारत में लगभग 22 प्रतिशत आरक्षित वन इसमें शामिल हैं।

### 3. अन्य वन :

ऐसे वनों से हम अपने उपयोग हेतु उत्पाद प्राप्त कर सकते हैं ,साथ ही इन्हें प्रयेाग में लाने हेतु कोई प्रतिबंध /निषेध नहीं होता है।

## 27.3 वनोन्मूलन की समस्या :

बढ़ते नगरीकरण, आवश्यकताओं की पूर्ति, विकास तथा अनेक भौतिक क्रियाकलापों की वजह से वर्तमान समय में वनों का दोहन किया जा रहा है जिसके कारण वनोन्मूलन की समस्या बढ़ी है। वनों के कटान में वृद्धि का पर्यावरण पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। अगर वनोन्मूलन की स्थिति को हम अभी नहीं रोके तो ऐसी स्थिति भी आ सकती है कि वन जैसी महत्वपूर्ण प्राकृतिक संपदा नष्ट हो जाये। वनोन्मूलन के अत्यन्त हानिकारक परिणाम होते हैं जैसे–मृदा अपरदन, बिगड़ता मौसम चक्र, अतिवृष्टि या अनावृष्टि की समस्या, बाढ़ आदि ।

## 27.4 वन संरक्षण/प्रबन्धन की आवश्यकता :

वनोन्मूलन की समस्या से बचने के लिए यह आवश्यक है कि वन संरक्षण एवं प्रबन्धन के लिए विशेष उपाय किये जायें। पर्यावरण तथा परिस्थितिकी सांमजस्य बनाये रखने की भी प्रथम आवश्यकता यह है कि वनों को संरक्षित किया जाये।

## 27.5 वन प्रबन्धन एवं संरक्षण के प्रमुख प्रयास

निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रयासों से हमें वन प्रबन्धन में सहायता मिल सकती है–

### 1. सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहन :

''**लोगों की लोगों के लिए तथा लोगों के द्वारा वानिकी।**'' सामाजिक वानिकी के तहत लोगों को अधिक से अधिक वृक्षों को लगाने हेतु प्रोत्साहित किया जाता है।

सामाजिक वानिकी के प्रमुख कार्य निम्न हैं–

1. खाली भूमि पर वृक्षारोपण को बढ़ावा देना।
2. पर्यावरण के अनुकूल वृक्षो ंका चुनाव किया जाना।
3. रेल, सड़क, नहर आदि के किनारे वृक्षारोपण।
4. खेतों के मेड़ पर कम छायादार वृक्ष लगाना।

2. वनारोपण का कार्य व्यापक स्तर पर चलाया जाये।
3. वनों से प्राप्त लकड़ी का प्रयोग इमारत निर्माण, फर्नीचर निर्माण में होता है, इनके विकल्पों की खोज की जाये।

4. वनों की उपादेयता का प्रचार–प्रसार किया जाये, लोगों को यह समझाया जाये कि वन हमारे लिए सामाजिक आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

5. कुछ ऐसे कार्यक्रम चलाये जाये जिससे जनसहभागिता बढ़े और वनों के प्रति जागरूकता बढ़े।

6. वनोन्मूलन के दुष्प्रभावों के परिणामों को कुछ कार्यक्रम के माध्यम से लोगों को बताया जाय।

7. वनों से सम्बन्धित बीमारियों पर शोध किया जाय जिससे वनों का संरक्षण हो सके तथा वनों के वृद्धि पर जोर दिया सके क्योंकि भारत में वनो का प्रतिशत सिर्फ 23 है जो अत्यन्त शोचनीय है।

### राष्ट्रीय वन नीति–1988

राष्ट्रीय वन नीति 1952 एवं सन् 1976 की राष्ट्रीय कृषि आयोग की रिर्पोट को दर किनार करते हुए एक नई वन नीति सन् 1988 में बनायी गयी जिसमें वनो की पारिस्थितिकी भूमिका पर अधिक बल दिया गया।

इस वननीति में स्पष्ट रूप से लिखा गया कि–

"वननीति का प्रमुख उद्देश्य आवश्यक रूप से पर्यावरण के स्थायित्व को सुनिश्चित करना तथा पारिस्थितिकी संतुलन के साथ–साथ ऐसे वायुमण्डलीय संतुलन को बनाए रखना है जो जीवन के समस्त स्वरूपों अर्थात मानव, पशु एवं वृक्ष आदि के अस्तित्व को बनाये रखने में महत्वपूर्ण होते है। वनों से प्राप्त प्रत्यक्ष आर्थिक लाभों को इस प्रमुख उद्देश्य का सहायक उद्देश्य बनाया जाना चाहिए।''

### वन संरक्षण सम्बन्धी प्रमुख प्रस्ताव (12वीं पंचवर्षीय योजना 2012–2017)

1. राष्ट्रीय वनारोपण कार्यक्रम योजना।
2. गैर लकड़ी वनोत्पाद प्रबंधन
3. हरित भारत अभियान योजना।
4. ज्वारीय भूमि एवं वनकृषि विकास योजना
4. राष्ट्रीय हरियाली अधिकरण।
6. इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय वन अकादमी।
7. राष्ट्रीय वनारोपण एवं पारिस्थितिकी विकास परिषद।
8. भारतीय वन प्रबंधन संस्थान

## 27.6 सारांश

वन एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संपदा है जो हमारे पर्यावरण का संरक्षण एवं संवर्धन करते हैं परन्तु विगत कुछ दशकों से मानव द्वारा वनों का अत्यधिक दोहन किया जा रहा है। जनसंख्या में वृद्धि होने से वनों को काटकर उन्हें निवास योग्य बनाना तथा कृषि के लिए भूमि तैयार करना वनोन्मूलन का मुख्य कारण है। इसके

अतिरिक्त मकान निर्माण हेतु, फर्नीचर तथा ईंधन के लिए वनों का व्यापक पैमाने पर विनाश किया जाता है जिसके अनेक दुष्प्रभाव सामने आते हैं जैसे भूस्खलन, भूमि कटाव तथा मृदा अपरदन, बाढ़ में वृद्धि आदि। अतः पर्यावरण व पारिस्थितिकी सन्तुलन को बनाये रखने के लिए वन प्रबन्धन एवं संरक्षण एक ज्वलन्त मुद्दा बन गया है। हमें वन संरक्षण हेतु सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहन देना चाहिए जिसके अन्तर्गत व्यापक पैमाने पर वृक्षारोपण को बल दिया जाता है। वनारोपण को एक कार्यक्रम के रूप में चलाया जाये जिससे वन संरक्षण में जन सहभागिता भी बढ़ायी जा सके।

वनोन्मूलन की समस्या को कम करने तथा वन संरक्षण को बढ़ावा देने हेतु सघन वृक्षारोपण तथा राष्ट्रीय वानिकी कार्यक्रम को व्यापक पैमाने पर क्रियान्वित किया जाना वर्तमान समय की अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता है इसे अनदेखा नही किया जा सकता।

## 27.7 सन्दर्भग्रन्थ


1- Nath p. and nath S.,1990"Environmental pollution -Conservation And planning" Chug Publications, Ahmedabad.

2- पाण्डेय, संगीता,2009, पर्यावरण का समाजशास्त्र, भवदीय प्रकाशन,फैजाबाद ।

3. Rai Usha, 1991, A Village that turned green', Times of India, February 17 (Sunday).

4. Saxena M.M. 1987, 'Environmental Analysis', Water, Soil and Air. Agro Botanical Publishers, India.


## 27.8 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

1. वन कितने प्रकार के होते है? कुछ प्रमुख आधारों पर उनका वर्गीकरण कीजिए।
2. वनों से होने वाले लाभों का वर्णन कीजिए।
3. वनोन्मूलन तथा वन संरक्षण (प्रबन्धन) पर एक टिप्पणी लिखिए।

### (ब) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. राष्टीय वन नीति 1988 पर एक टिप्पणी लिखिए।

2. उष्ण कटिबंधीय पर्णपाती एवं उष्ण कटिबंधीय सदावहार वन किसे कहते हैं?

3. वन संरक्षण के क्या उद्देश्य हैं?

## (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. वन सरंक्षण का तात्पर्य है –

   (क) वनों का विनाश

   (ख) वृक्षारोपण को बढ़ावा देना।

   (ग) सड़क निर्माण में वृक्षो का प्रयोग

2. पर्वतीय वन किसे कहते है?

   (क) जो वर्ष भर हरे भरे रहते हैं।

   (ख) जिनमें कांटे होते है।

   (ग) जो पर्वतीय क्षेत्रों में उगते है।

3. अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पाये जाने वाले वन कौन से हैं?

   (क) पर्वतीय वन

   (ख) उष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन

   (ग) सदाहरित वन

4. वनोन्मूलन का प्रमुख कारण है –

   (क) बढ़ता नगरीकरण

   (ख) सड़क निर्माण

   (ग) उपरेाक्त दोनो

5. चीड़, ओक, देवदार के वृक्ष किन वनों में मिलते हैं?

   (क) उष्ण कटिबंधीय कांटेदार वन

   (ख) पर्वतीय वन

   (ग) सदाबहार वन

6. प्रशासनिक आधार पर वनों का वर्गीकरण है–

   (क) आरक्षित, संरक्षित व अवर्गीकृत वन

   (ख) उपयोगी, संभाव्य उपयोगी व अन्य वन

   (ग) उपरोक्त में से कोई नही

7. वेलांचली व अनूप वन कैसी भूमि पर उगते हैं?

(क) आर्द्रभूमि में

ख. बंजर भूमि में

(ग) दोनों में

8. पर्वतीय छात्रों में वार्षिक वर्षा होती है–

(क) 50–100 सेमी तक

(ख) 100–150 सेमी तक

(ग) 100–200 सेमी तक

9. वन संपदा की समृद्धता की दृष्टि से भारत का विश्व में स्थान है–

(क) पांचवां

(ख) तीसरा

(ग) दसवाँ

10. वनोन्मूलन के क्या परिणाम होते हैं?

(क) मृदा अपरदन

(ख) अतिवृष्टि या अनावृष्टि

(ग) खराब मौसम चक्र

(घ) उपरोक्त सभी

## 27.9 प्रश्नोत्तर–

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | (ख), | 2. | (ग), | 3. | (ग), |
| 4. | (ग), | 5. | (ख), | 6. | (क), |
| 7. | (क), , | 8. | (ग), | 9. | (ग), |
| 10. | (घ) | | | | |

# इकाई : 28

# राज्य तथा अन्य संगतियों की भूमिका

इकाई की रूपरेखा :


28.0 उद्देश्य

28.1 प्रस्तावना

28.2 पर्यावरण व पारिस्थितिकी संरक्षण की आवश्यकता

28.3 राष्ट्रीय कानून व उनका क्रियान्वयन

28.4 अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण संरक्षण संस्थाएँ

28.5 पर्यावरण संरक्षण व संवर्धन हेतु अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास

28.6 सारांश

28.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

28.8 सम्बन्धित प्रश्न

(अ) दीर्घ उत्तरीय,

(ब) लघु उत्तरीय,

(स) वस्तुनिष्ठ

28.9 प्रश्नोत्तर


## 28.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप –

1. पर्यावरण व पारिस्थितिकी संरक्षण की आवश्यकता पर विचार विमर्श कर सकेंगे।
2. राष्ट्रीय स्तर पर बने कानूनों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत पर्यावरणीय संरक्षण संस्थाओं के विषय में जान सकेंगे।
4. पर्यावरण संरक्षण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे प्रयासों पर टिप्पणी कर सकेंगे।

## 28.1 प्रस्तावना :

पर्यावरण और मानव समुदाय एक–दूसरे से सम्बन्धित हैं।मानव समुदाय प्राचीन काल से ही अपनी आवश्यकताओं की प्रतिपूर्ति हेतु पर्यावरण में फेर–बदल

करता आ रहा है तथा उसका उपभोग करता रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज पर्यावरण व पारिस्थितिकी संरक्षण की बात की जा रही है। जहाँ बढ़ते शहरीकरण तथा औद्यौगीकरण के कारण ध्वनि प्रदूषण की समस्या सामने आयी है वहीं बढ़ती आबादी तथा संसाधनो के उपभोग की लालची प्रवृत्ति ने जल संकट जैसी विकराल समस्या को जन्म दिया है। बढ़ते परमाणविक गतिविधियों का नतीजा है कि अब हम स्वच्छ व शुद्ध वातावरण की तलाश में मीलों निकल जाये लेकिन मुश्किल से वह स्थान मिल पाता है जहाँ वायु की शुद्धता महसूस कर पाते हो। ऐसे में पर्यावणीय गिरावट के कारण स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः बिना देर किये प्राकृतिक संसाधनों को सहेजने का प्रयास हमें आरम्भ कर देने की आवश्यकता है।

ऐसा नहीं है कि अभी तक इनसे सम्बन्धित प्रयास शुरू नहीं हुए थे या संसाधन संरक्षण, पर्यावरण संतुलन को लेकर कानून नहीं बने थे, ये सारी व्यवस्थाएं तो हमारे संविधान निर्माताओं ने कितने पहले जान ली थी लेकिन आज की स्वार्थभरी व लालची मनोवृत्तियों ने कहीं न कही उनकी उपेक्षा की है। आज यह अपरिहार्य हो गया है कि हम उन कानूनों की महत्ता को समझें , उनको अमल में लाएं तथा पतन की ओर उन्मुख अपने पर्यावरण को पुनः शस्य–श्यामला बनाने का प्रयास करें।

## 28.2 पर्यावरण व पारिस्थितिकी संरक्षण की आवश्यकता :

पर्यावरणीय समस्याओं को समझने के साथ हमारे लिए यह जान लेना अब उचित ही नही आवश्यक भी है कि भारत एक ऐसा देश है जिसने सर्वप्रथम पर्यावरण संरक्षण व सुधार की बात को मौलिक कर्त्तव्यों में शामिल किया। पर्यावरण संरक्षण को महत्ता प्रदान करते हुए इसे संवैधानिक रूप भी प्रदान किया गया। राज्य तथा अनेक संगठनों के द्वारा किये गये प्रयासों का वर्णन करने से पूर्व कुछ महत्वपूर्ण अनुच्छेदों को जान लेना लाभप्रद होगा जो पर्यावरण संरक्षण को स्वयं में समाहित किए हुए हैं–

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 48–क में यह गया है कि ''राज्य देश के पर्यावरण संरक्षण तथा सुधार और वनों तथा वन्य जीवों की रक्षा का प्रयास करेगा।''

संविधान के अनुच्छेद 51(क), जो कि मौलिक कर्त्तव्यों की व्याख्या करता है उसमें लिखा गया है कि–''भारत के हर एक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करें एवं उसका संवर्धन करें।''

## 28.3 राष्ट्रीय कानून व उनका क्रियान्वयन–

आज पर्यावरण, जिसमें पारिस्थितिकी भी शामिल है, वृहद स्तर पर असंतुलन का शिकार है इसे बचाना तथा संवर्धित करना अब हमारी नैतिक जिम्मेदारी बन गयी है क्योंकि इससे से ही मानव समुदाय की खुशहाली और हमारे

राष्ट्र का विकास जुड़ा हुआ है। भारत में पर्यावरण संरक्षण व संवर्धन हेतु अनेक कानूनों की व्यवस्था की गयी है। हमारी संघ सूची व राज्य सूची में पर्यावरण से सम्बन्धित विषयों पर केन्द्र सरकार व राज्यों की विधायिकाओं ने कानून बनाए है जो निम्नवत है–

## 1. वन्य जीव संरक्षण अधिनियम–

यह अधिनियम सन्–1972 में पारित हुआ जो वन्य जीवों को सुरक्षा प्रदान करता है। वन्य जीवों को सर्वाधिक खतरा उनके रहन–सहन के स्थान के नष्ट होने से हैं इस अधिनियम के तहत् वन्य जीवन पार्क तथा अभ्यारण्य की स्थापना का प्रावधान है। भारत में यूनेस्को का ''मानव तथा जैव मण्डल'' कार्यक्रम चलाया गया तथा विभिन्न प्रजातियों के संरक्षण हेतु योजनाएं चलायी गयी। ऐसी प्रजातियाँ जो विलुप्त होने के कगार पर हैं,उनके व्यापार की मनाही है। ऐसी प्रजातियों को वन्य जीव अभ्यारण्यों में रखकर उनकी वृद्धि का प्रयास किया जाता है। वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम में जहाँ शेर, चीता, लोमड़ी आदि को संरक्षण प्रदान किया गया वहीं लुप्तप्राय जीवों की सूची बनाकर उन्हें लुप्तप्राय घोषित कर दिया गया।

## 2. जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम :

सन् 1974 में जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम पारित किया गया। इसके तहत जल प्रदूषण को नियंत्रित करने हेतु प्रदूषण बोर्ड का गठन तथा जल प्रदूषित करने पर दण्ड दिये जाने का विधान हैं। इस अधिनियम के तहत जल प्रदूषण को परिभाषित किया गया है। इस अधिनियम के कार्य क्षेत्र में नदियाँ, झील, तालाब, झरने, भूमिगत जल आदि शामिल हैं। इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रदूषण फैलाने वाले कचरों पर रोक लगाने की व्यवस्था की गयी है तथा ऐसे किसी भी कार्य जिससे पानी प्रवाह में रूकावट उत्पन्न हो, रोक लगायी गयी है।

## 3. वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम :

सन् 1981 में वायु (प्रदूषण निवारण व नियंत्रण) अधिनियम लागू किया गया। इस अधिनियम के तहत उद्योगों व कल– कारखानों से निकलने वाले धुंए व उनमें व्याप्त गंदगी का स्तर तय करने व उन्हें नियंत्रित करने का प्रावधान है। वायु प्रदूषण नियंत्रण अधिनियम को लागू करने का अधिकार केन्द्रीय जल प्रदूषण निवारण व नियंत्रण बोर्ड को दिया गया है । केन्द्रीय बोर्ड को राज्य के बोर्डों के काम में तालमेल बैठाने के अधिकार प्रदान किये हैं।

(अनु0–19).राज्य सरकारे, राज्य के बोर्डों से परामर्श कर किसी भी क्षेत्र को वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र'' घोषित कर सकती है वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र में राज्य बोर्ड की अनुमति के बिना औद्योगिक इकाई खोलने की मनाही है।

## 4. वन संरक्षण अधि0–1980 :

सन् 1980 में पारित इस अधि0 में 1998 में संशोधन किया गया, इसका मुख्य उद्देश्य दिन– प्रतिदिन बढ़ रहे वन विनाश को रोकना है। इसमें यह बताया गया था कि बिना केन्द्र सरकार की अनुमति के किसी वन को अनारक्षित न घोषित किया जाय। यह नियम जरूरी भी था क्योंकि वनों को अनारक्षित घोषित कर राज्य सरकारें उन वनों को गैर–जरूरी कामों के लिए अनारक्षित करने लगे थे। इस अधिनियम के अनुसार पेड़ों की कटाई तथा वन में आग जलाने का अधिकार नही

है तथा इन क्षेत्रों में पशु चराने, खनन व ईंधन जैसी गतिविधियों पर रोक लगाई गई है।

## 28.4 अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण संरक्षण संस्थाएं

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) सन् 1972 में स्टाकहोम में हुये पर्यावरण सम्मेलन के तहत UNEP की स्थापना की गयी इसका मुख्यालय नैरोबी में है। इसका मुख्य उद्देश्य विभिन्न देशों में अपने प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करने, वायु प्रदूषण में कमी, जल की गुण्वत्ता को बढ़ावा देने में सहायता देना है।इसके अतिरिक्त और भी कार्यक्रम चलाये गये, जैसे–

### 1. मानव तथा जैव मण्डल कार्यक्रम :

यह कार्यक्रम सन् 1991 में यूनेस्कों द्वारा शुरू किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य जीवमण्डल के साधनों के प्रयोग हेतु भूमि उपयोग के लिए वैज्ञानिक आधार तैयार करना है।

### 2. अन्तर्राष्ट्रीय ग्रीन क्रास :

इसकी स्थापना सन् 1993 में क्योंटो में पूर्व सोवियत संघ के राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाच्योंव की अध्यक्षता में हुई। अन्तर्राष्ट्रीय ग्रीन क्रास की स्थापना रियों सम्मेलन के समानान्तर हुए संसदीय पृथ्वी शिखर सम्मेलन के दौरान हुई।

### 3. अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण सुविधा (I.E.F) :

आई0ई0एफ0 की प्रथम बैठक 1998 में दिल्ली में सम्पन्न हुई। इसका उद्घाटन अटल बिहारी वाजपेयी ने किया। यह संगठन सदस्य देशों को उनकी पर्यावरणीय समस्याओं को दूर करने हेतु साधन उपलब्ध करायेगा।

## 28.5 पर्यावरणसंरक्षण व संवर्धन हेतु अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास :

पर्यावरणसंरक्षण व संवर्धन हेतु अनेकों अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास भी किये गये,जैसे–

### 1. मानव पर्यावरण सम्मेलन :

1972 में स्टाकहोम में संयुक्त राष्ट्रसंघ की मानव पर्यावरण कान्फ्रेन्स हुई। इसी कान्फ्रेन्स में United Nations Environment programme, (UNEP) की स्थापना हुई। इसी सम्मेलन में पहली बार Only one earth ''एक ही पृथ्वी'' के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया था। मानव पर्यावरण सम्मेलन में पर्यावरण सुरक्षा पर स्टाकहोम घोषणापत्र जारी किया गया जिसे विश्व पर्यावरण का मैग्नाकार्टा'' कहा जाता है। UNEP के स्थापना दिवस को प्रतिवर्ष ''पर्यावरण दिवस'' (5 जून) के रूप में मनाया जाता है। इस सम्मेलन की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि

विश्व भर में लोगो में पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़ी तथा प्रत्येक राष्ट्र ने इस बात को ध्यान में रखते हुए नियमों को बनाना शुरू किया।

### 2. पृथ्वी शिखर सम्मेलन :

ब्राजील के रियो डी जेनेरो में जून माह में विश्व पृथ्वी सम्मेलन (पृथ्वी शिखर सम्मेलन) का आयोजन किया गया। इसका आयोजन ''संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन'' द्वारा किया गया था। इसे ''रियो सम्मेलन'' भी कहा जाता है। इसी सम्मेलन में United Nations Framework convention on climate change (UNFCC) नामक एक दस्तावेज प्रस्तुत किया गया जो अब तक का सबसे बड़ा कानूनी दस्तावेज माना जाता है। रियो सम्मेलन के महासचिव प्रसिद्ध पर्यावरणविद् मारिस स्ट्रांग थे जबकि भारत का प्रतिनिधित्व पर्यावरण मंत्री कमल नाथ ने किया।

### 3. वियना सम्मेलन :

यह सम्मेलन सन् 1985 में हुआ। इसका उद्देश्य था–मानवीय गतिविधियों से उत्पन्न हानिकारक पदार्थों से ओजोन संस्तर की सुरक्षा करना।

### 4. अर्थ प्लस फाइव सम्मेलन :

सन् 1992 में पृथ्वी शिखर सम्मेलन में लिए गए निर्णयों की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र पृथ्वी शिखर सम्मेलन सन् 1997 में सम्पन्न हुआ। इसे ही अर्थ प्लस फाइव सम्मेलन कहा जाता है।

### 5. क्योटो ग्लोबल वार्मिंग कान्फ्रेन्स :

जापान के क्योटो नगर में 1–10 दिस 1997 में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ जिसमें 160 देशों के प्रतिनिधि शामिल हुए। इस सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व आर0के0 पचौरी ने किया था। इसमें अमेरिका द्वारा प्रस्तावित ग्रीन हाउस इफेक्ट के लिए जिम्मेदार 6 गैसों में 8% कटौती करने को कहा गया। मई 2001 में संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस समझौते को मानने से इन्कार कर दिया।

## 28.6 सारांश

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि पर्यावरण के प्रदूषण को बचाने तथा संरक्षण के लिए राज्य की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राज्य द्वारा समय–समय पर राष्ट्रीय स्तर पर अनेक कानून बनाये गये जिसमें वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, जल प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण अधिनियम, वायु प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण अधिनियम, वन संरक्षण अधिनियम 1980 आदि प्रमुख है। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अनेक कानून बनाये गये जिसके माध्यम से लोगों को पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी संरक्षण के प्रति जागरूक किया गया। ये अधिनियम वर्तमान समय में प्रभावी भी हैं किन्तु उस स्तर पर नहीं जिससे पर्यावरण पूर्ण रूप से संरक्षित हो। अतः आवश्यकता इस बात की है कि न सिर्फ राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किये जाये बल्कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी की सुरक्षा व संरक्षण को अपना दायित्व समझते हुए व्यवहार में लायें ऐसा करने पर ही सुन्दर व स्वच्छ पर्यावरण की संकल्पना साकार हो सकेगी।

## 28.7 संन्दर्भ ग्रन्थ–


1. पाण्डेय,संगीता,2009,पर्यावरण का समाजशास्त्र, भवदीय प्रकाशन,फैजाबाद
2. Devall Bill, 1990 Simple in means,Reach in ends;Green Print London,1990
3. Giddens Anthony, 2006, Sociology,PolityPress,Cambridge,U.K.
4. Yearly steven, 1991, A sociology of Environment Issues,Unwin press,London.


## 28.8 सम्बन्धित प्रश्न

### (अ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. पर्यावरण संरक्षण हेतु राष्ट्रीय स्तर पर किये गये प्रयासों की व्याख्या कीजिए।
2. वर्तमान समय में पर्यावरण नियंत्रण व प्रबन्धन की आवश्यकता क्यों है?
3. पर्यावरण नियंत्रण व प्रबंधन हेतु अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों का विश्लेषण कीजिए।

### (ब) लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. मानव पर्यावरण सम्मेलन एवं पृथ्वी शिखर सम्मेलन पर एक लेख लिखिए।
2. वायु प्रदूषण (निवारण व नियंत्रण अधिनियम) के बारे में लिखिए।
3. संवैधानिक अनुच्छेद 48–क एवं 51–क पर्यावरण के विषय में क्या कहता है?

### (स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. जल (प्रदूषण निवारण व नियंत्रण) अधि0 कब पारित हुआ?

   (क) 1972 (ख) 1974

   (ग) 1980 (घ) 1986

2. 'पर्यावरण की रक्षा और उसका संवर्धन'यह मौलिक कर्तव्य किस अनुच्छेद के तहत् लिखा गया है?

   (क) अनु0 36 (ख) 45

   (ग) अनु. 40 (घ) अनु. 51(क)

3. विश्व पर्यावरण दिवस कब मनाया जाता है –

(क) 11जुलाई (ख) 16 सितम्बर

(ग) 5 जून (घ) 22 मार्च

4. 'पृथ्वी शिखर सम्मेलन' कहाँ आयोजित किया गया?

(क) क्योटो शहर (ख) रिया डि जेनेरो (ब्राजील)

(ग) दिल्ली (घ) मुम्बई

5. क्योटो ग्लोबल वार्मिंग कान्फ्रेन्स कब हुआ?

(क) 1970 (ख) 1980

(ग) 1985 (घ) 1997

6. UNEP का मुख्यालय कहाँ है?

(क) दिल्ली (ख) स्टाकहोम

(ग) नैरोबी (घ) न्यूयार्क

7. "Only One Earth" का सिद्धान्त पहली बार किस सम्मेलन में स्वीकार किया गया?

(क) वियना सम्मेलन (ख) मानव पर्यावरण सम्मेलन

(ग) क्योटो ग्लोबल वार्मिंग कान्फ्रेन्स (घ) अर्थ प्लस फाइव सम्मेलन

## 28.9 प्रश्नोत्तर

1. (ख), 2. (घ), 3. (ग),

4. (ख), 5. (घ), 6. (ग),

7. (ख),

# NOTES

# NOTES

# NOTES